-१०)

॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

(सन्दर्भ, प्रसङ्ग, अन्वय, पदार्थ, 'लालमती' संस्कृतव्याख्या, छन्द, अलङ्कार
तथा 'कृष्णा' हिन्दीव्याख्या एवं टिप्पणी सहित)

S/B

व्याख्याकारः
डॉ० नर्मदेश्वरकुमारत्रिपाठी
(साहित्याचार्यः, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रकाशक
भारतीय विद्या संस्थान
सी० २७/५९, जगतगंज, वाराणसी—२२१००२

॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

(सन्दर्भ, प्रसङ्ग, अन्वय, पदार्थ, लालमतीसंस्कृतव्याख्या, छन्द, अलङ्कार तथा कृष्णाहिन्दीव्याख्या एवं टिप्पणी सहित)

व्याख्याकारः

डॉ० नर्मदेश्वरकुमारत्रिपाठी

(साहित्याचार्यः, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

बगतगंज वाराणसी

प्रकाशकः—

©भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

सा० २७/५९ जगतगंज

(सम्पूर्णानन्द सं० विश्वविद्यालय के इलाहाबाद बैंक के पास)

वाराणसी-२२१००२

प्रथम संस्करण—सन् १९८८, संवत्-२०४५

मूल्य—१६-२५

मुद्रकः—

देवपति प्रेस

एस० ९/४०५ नईबस्ती, पंचक्रोसी रोड

पाण्डेयपुर वाराणसी

THE

SVAPNAVĀSAVADATTĀ

of

MAHĀKAVI BHĀSA

(With "Lalamati" Sanskrit and "Krishna" Hindi Translation)

EDITED BY

Dr. Narmadeshwar Kumar Tripathi

(Sahityacharya, M. A., Ph. D.)

BHARATIYA VIDYA SANSTHAN

Varanasi–221002

दो शब्द

संस्कृतकवितावनिता के नवरङ्गीहासभूतल, कविकुलगुरु कालिदास के द्वारा प्रशंसित, महाकवि भास का संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। महाकवि भास की कृतियाँ सबसे पुरातन मानी जाती हैं। यह सम्भव है कि इनकी मौलिक कृतियों का रुप कुछ भिन्न हो और वर्तमान कृतियाँ कालान्तर से परिवर्तित रुप में सामने आ रही हों। महाकवि भास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने भारतीय संस्कृति के उपजीव ग्रन्थ रामायण, महाभारत, श्रीमद्भावगतादि को आधार बनाकर अनेक रचनायें प्रस्तुत की है। अभिनेयता और कथा वस्तु की दृष्टि से कवि को कुछ परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त ही है, तदनरुप ही महाकवि ने मूल कथाओं और पात्रों के स्वरुप में कुछ परिवर्तन किया है। परन्तु यह परिवर्तन कथावस्तु और अभिनेयता को सुन्दर मर्यादित और परिपुष्ठ ही बनाता हैं।

उन्हीं की कृतियों में सर्वोत्कृष्ट स्वप्नवासवदत्तं नाटक है जो राजशेखरादि कवियों, समीक्षकों के द्वारा बहुत ही प्रशसित हैं। इसमें प्रद्योत-पुत्री वासवदत्ता और वत्सराज उदयन के प्रेम का आदर्श रखकर बताया गया है कि प्रेम केवल एक ही जन्म का शारीरिक सम्बन्ध नहीं है अपितु जन्म-जन्मान्तरों में भी चिरस्थायी रहने वाला वास्तविक प्रेम होता है। इन नाटक के संवादों या कथनोपकथन की भाषा अत्यन्त ही सरल और सुबोध एवं प्रवाहमयी है। इस पुस्तक की रमणीयता देखकर ही विद्वज्जनों के द्वारा यह पुस्तक विविध-विश्वविद्यालयों की विविधि-कक्षाओं में निर्धारित संस्कृत-पाठ्यक्रम में रखी गयी है।

यद्यपि स्वप्नवासवदत्तं नाटक की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ बाजार में देखने को मिलती हैं, परन्तु कुछ ऐसी हैं जो केवल हिन्दी माध्यम से संस्कृतविद्यार्थियों का मार्गदर्शन करती हैं और कुछ संस्कृत माध्यम से। अतः उभयविध

उभयविद्यार्थियों के लाभ की दृष्टि प्रस्तुत संस्करण को प्रस्तुत किया गया है। भूमिका भाग में कवि और कवि की स्थिति आदि के साथ प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण हिन्दी में किया गया है और कथासारांश, चरित्र-चित्रण, सूक्ति-व्याख्यादि, संस्कृत माध्यम से भी किया गया है। नाटक भाग में सन्दर्भप्रसङ्ग, अन्वय, पदार्थ, लालमती व्याख्या, छन्द, अलङ्कार के क्रम से श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। कुछ प्रष्टव्य गद्यांशों की व्याख्या भी सन्दर्भादि के साथ प्रस्तुत की गयी है। तत्तत्स्थलों पर नाट्यशास्त्र की दृष्टि से पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार छात्रों की अपेक्षा देखते हुए आवश्यक सभी वस्तुओं का इसमें समावेश किया गया है।

भारतीय-विद्या-संस्थान के सञ्चालक श्री कुलदीप चन्द जैन शतशः धन्यवादार्ह है जिन्होंने मेरी इस पुस्तक को प्रकाशित कर मुझे अनुगृहीत किया। साथ ही वे भी अन्य सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने मुझे कुछ सुझाव दिया तथा उत्साह बढ़ाया।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि अध्यापक-गण एवं छात्र-गण लाभ उठाकर टीकाकार के प्रयास को सफल बनाकर अनुगृहीत करेंगे। अन्त में सुधीजन से निवेदन है।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना" ॥

वाराणसी : सं० २०४४
महाशिवरात्रि

सुधीजन—विधेयः
डा० नर्मदेश्वर कुमार त्रिपाठी

भूमिका

महाकवि भास

संस्कृत-साहित्य के रुपककारों में महाकवि भास का नाम अग्रगण्य है। महाकवि भास ने अपने लालित्यपूर्ण और प्रसादगुण--संयुक्त पदों द्वारा, हास्यादि रसों से मण्डित एवं स्तुत्य अपने रुपकों द्वारा गीर्वाणी की शोभा में वृद्धि की है। अतः महाकवि जयदेव ने जहाँ महाकवि कालिदास को "कविता-वनिता का विलास" कहा है, वहाँ महाकवि भास को **"कविता-वनिता का सुन्दर नवरंग हास"** कहा गया है—"भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः" इत्यादि प्रसन्नराघव के पद्य से। यहाँ तक कि महाकवि कालिदास ने भी भास की महिमा का विस्तार मालविकाग्निमित्र के **"प्रथितयशसां भास-सौमिल्ल-कवि-पुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमाना"** इत्यादि कथन द्वारा किया है। हर्षचरित में महाकवि बाणभट्ट ने भी महाकवि भास का नाम अति आदर से लिया है, जो द्रष्टव्य है—

"सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव" ॥ (हर्षचरित-प्रस्तावना)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भास एवं इनके रुपक संस्कृत साहित्य में पूर्वकाल में प्रसिद्ध थे, परन्तु काल-क्रम से ये विलुप्त होते जा रहे थे। अतः ऐसे संस्कृत-साहित्य के विख्यात महाकवि भास को पुनः स्थापित करने का श्रेय महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री को प्राप्त है जिन्होंने भास के १३ नाटकों की खोज करके उन्हें **"त्रयोदश त्रिवेन्द्रं नाटकानि"** नाम से अनन्तशयनं ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, मद्रास से १९२० ई० में प्रकाशित किया और उसका नाम **"भासनाटकचक्रम्"** रखा तथा भास का स्थिति काल कालिदास से पहले सिद्ध किया। तत्पश्चात् आज भी महाकवि भास और तत्सम्बन्ध काव्यों का अन्वेषण प्राच्य-पाश्चात्य विद्वानों के बीच जारी है, तथा ये कुछ नये तथ्यों को प्रकाशित करते जा रहे हैं, जिससे समीक्षकों की समीक्षा की शृंखला में निरन्तर समर्थ कड़ियाँ जुड़ती जा रही हैं। जहाँ तक मेरा विश्वास है कि ये कड़ियाँ आगे भी जुड़ती रहेंगी।

महाकवि भास का स्थिति-काल

यशोविरहित महाकवि भास ने संस्कृत के कतिपय अन्य महाकवियों की भाँति अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। यहीं कारण है कि आज महाकवि का स्थित काल, रचना, देशादि से सम्बन्ध विषय गवेषणात्मक हो गये हैं। ऐसी स्थिति में अन्तःसाक्ष्य एवं बाह्यसाक्ष्यों के आधार पर महाकवि भास का कालनिर्णय किया जाता है। दुर्भाग्य से इनकी कृतियों में पर्याप्त अन्तःसाक्ष्यों का भी अभाव है। अतः बाह्यसाक्षों के रूप में नीचे के कुछ प्राचीन महाकवियों एवं समीक्षकों के उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो भास की स्थिति आदि के विषय में विविध निर्णय लेकर उपस्थित होते हैं। जैसे—अन्तःसाक्ष्य।

१. संस्कृत साहित्य के अन्यतम ग्रन्थरत्न, आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के प्रतिपादित नियमों को महाकवि भास ने अपने रुपकों में अति आदर पूर्वक नहीं देखा है। इनके रुपकों में भरत-वाक्य के बिना भी इनकी समाप्ति देखी जाती है। मृत्युयुद्धादि मञ्चन की दृष्टि से हेय होने पर भी महाकवि भास के रूपकों में रङ्गमञ्च पर ही उपस्थिपित किये गये हैं। अतः आचार्य भरत से भी प्राचीन है महाकवि भास का यह कथन स्वाभाविक ही है।

२. महाकवि भास ने अपने काव्यों में पाणिनि-प्रवर्तित नियमों को प्रश्रय नहीं दिया है। उदाहरणार्थं—आपृच्छामि, उपलप्स्यति, काशिराज्ञः, अवन्त्या- धिपतेः इत्यादि। अतः पाणिनि से भी पूर्ववर्ती हैं। महाकवि भास ऐसी शङ्का की सम्भाव्य ही है।

३. प्रतिमा नाटक, जो महाकवि भास की रचना है, में वृहस्पति के अर्थशास्त्र का स्मरण किया गया है, चाणक्य के नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि भास चाणक्य से पूर्ववर्ती थे। चाणक्य की स्थिति ई० पू० तृतीय शतक में थी। यह महाब्राम्हण चाणक्य अपने शूर-विरों को युद्ध में उत्साहित करने के लिए कहता है—**"अपी श्लोको भवतः"**—इत्यादि। इसी जगह चाणक्य ने दो श्लोकों का उद्धरण प्रस्तुत किया है, जिनमें

से एक श्लोक महाकवि भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भी प्राप्त होता है। जैसे—

नव शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं स गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्" ॥

(प्रतिज्ञायौग० ४/२)

बाह्यसाक्ष्य जैसे—

१. महाकवि कालिदास ने प्रसिद्ध रूपक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में महाकवि भास की प्रशंसा कर संस्कृत-जगत में इनके रूपकों को मणिकाञ्चन हार की तरह देखा है। जैसे द्रष्टव्य है—"प्रथितयशसां भाससौमिल्ल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमानः ?" (मालविकाग्निमित्रप्रस्तावना)।

२. गौडवहो नामक प्राकृत-प्रबन्ध के रचयिता वाक्पतिराज ने "**भासम्मि जलनिमित्ते**" इत्यादि उक्ति के द्वारा एक जनश्रुति की ओर संकेत किया है।

३. महाकवि दण्डी ने अपनी "**अवन्तिसुन्दरी**" नामक कृति में भास का स्मरण करते हुए लिखा है—

"सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥"

४. महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित नामक आख्यायिका की प्रस्तावना में महाकवि भास का नाम बहुमान के साथ लिया है। जैसे द्रष्टव्य है—

"सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव" ॥ (हर्ष० प्र०)

५. आचार्य परमशैव अभिनवगुप्त ने भरतकृत-नाट्यशास्त्र की अभिनवभारती टीका में "**क्वचित् क्रीडा--यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्**" इत्यादि लिखकर भास का का स्मरण करते हुए निम्न पद्य को लिखा है, जो द्रष्टव्य है—

त्रेतायुगं तदिह हन्त न मैथिली सा

रामस्य रागपदवी मृदुचास्य चेतः।

लब्धा जनस्तु यदि रावणमस्य कायं

प्रोत्कृत्य तन्न तिलशो न वितृप्तिगामी ॥"

६. महाकवि राजशेखर ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में "स्वप्नवासवदत्तं" नामक भासकृत रूपक की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

"भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्तो परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः" ॥

७. प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में महाकवि जयदेव ने कविकुलगुरुकालीदास को कविता-वनिता का विलास एवं महाकवि भास को नवरङ्गी हास कहा है। जैसे—

"भासो हासः कविकुलगुरुः कालीदासो विलासः।

... ...

केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय" ॥

८. भोजराज ने स्वरचित शृंङ्गारप्रकाश में स्वप्नवासवदत्तं का नाम लेकर तत्कर्ता महाकवि भास का नाम-स्मरण किया है। तद्यथा—"स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः······इत्यादि"।

९. आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण महाकवि भास तथा उनकी कृति स्वप्नवासवदत्तं का स्मरण किया है। जैसे द्रष्टव्य है—

"यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः··· ·········" इत्यादि।

उपरिलिखित विविध उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि महाकवि भास का काल कालिदास और आचार्यभरत से भी पूर्व था। तदपि अन्तःसाक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य के आधार पर प्राच्यपाश्चात्य विविध समीक्षकों ने भासीक्षकों ने

भास का विभिन्न काल स्वीकार किया है। डॉ० पुशालकर ने इनकी एक संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत की है जिसका विवरण निम्न प्रकार का है—

१. छठी से चौथी शताब्दी ई० पू० भास का समय मानने वाले टी० गणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री, किरत, खुरेपुर, टटके भिडे और दीक्षितार है।

२. तीसरी शताब्दी ई० पू० मानने वाले कुलकर्णी, चौधुरी, जागीरदार, जायसवाल, ध्रुव एवं शेम्बवनेकर हैं।

३. दूसरी शताब्दी ई० मानने वाले कोनो, लिण्डेन्यू, वेलर, सरूप एवं शैली है।

४. तीसरी शताब्दी ई० मानने वाले कीथ, जैकोबी, जौली, बनर्जी, शास्त्री तथा भण्डारकर हैं।

५. चौथी शताब्दी ई० मानने वाले लेस्नी और विण्टरनित्स हैं।

६. पाँचवीं और छठी शताब्दी ई० मानने वाले शंकर हैं।

७. सातवीं शताब्दी ई० मानने वाले देवधर, निरूरकर, पिशरोटी, वर्नेट, सरस्वती तथा हीरानन्द शास्त्री है।

८. नवीं शताब्दी ई० मानने वाले काणे और कुन्दनराजा हैं।

९. दसवीं शताब्दी ई० मानने वाले पं० रामावतार शर्मा हैं।

१०. ग्यारहवीं शताब्दी ई० मानने वाले श्री रेड्डी शास्त्री हैं।

उपर्युक्त इन विद्वान् समीक्षकों के मतों को देखकर संस्कृत-साहित्य-रसिक सन्देह में ही पड़े रहते हैं। फिर भी भरत, भामह, कालिदासादि आचार्यों एवं महाकवियों के पूर्व ही भास की स्थिति को रखना तर्कसङ्गत है। क्योंकि इसकी पुष्टि में उत्कर प्रमाण निम्नलिखित हैं—

१. भासनाटकचक्रम् के शोधकर्ता एवं सम्पादक टी० गणपति शास्त्री ने भास को पाणिनि तथा चाणक्य से भी अतिप्राचीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने भास की कृतियों का भाषा वैज्ञानिक परिक्षण किया है तथा भासकृत रचनाओं में कुछ अपाणिनीय (आर्य) प्रयोग जैसे—आपृच्छामि,

उपप्लस्यति, काशिराज्ञः, अवन्त्याधिपतेः इत्यादि प्राप्त करके भास को अति प्राचीन ई० पू० शताब्दियों में (पाणिनि के सर्वमान्य होने से पूर्वकाल में लगभग पाँचवीं चौथी शताब्दी में) पहुँचा दिया है।

२. महाकवि भास के प्रतिमा नाटक में रावण को बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में प्रवीण एवं पूर्णज्ञाता कहा गया है। जैसे —"भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च"। इससे भी यही ज्ञात होता है कि महाकवि भास कौटिल्य (चाणक्य) के अर्थशास्त्र तथा पतञ्जलि के योगशास्त्र को रचना से पहले ही (ई० पू० तृतीय शताब्दी पूर्व ही) हुए थे।

३. उपर्युक्त अंश को ही पुष्टि निम्न पद्य करता है। यह पद्य प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में प्राप्त होता है। इसी पद्य से चाणक्य अपने शूरवीरों को उत्साहित करता है। जैसे—

"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्"।

४. "श्रीमद्भगवद्गीता" के आदि में गीता ध्यान में इस प्रकार है—

"भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला।
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन बेलाकुला॥
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनवर्तिनी
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तकः केशवः"॥

उक्त श्लोक का विश्लेषण करते हुए लोकमान्य तिलक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह श्लोक महाकविभासरचित "ऊरुभङ्गम्" का आदि श्लोक है, जो निम्नप्रकार है—

"भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गन्धारराजह्रदां
कर्णद्रोणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्त्रोतसम्।
तीर्णः शत्रुनदीं शरासिसिकतां येन प्लवेनार्जुनः
शत्रूणां तरणेष वः स भगवानस्तु प्लवः केशवः"॥

अतः इस आधार पर तिलकजी के शब्दों में भास, कालिदास के पूर्ववर्ती हैं और उनका स्थितिकाल दूसरे या तीसरे शतक के बाद, कदापि नहीं हो सकता।

५. भास की नाट्यशैली भरतनाट्यशास्त्र में प्रतिपादित रचना-विधान से विपरीत चली गयी है, अतः भरत- परम्परा से भास प्राचीन सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार इन अनेक प्रमाणों के आधार पर भास का समय ई० पू० चौथी शताब्दी स्वीकार करने की बात ही अच्छी प्रतीत होती है।

महाकविभास की कृतियाँ

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने भास के रूपकों को पाँच भागों में विभक्त किया है जो विषयानुसार निम्न हैं—

१. रामकथा पर आधारित—प्रतिमा एवं अभिषेक।

२. महाभारत–कथा पर आधारित—पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुभङ्ग।

३. भागवत--कथा पर आधारि—बालचरित।

४. लोककथा पर आधारित—दरिद्रचारुदत्त और अविमारक।

५. उदयनकथा पर आधारित—प्रतिज्ञोगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्त

इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. प्रतिमा नाटक —यह सात अङ्कों का एक नाटक है। इसमें रामचन्द्र के वनवास से लेकर रावण वध तक की घटना पूरे रामायण की घटना से ओतप्रोत है। भरत जब अपने मातृगृह से अयोध्या लौटते हैं तो मन्दिर में अपने पिता दशरथ की प्रतिमा देखकर उनके दिवङ्गत होने का अनुमान करते हैं। इसी घटना पर इस नाटक का नामकरण है। इससे यह तथ्य भी प्रकट हो जाता है कि प्राचीन काल में राजाओं के देव मन्दिर होते थे जहाँ दिवङ्गत पूर्वजों की मूर्तियाँ भी स्थापित की जाती थीं। यद्यपि इसकी कथावस्तु वाल्मीकीय रामायण की है तदपि महाकवि भास की कल्पना अपनी विशिष्टता रखती है।

२. अभिषेक नाटक— यह छः अङ्कों का नाटक है। जिनमें राम के बालकाण्ड को छोड़कर राज्याभिषेक से लेकर लङ्काकाण्ड तक की रामायणीय घटना का नाटकीय रूप से वर्णन किया गया है। राम के अभिषेक की घटना लेकर इसका नामकरण हुआ है।

३. पञ्चरात्र—यह तीन अङ्कों का एक समवकार है। दुर्योधन यज्ञ के उपलक्ष्य में गुरु द्रोणाचार्य को मुँहमाँगी दक्षिणा में पाण्डवों को आधा राज्य देता है परन्तु शर्त रखता है कि यदि पाण्डव पाँच रातों के भीतर मिल जायेंगे तभी यह सम्भव है। गुरु द्रोण के प्रयास से पाण्डव मिल गए और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया। परन्तु ऐसी कथा महाभारत में नहीं मिलती है। अतः कवि कल्पित है। इसमे तथ्य और कथ्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। पाँच रात्रि में यह खोज-कार्य सम्पन्न हुआ, अतः इसका नाम पञ्चरात्र है।

४. मध्यमव्यायोग— यह एक अंक का व्यायोग है। इसमें पाण्डवों के बनवासकाल में घटोत्कच के चंगुल से एक ब्राह्मण-परिवार की रक्षा मध्यम पाण्डव भीम ने किया है तथा अन्त मे हिडिम्बा से उनका पुनर्मिलन हुआ है। मध्यम शब्द भीम और ब्राह्मण कुमार का बोधक है। अतः इसी नाम के कारण इस रूपक का नाम "मध्यमव्यायोग" पड़ा। घटोत्कच जिस विधि से अपने पिता भीम को अपनी माँ हिडिम्बा से मिलाता है, वह बड़ा ही सरल एवं कौतुहलपूर्ण है। यह घटना महाभारत में नहीं है अपितु महाकवि भास के उर्वरक-मस्तिष्क की देन है।

५. दूतघटोत्कच—यह एक अङ्क का अङ्क नामक रूपक है। इसमें घटोत्कच दूत बनकर श्रीकृष्ण का संदेश कौरवों के पास ले जाता है। वहाँ घटोत्कच तथा दुर्योधन में झड़प हो जाती है। घटोत्कच युद्ध के लिए दुर्योधन को ललकारता है और अन्त में धृतराष्ट्र शान्त कर देते हैं। जाते-जाते घटोत्कच यह धमकी देता है कि अभिमन्यु की मृत्यु का बदला अर्जुन द्वारा अवश्य लिया जायेगा। यह भरत वाक्य से रहित रूपक है। यद्यपि इसकी कथा कवि कल्पित है तदपि सरस एवं कौतूहलपूर्ण है। घटोत्कच इसमें उद्धतवीर के रूप में चित्रित है।

६. कर्णभार—यह एक अङ्क का अङ्क नामक रूपक महाभारतीय कथा पर आधारित है। इसमें कर्ण ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को अपना कवचकुण्डल अर्पित करके दान देने वालों में अपनी महनीयता की ध्वजा गाड़ता है तथा अपने समुज्वल चरित्र से सर्वतोमुखी सुयश अर्जित करता है।

७. दूतवाक्य—यह महाभारतीय कथा पर आधारित एक अङ्क का व्यायोग है। कुछ लोगों की दृष्टि से वीथि नामक रूपक की झलक इसमें मिलती है। इसमें कृष्ण का पाण्डवों के पक्ष से दूत बनकर दुर्योधन के पास जाने की कथा है। यहाँ श्रीकृष्ण का अंकन बड़ा प्रभावोत्पादक तथा मङ्गलदायी रूप में हुआ है। यहाँ दुर्योधन का चरित्र ईर्ष्या द्वेष से आवृत्तहीन ग्रन्थि का परिपोषण करने वाला साबित हुआ है जबकि श्रीकृष्ण का चरित्र परमोदार एवं सर्वजनसुखाय के रूप में उद्घाटित हुआ है। इसमें दुर्योधन का दरबार सजता है। दुर्योधन अपने साथियों के परामर्श से युद्ध की सारी तैयारी करता है। भीष्म को युद्ध सेनापति का पद देता है। इसी बीच कृष्ण का आगमन होता है। उनकी अगवानी में सारा दरबार खड़ा हो जाता है तथा इस दृश्य को देखकर दुर्योधन घबड़ा कर गिर पड़ता है। आगे का सारा कथानक महाभारतीय है। पाण्डवों के पक्ष से दूत बनकर श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा था अर्थात् दूत का वाक्य वचन जिसमें हो वह दूतवाक्य हुआ, इसी आशय से इसे दूतवाक्य नाम दिया गया है।

८. उरुभङ्ग—यह महाभारतीय कथा पर आधारित एकाङ्कात्मक "अङ्क" नामक रूपक है। इसमें भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा तोड़ने की कथा है। यहाँ भीम का भयानक तथा वीरतापूर्ण वर्णन है। भीम की गदा से दुर्योधन की जंघा टूटती है तथा बहुत ही विषम स्थिति में दुर्योधन की मौत होती है। अतः यह दुःखान्त नाटक है जो भरतमुनि की नाट्य परम्परा में अस्वीकृत है। संस्कृत साहित्य में महाकवि भास का यह निजी प्रयोग है। बाद के दृश्यों में धृतराष्ट्र निर्वेद से वन को चले जाते हैं। अश्वत्थामा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार रात में पाण्डवों के शिविर में आक्रमण करता है। इस प्रकार यह एक दुःखान्त रूपक है।

९. बालचरित—यह पाँच अङ्कों का नाटक है जो हरिवंशपुराण पर आधारित है। इसमें श्रीकृष्ण के बाल्यकाल का चरित वर्णित है। अत एव इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध तक की कथा को गूँथकर भास ने श्रीकृष्ण लीला का मनोरम चरित नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया है। नारद द्वारा देवकी का परिचय, वसुदेव का कृष्ण को लेकर गोकुल जाना तथा अपने मित्र नन्दगोप से मिलना, पुनश्च श्रीकृष्ण को नन्द के हाथों में सौंपना और उनकी कन्या को मथुरा लाना, कंस के द्वारा उस देवीस्वरूपा कन्या को मार डालने के लिए पटकना और उस कन्या द्वारा देवी-वेष धारण करना तथा आकाश में उड़ना आदि भागवतीय कथा का सरस चित्रण कर नाटकीय रूप देना महाकवि भास की अपनी विशिष्टता है।

१०. दरिद्रचारुदत्त—यह चार अङ्कों से युक्त एक प्रकरण नामक रूपक है। इसमें ब्राह्मण चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रेममय जीवन का सरस चित्र अङ्कित है। इस प्रकरण का नामकरण मुख्य नायक चारुदत्त के नाम पर हुआ है। नायिका बसन्तसेना का पीछा सकार और विट करते हैं और चारुदत्त के घर के पास पहुँचते हैं। वसन्तसेना अन्धेरे में निगाह बचाकर चारुदत्त के घर घुस जाती है। वसन्तसेना और चारुदत्त का यह वृत्त आदर्श प्रेम का मूर्तिमान् रूप है। भास का चारुदत्त कथानक की दृष्टि से अधूरा है। इसी की नींव पर महाकवि शूद्रक ने मृच्छकटिक नाम प्रकरण की रचना की है जो संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है।

११. अविमारक—यह छः अङ्कों से युक्त नाटक है जो दरिद्रचारुदत्त की तरह ही लोक-कथा पर आधारित है। राजा कुन्तीभोज की पुत्री के साथ राजकुमार अविमारक का प्रेम-विवाह यहाँ वर्णित है। कामसूत्र में अविकारक का संकेत मिलता है। अतः इस नाटक को लोककथा पर आधारित कहते हैं।

१२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह चार अङ्कों में निबद्ध ईहामृग नामक रूपक है। इसमे राजा उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता के हरण का वृत्तन्त है। इसमे उदयन का मित्र यौगन्धरायण दृढप्रतिज्ञा

करता है इसलिए इस नाटक का नाम प्रतिज्ञा यौगन्धरायण पड़ा है। इसी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप मन्त्री यौगन्धरायण की योजना के अनुसार उदयन का वासवदत्ता के साथ सम्बन्ध एवं विवाह सम्पन्न होता है। इस नाटक के माध्यम से यौगन्धरायण की सर्वश्रेष्ठ कूटनीति तथा दृढप्रतिज्ञा का परिचय मिलता है।

१३. स्वप्नवासवदत्त—यह छः अङ्कों में निबद्ध नाटक है। इसे प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तरार्द्ध ही समझना चाहिए। इसमें राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्न में मिलन होता है। अतएव इस नाटक का नामकरण स्वप्नवासवदत्त हुआ। इसका कथानक आगे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जायेगा। महाकविभास के रूपकों में यह सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वाधिक लोकप्रिय माना जाता है। प्रशंसा करने वाले परवर्ती आचार्यों में अभिनवगुप्त (१०वीं शताब्दी), भोजदेव (११वीं शताब्दी), शारदातनय (१२वीं शताब्दी), सर्वानन्द (१२वीं शताब्दी), रामचन्द्र और गुणचन्द्र (१३वीं शताब्दी) आदि प्रमुख हैं। राजशेखर ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में स्वप्नवासवदत्त के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः"॥

अर्थात् राजशेखर ने भास के १३ नाटकों में से "स्वप्नवासवदत्तं" को अग्निपरीक्षा में खरा सिद्ध किया है। अतः यह बहुप्रशंसित सुखान्त नाटक है।

इस प्रकार उपर्युक्त भासकृत तेरह रूपक हैं जिनका सम्पादन महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री ने किया है। इसके अतिरिक्त आचार्य रामचन्द्र मिश्र ने अपने संस्कृत साहित्येतिहासः नामक पुस्तक में यज्ञफल नामक रूपक भी भास के नाम से जोड़कर इनके रूपकों की संख्या चौदह मानी है। जैसे द्रष्टव्य है—

"गोण्डलनिवासी—राजवैद्यजीवरामकलिदासमहोदयः १९४१ खृष्टाब्दे "यज्ञफलं" नामकं रूपकमेकं प्रकाशितवान्, तदपि भासकृतित्वेनाख्ययते"। इस नाटक में युधिष्ठिर के यज्ञ से सम्बद्ध कथा भाग अल्प ही है।

इस प्रकार महाकवि भास से सम्बद्ध उपर्युक्त चौदह रूपक हैं जिनका वर्णन ऊपर हुआ।

स्वप्नवासवदत्तम् का नामकरण

कवि अपनी प्रतिभा शक्ति से किसी भी काव्य की रचना करता है, यह तथ्य सभी जानते ही हैं। अतएव ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन की उक्ति है–

"अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

पिता जैसे अपने औरस पुत्र का नामकरण करता है वैसे ही कवि भी अपनी मौलिक-रचना का नामकरण करता है। कवि अपनी रचना का नामकरण कथा, नायक-नायिका या घटना को आधार बनाकर करता है। प्रायः अधिकाधिक नाटकों का नामकरण घटनाविशेष पर ही किया जाता है। जैसे महाकवि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल, भट्टनारायण का वेणीसंहार आदि। प्रायः प्रकरण वर्ग के रूपकों का मालती-माधव। परन्तु इसमें भी अपवाद देखने को मिलते हैं, जैसे–शूद्रक का मृच्छकटिक घटना विशेष पर ही आधारित है। यह नाम एक गर्भित अर्थ को अभिव्यक्त करता है। व्यवहार की दृष्टि में प्रायशः आचार्यों ने उपर्युक्त नियम की मर्यादा की रक्षा की है, यद्यपि मृच्छकटिक जैसे अपवाद देखने को मिल ही जाते हैं। इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि रूपकों का नामकरण नायक नायिका अथवा इतिवृत्त में आये किसी घटना विशेष को आधार बनाकर किया जाता है।

प्रस्तुत नाटक स्वप्नवासवदत्तं का नामकरण घटना विशेष को ही आधार बनाकर किया गया है। इसमें दो पद हैं स्वप्न और वासवदत्ता। इस नाटक की नायिका है वासवदत्ता। वासवदत्ता को छिपाकर नायक उदयन का परिणय मगधराजदर्शक की बहन पद्मावती से कराकर शत्रु आरुणि द्वारा अपहृत राज्य वत्सदेश की प्राप्ति ही इस नाटक का लक्ष्य है। जब तक वासवदत्ता उदयन के साथ रहती तब तक यौगन्धरायण की यह प्रतिज्ञा कभी भी पूरी नहीं होती। अतः यौगन्धरायण अपने तथा वासवदत्ता के जल मरने की बात प्रसारित करा-

कर पद्मावती के पास ही वासवदत्ता को न्यास रूप में रखता है। पद्मावती भी नहीं जानती है कि यह महारानी वासवदत्ता है। समुद्रगृह में वासवदत्ता पद्मावती की अस्वस्थता जानकर जाती है। वहाँ सोये हुए उदयन को वह पद्मावती समझ कर सोती है। उदयन उसके स्पर्श से रोमाञ्चित हो स्वप्न में उसे प्राप्त करते हैं। दोनों में बातचीत होती है। वासवदत्ता भेद खुल जाने के भय से उदयन का हाथ जो बिछावन से बाहर लटक रहा था, को बिछावन पर रखकर भगती है। उसके स्पर्श से रोमाञ्चित उदयन उसे पकड़ने के लिए दौड़ते हैं परन्तु द्वार-पक्ष से ताड़ित हो बैठ जाते हैं। विदूषक आकर यह सान्त्वना देता है कि यह आपका स्वप्न था। इस प्रकार इसी मार्मिक घटना को आधार बनाकर इस नाटक का नामकरण किया गया। इस घटना का प्रभाव षष्ठ अङ्क के अन्त तक चलता है, जब तक वासवदत्ता प्रकट नहीं हो जाती है। इस प्रकार इसकी व्युत्पत्ति होगी—स्वप्ने दृष्टा या वासवदत्ता स्वप्नवासवदत्ता तामधिकृत्य कृतमिदिमिति स्वप्नवासवदत्तम् नाटकम्।

स्वप्नवासवदत्त का सारांश

यह छः अङ्कों का नाटक है। महाकवि भास के रूपकों में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कथानक की दृष्टि से यह प्रतिज्ञायौगन्धरायण का अवशिष्ट भाग है।

उज्जयिनी से महासेन चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता का हरण कर अपने राज्य वत्सदेश में लाने के अनन्तर महाराज उदयन उसमें अतिशय आशक्त हो राज्यकार्य में रुचि नहीं लेते है जिसके परिणामस्वरूप वत्सराज्य का अधिक भाग उनका शत्रु आरुणि हर लेता है। उस अपहृत राज्य को लौटाने के लिए कूटनीतिज्ञ महामात्य यौगन्धरायण ने मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने के लिए उपाय सोचा। राजा उदयन के शिकार खेलने के लिए वन में जाने पर यौगन्धरायण ने रानी वासवदत्ता को मनाकर अपना तथा वासवदत्ता के अग्नि में जलकर मरने की अफवाह फैलायी। अनन्तर यौगन्धरायण ने ब्राह्मण का वेष बनाया और वासवदत्ता को अपनी बहन बनाकर आवन्तिकावेष में उन्हें राजकुमारी पद्मावती के पास न्यास के रूप में

रखा। उसकी प्रतिज्ञा एवं प्रयास के फलस्वरूप ही पद्मावती के साथ उदयन का विवाह सम्पन्न हुआ। परन्तु विवाह के बाद भी राजा उदयन पूर्वपत्नी वासवदत्ता को भूल न सके।

अपने पति उदयन के प्रेम को न पाने से पद्मावती को शिरोवेदना हुई। उसकी अस्वस्थता का समाचार पाकर उदयन समुद्रगृह में गये। वहाँ उसको न पाकर राजा उसकी शय्या पर सो गये। पद्मावती की शिरोव्यथा का समाचार पाकर वासवदत्ता भी वहीं आयीं और सोये हुए राजा को पद्मावती समझकर शय्या के एक भाग में सो गयीं। राजा उदयन ने स्वप्न में वासवदत्ता को प्रेमगर्भित वाक्यों से सम्बोधित किया। तब वासवदत्ता को राजा की प्रतीति हुई। उसने राजा के लटकते हुए हाथ को शय्या पर रख दिया। राजा उदयन वासवदत्ता के स्पर्श से उन्हें पहचान कर पकड़ने की चेष्टा किये। परन्तु इसी बीच वासवदत्ता हाथ छुड़ाकर भाग गयी तथा दौड़ते राजा द्वार-पक्ष से ताडित हो बैठ गए। विदूषक ने सान्त्वना दी कि वे स्वप्न देखे हैं, देवी वासवदत्ता अब इस संसार में कहाँ हैं? इसी बीच राजा उदयन का रुमण्वान् नामक मन्त्री आरुणि को परास्त का राजा का अपहृत राज्य लौटाता है। उदयन पद्मावती के साथ अपनी राजधानी लौटे। न्यासभूता वासवदत्ता भी पद्मावती के साथ गई।

स्वप्नवासवदत्ता के अन्तिम अंक में महासेन चण्डप्रद्योत के द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा और कञ्चुकी उनका सन्देश और वासवदत्ता एवं उदयन के विवाह का चित्र लेकर आते हैं। पद्मावती वासवदत्ता का चित्र देखकर अपने पति राजा उदयन से **"इसी रूप की स्त्री मेरे पास है"** ऐसा कहती है। राजा के अनुरोध पर वह आवन्तिका को बुला लाती है। यौगन्धरायण भी उसी समय ब्राह्मण का छद्मवेष धारण कर बहन लेने के आता है। वासवदत्ता को देखकर धात्री वसुन्धरा पहचानती है और यौगन्धरायण भी प्रकट हो राजा को सब वृत्तान्त बता देता है। सारे रहस्य खुल जाते हैं। मङ्गलमय परिणाम से सब प्रसन्न होते हैं। राजा सपरिवार उज्जयिनी में प्रद्योत के पास जाने के लिए उद्यत होते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

स्वप्नवासवदत्तम् के अन्तिम अंक में महासेन चण्डप्रद्योत के द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा और कञ्चुकी उनका सन्देश और वासवदत्ता एवं उदयन के विवाह का चित्र लेकर आते हैं। पद्मावती वासवदत्ता का चित्र देखकर अपने पति राजा उदयन से "इसी रूप की स्त्री मेरे पास है" ऐसा कहती है। राजा के अनुरोध पर वह आवन्तिका को बुला लाती है। यौगन्धरायण भी उसी समय ब्राह्मण का छद्मवेष धारण कर बहन को लेने के लिए आता है। वासवदत्ता को देखकर धात्री वसुन्धरा पहचानती है और यौगन्धरायण भी प्रकट हो राजा को सब वृत्तान्त बता देता है। सारे रहस्य खुल जाते हैं। मङ्गलमय परिणाम से सब प्रसन्न होते हैं। राजा सपरिवार उज्जयिनी में प्रद्योत के पास जाने के लिए उद्यत होते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

स्वप्नवासवदत्तम् में नायक-रसादिनिरूपण

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का नायक उदयन है जो नायक के सामान्य गुणों से युक्त धीरललितनायक की कोटि में आता है। नायक का सामान्य लक्षण है—

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता"॥ (सा० द० ३-३०)

धीरललित का लक्षणविशेष यथा—

"निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्"। (सा०द० ३-३४)

उपर्युक्त गुणो से यह उदयन पूर्ण है। इस नाटक की नायिका वासवदत्ता स्वकीया मध्या है। स्वकीया नायिका का लक्षण है—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया"। (सा० द० ३-५७)

मध्या नायिका का लक्षण—

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता"॥ (सा० द० ३-५९)

यहाँ दूसरी नायिका पद्मावती स्वकीया और मुग्धा है। मुग्धा का लक्षण है—

"प्रथमाऽवतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा"॥ (सा० द० ३-५८)

इस नाटक में यौगन्धरायण, विदूषक आदि प्रमुख उपयोगी पात्र हैं। इस नाटक का अङ्गीरस तो सम्भोग शृङ्गार है परन्तु पूर्व में वह विप्रलम्भ शृङ्गार ही है। कहा भी गया है "न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते" अर्थात् विप्रलम्भ शृङ्गार के विना सम्भोग शृङ्गार अधूरा ही रहता है। अतः कवि ने बड़े कौशल से उदयन का वासवदत्ता में करुण विप्रलम्भ की पुष्टि की है। करुण विप्रलम्भ रस का लक्षण है--

"यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः"॥ (सा० द० ३-२०९)

उदयन का पद्मावती में सम्भोग शृङ्गार है। सम्भोग शृङ्गार का लक्षण है-

"दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवते विलासिनौ।
यत्राऽनुरक्तावन्योन्य सम्भोगोऽयमुदाहृतः"॥

परन्तु वास्तव में देखा जाय तो पता चलता है कि उदयन वासवदत्ता को भूल नहीं पाते हैं और जिसके कारण नवोढा पद्मावती भी सम्भोग सुख का अनुभव नहीं कर पाती है अपितु सिर की व्यथा से पीडित हो जाती है। सम्भोग शृङ्गार तो नाटक के अन्तिम भाग में ही है, जब वासवदत्ता का रहस्य खुलता है और समस्त राजपरिवार आनन्दपूर्ण हो जाता है।

नाटक में वीर, हास्यादि रस भी अङ्ग रूप में निबद्ध हैं। निर्वेद, दैन्य आदि व्यभिचारिभाव तत्तत् रसों के सापेक्षी हैं। रत्यादि स्थायी भाव हैं। रीति प्रायः वैदर्भी है, तथा गुण प्रायः प्रसाद है।

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

उदयन—प्रस्तुत नाटक में उदयन धीरललित नायक के रूप में चित्रित है। नायक का सामान्य लक्षण साहित्यदर्पण में कहा गया है--

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता"॥ (सा० द० ३-३०)

धीरललित का लक्षण विशेष भी प्रतिपादित है--

"निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। (सा०द० ३-३४)

उपर्युक्त गुणों से यह उदयन पूर्ण है। भास के प्रस्तुत इस नाटक में उदयन का परिचय अधिक नहीं मिलता है। केवल इतना ही मिलता है **"भरतानां कुले जातः" "अस्ति वत्सराज उदयन नाम"।** प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अनुसार उदयन भरतवंशीय शतानीक का पुत्र था और उसके नाना का नाम सहस्रानीक था तथा कौशाम्बी उसकी (उदयन की) राजधानी थी। उदयन ने महामात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा के कुचक्र से महासेन की पुत्री वासवदत्ता का हरण किया था और उसमें इतना आसक्त था कि उसने अपने राज्यकार्य में कोई रुचि न ली। फलस्वरूप उसके शत्रु आरुणिने उसके राज्य के कुछ भाग को हड़प लिया। अतः यौगन्धरायण ने अपनी प्रतिज्ञा का शेष अंश पूरा किया है इस नाटक में। वास्तव में यह नाटक प्रतिज्ञा यौगन्धरायण का उत्तरार्द्ध समझा जाता है।

इस नाटक में उदयन के चरित्र के "प्रेमी" अङ्ग का सर्वाङ्गीण विकास हुआ है। अन्य बातें गौण हैं। नाटक का स्थूल उद्देश्य है, आरुणि से राज्य को वापस लेना। इसमें सहायक है मागध सैन्यबल। अतः उदयन का महामात्य यौगन्धरायण षड्यन्त्र करता है। वह वासवदत्ता के और अपने जलमरने की बात फैलाता है। उसकी योजना के अनुसार वासवदत्ता के समक्ष ही उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है किन्तु कभी एक क्षण के लिए भी वह (उदयन) अपने हृदय से वासवदत्ता की छवि को नहीं हटा पाता। यद्यपि पद्मावती के प्रति उसके हृदय में अनुराग का उदय हो रहा है, पर वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम अब भी अक्षुण्ण है—"तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयम्"। पद्मावती के परिणय को वह परिस्थितियों का परिमाण मात्र मानता है "कालक्रमेण पुनरागतदारभारः" इत्यादि कहकर। पद्मावती की प्राप्ति के बाद भी कान्ता के स्थान की पूर्ति नहीं होती—"वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः" इत्यादि से स्पष्ट है। विदूषक के द्वारा हठपुर्वक पुछे जाने पर वह स्पष्ट शब्दों में कहता है—"वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति"।

पद्मावती, वासवदत्ता और चेटी के वार्तालाप से विदित है कि वह निरन्तर वासवदत्ता के गुणों को याद करता है। पद्मावती ने जब वीणा सीखने के लिए कहा तो राजा लम्बी साँस लेकर चुप हो गया। जैसे—"अभणित्वा किञ्चिद्

दार्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृतः'' । पद्मावती कहती है—''तर्कयामि आर्यया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया समाग्रतो न रोदिति'' । दर्शक के भवन में अतिथि होने पर भी उदयन के मुख से निकल ही जाता है ''वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै'' । यह इतने स्वाभाविक ढंग से निकलता है मानो वासवदत्ता जीवित हो । वासवदत्ता में उसका प्रेम बद्धमूल है । वह कहता है—''दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः'' । पाँचवें अङ्क के ''स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः'' और ''बहुशोऽप्युपदेशेषु'' इत्यादि पद्यों में उज्जयिनी का नाम सुनने से उदयन वासवदत्ता की याद में इतना खो जाता है कि स्वप्न में उसी का नाम लेकर बड़बड़ाता है ; षष्ठ अङ्क में जड घोषवती वीणा जो वासददत्ता को प्यारी थी, को पाकर विक्षिप्त सा होकर उपालम्भ देता है । जैसे—''अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्य न स्मरसि ।'' यद्यपि वह पुनः राज्य की प्राप्ति भी कर लेता है परन्तु वीणा को पाकर फिर वह वासवदत्ता को भूल नहीं पाता । वे दिन प्रिया-विरह में पर्वत जैसे हो गये हैं । वह देहान्तर में भी अपनी प्रिया को भूल नहीं सकता । वह कहता है—''कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि।'' पाँचवें अङ्क के जिस सुन्दर दृश्य के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है उसकी पृष्ठभूमि में वासवदत्ता ही है । स्वप्न में भी वासवदत्ता का सान्निध्य यदि मिले तो वह चिरनिद्रा की कामना करता है । जैसे वह कहता है—''यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् । अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्'' ।। उदयन के अत्यधिक प्रेम के कारण ही वासवदत्ता जलकर भी नहीं मरी है । जैसे द्रष्टव्य है—''उपरताऽप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण'' । उदयन के वियोग दुःख को अतुलनीय बताते हुए इसी को ब्रह्मचारी भी प्रथम अङ्क में कहता है—''नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः । धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा'' ।।

उदयन के प्रेमी मन का एक विशिष्ट गुण है सानुक्रोशत्व । अपने इसी गुण के कारण वासवदत्ता का जलन सुनकर स्वयं भी जलना चाहता है । वासवदत्ता इसके इसी गुण को कहती है—''जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।''

सानुक्रोशत्व और दाक्षिण्य दोनों ही गुणों का आधार हृदय की कोमलता है। इसी कोमल हृदय के कारण वह पर दुःख कातर है। चतुर्थ अङ्क में विदूषक जब भौरों पर रोष प्रकट करता है, उदयन उसे रोकता है—"मा मा भवानेवम्" इत्यादि उक्तियों के द्वारा। उज्जयिनी से भाग आने के बाद अपने कोमल स्वभाव के कारण ही वह अङ्गारवती को अपने प्रवास-दुःख से दुःखी समझता हुआ कहता है—"मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु"। इससे उसके हृदय की सरलता भी द्योतित होती है।

उदयन के मन में अपने से बड़ों के प्रति आदर का भाव है। इसी कारण वह आसन से उठकर महासेन के सन्देश को खड़ा होकर सुनता है। दूसरों के गुणों को ठीक से समझना और उचित सम्मान देना वह अपना कर्तव्य मानता है। चतुर्थ अङ्क की समाप्ति पर अतिथियों से मिलने के समय वह अपने इसी गुण के कारण दर्शक के साथ बैठने के लिए जाता है। सामाजिक नियमों के औचित्य का वह समर्थक है। अतः वह पद्मावती को साथ में बिठाकर महासेन का सन्देश सुनता है। वह महापुरुष होने के कारण धैर्यशाली है। जैसे द्रष्टव्य है—"आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति"। उसकी कुलीनता, विद्वत्ता, आयु और रूप को देखकर ही महाराज दर्शक अपनी बहन पद्मावती को उसे देते हैं। जैसे—"अभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता"। चेटी के ही शब्दों में सुन्दरता में वह शरचाप से हीन कामदेव ही है।

इस प्रकार उदयन में महापुरुष के तमाम लक्षण हैं। अतः सचमुच वह अत्यन्त गुणी है। यही कारण है कि पथिक भी राह चलते उसकी प्रशंसा करते हैं। जैसे द्रष्टव्य है "स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनापि अनेन प्रशस्यते"। इस प्रकार उदयन प्रस्तुत नाटक में धीरललित नायक के रूप में चित्रित है।

वासवदत्ता—नाट्यशास्त्र की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक की नायिका वासवदत्ता स्वीया मध्या है। स्वीया मध्या का लक्षण है—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया"। (सा० द० ३।५७)

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।

ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता"॥ (सा० द० ३।५९)

नाटक में पता चलता है कि उदयन का और वासवदत्ता का अन्योन्य प्रेम है। किन्तु दोनों के प्रेम में अन्तर है। उदयन के प्रेम में आसक्ति है परन्तु वासवदत्ता के प्रेम में त्याग। वासवदत्ता अपने पति की प्रतिष्ठा एवं समृद्धि के लिए यौगन्धरायण की योजना के अनुसार चलती है। वह यौगन्धरायण की योजना में विश्वास करती है। जैसे द्रष्टव्य है उसकी उक्ति—"भवतु अविचार्य कर्मं न करिष्यति"। इस विश्वास का नियामक है, वासवदत्ता का उदयन के प्रति अतिशय प्रेम ही। उन्माद प्रेमी-मन की चरमावस्था है। वासवदत्ता भी इस अवस्था को प्राप्त है। जैसे—"जानामि जानामि अयमपि जन एवमुन्मादितः"। वह इसी उन्माद में अपने स्वजनों को छोड़कर उदयन के साथ भाग कर आई। वीणावादन के समय उसके हाथ से कोण खिसक जाता था और वीणा के स्थान पर आकाश में ही हाथ चला करता था। इतना होते हुए भी वह उदयन की समृद्धि के लिए पद्मावती का सपत्न होना स्वीकार करती है। लम्बे विरह के दिनों को बिताती हैं। वह कहती है—"आर्यपुत्रं पश्यामीत्यनेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा"। समुद्रगृह में एकान्त पाकर यद्यपि उसका प्रेम उमड़ता है। वह हृदय एवं दृष्टि की तुष्टि के लिए वहाँ ठहर जाती है। जैसे—"नात्र कश्चिज्जनः। यावन्मुहूर्त्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि"।

उदयन में वासवदत्ता जितना आसक्त है, उससे थोड़ा भी न्यून पतिपरायण नहीं है। पद्मावती से परिणय के बारे में जब वह जानती है कि उसका पति दोषी नहीं तो उसका रोष समाप्त हो जाता है तथा कहती है—"अनपराद्ध इदानीमार्यपुत्रः"। चतुर्थ अङ्क में प्रमदवन में वह अपने पति को विरहकाल में प्रथम बार देखती है और स्वस्थ शरीर देखकर खुश होती है, कहती है—"दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः"। प्रमदवन में ही उदयन के अधीर होने पर वह स्वयं तो जाती है परन्तु उदयन को सान्त्वना देने के लिए पद्मावती

को छोड़ जाती है। जैसे—"एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वायुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि"। यद्यपि पद्मावती उसकी सौत है। परन्तु अपनी विरहावस्था में उदयन की एक मात्र सहायिका पद्मावती ही है, यह समझती हुई उसकी शिरोव्यथा सुनकर वह क्षुब्ध हो जाती है। कहती है—"अहो अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्य आर्यपुत्रस्य विश्रामस्थलभूतेयमपि नाम पद्मावती अस्वस्था जाता।"

वासवदत्ता का हृदय आशुतोष एवं निष्कपट है। पद्मावती के द्वारा यह बात जानकर कि उदयन पद्मावती के वीणा सीखने की प्रार्थना को सुनकर गहरी साँस लेने लगे, वह धन्य-धन्य हो जाती है। उदयन के मुख से "वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति" सुनकर वह कहती है "भवतु भवतु दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य"। वासवदत्ता में सौन्दर्य के साथ-साथ कुलीनता भी है। वह उज्जयिनीनरेश महासेन चण्डप्रद्योत की पुत्री है फिर भी विनयी है। तापसी उसे देखकर कहती है—"यदादृशी अस्या आकृतिरियमपि राजदारिकेति तर्कयामि।" दर्शक की महारानी इसे उच्च कुलप्रसूत समझती हुई ही कौतुक माला गूँथने के लिए चेटी को इसके पास भेजती है। महारानी के शब्दों से "महाकुलप्रसूता, स्निग्धा, निपुणा" ये तीन गुण एक ही साथ आविष्कृत होते हैं। उसमें संवेदनशीलता है। तपोवन में हटायी जाती हुई वह यौगन्धरायण से कहती है—"आर्य! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः।" पद्मावती के सौत हो जाने पर भी उसमें इसका स्नेह कम नहीं होता, न तो ईर्ष्या ही अङ्कुरित होती है। परन्तु सौतमर्दन नामक औषध को बड़ी चतुराई से कौतुक माले में अनुपयोगी सिद्ध कर फेंक देती है। तपोवन में पद्मावती को देखकर ही उसमें वह बहन का सा भाव धारण कर लेती है। कहती है—"राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिका स्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते"। स्वभाव से वह परम दयालु है। समस्त घटनाओं के कारणभूत यौगन्धरायण के प्रति कभी उसके मुँह से एक भी कठोर शब्द नहीं निकलते।

वासवदत्ता सच्चरित्र है। वह प्रोषितभर्तृका का आचरण करती हुई परपुरुष दर्शन का परिहार करती है। इसी कारण पद्मावती उसे न्यासरूप में रखने में

हिचकिचाती नहीं है। उदयन स्वप्नावस्था में वासवदत्ता को देखने के बाद विदूषक से कहता है—"स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्। चारित्रमपि रक्षान्त्या दृष्टं दीर्घालकम्मखम्"।

वासवदत्ता प्रत्युत्पन्नमति है। बहुत जगहों पर अपने पति के पक्ष में वह प्रोषितभर्तृका की मर्यादा को लाँघ जाती है परन्तु बड़ी चतुराई से उस बात को सम्भाल लेती है। जैसे—"आर्यपुत्र ! पक्षपातेन अतिक्रान्तः समुदाचारः। अस्तु दृष्ट उपायः"। पद्मावती के द्वारा क्षमा याचना करने पर वासवदत्ता सगी बहन की तरह उसे स्नेह देती है। कहती है—"अथिस्वं नाम शरीरमपराध्यति।"

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रस्तुत नाटक की नायिका वासवदत्ता है जिसमें स्नेही स्वभाव, सच्चारित्रता, सरलहृदयता, दयालुता, बुद्धिमत्ता, पतिपरायणता, त्याग आदि गुणों का सहज एवं स्वाभाविक विकास मिलता है। इसका प्रेम सम्बन्ध उदयन के साथ जन्म-जन्मान्तरों तक रहने वाला है न कि केवल शरीर मात्र तक है। आदर्शप्रेमिका होती हुई वासवदत्ता एक त्यागपूर्ण नारी का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।

पद्मावती—प्रस्तुत नाटक में पद्मावती स्वीया मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित है। स्वीया का लक्षण है—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया" (सा० द० ३-५७)

मुग्धा नायिका विशेष का लक्षण है—

प्रथमाऽवतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा"॥ (सा० द० ३-५८)

पद्मावती के चरित्र विश्लेषण से सभी लक्षण प्राप्त होते हैं। पद्मावती मगधाधिप दर्शक की बहन है जो किशोरावस्था को पार कर यौवनावस्था में पदार्पण कर चुकी है। अतः रूपयौवन से सम्पन्न पद्मावती है। इसका चित्रण महाकवि भास ने बड़े मनोयोग से किया है। अपूर्व सौन्दर्य का इसमें दर्प नहीं दीखता अपितु दीखती है केवल शालीनता। गुरुजनों के प्रति आदरभाव, धर्म में विश्वास, वचन की दृढ़ता, क्रोध करने की जगह मर्यादित व्यवहार, सपत्नी में भी बहन सा व्यवहार आदि पद्मावती के उदात्त चरित्र की विशेषताएँ हैं।

प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही पद्मावती के दर्शन होते हैं। इसे देखते ही वासवदत्ता के मुँह से अनायास ही फूट पड़ता है "अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।" क्षणभर पहले जो पद्मावती के व्यवहार से परिखिन्न थी, वह वासवदत्ता उसकी प्रशंसा करने में थकती नहीं—"नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा"। द्वितीय अंक में पद्मावती को देखकर सखी की "इयं भर्तृदारिका उत्कर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति" इस उक्ति के द्वारा पद्मावती के वयःसन्धि के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार पद्मावती केवल सुन्दर ही नहीं, श्रेष्ठराजकुल से सम्बन्धित भी है, अत एव कुलीनता एवं शालीनता उसके स्वाभाविक गुण हैं। चतुर्थ अङ्क में जब उदयन विदूषक से अपनी भूत और वर्तमान पत्नियों के बारे में जिज्ञासा करता है तो विदूषक अपनी रुझान पद्मावती की ओर प्रकट करता है। कहता है—"तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या" इत्यादि। उदयन भी उसे सुन्दर एवं गुणों में पूर्ण मानता है। जैसे द्रष्टव्य है—"रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्ताम्" इत्यादि। वासवदत्ता में आसक्त उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करता हुआ कहता है—"भूयश्च विद्धा वयम्" इत्यादि। उदयन के ही शब्दों में पद्मावती के रूप, चरित्र और मधुर व्यवहार ने उसे आकर्षित किया है "पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः" इत्यादि। स्वभाव की मधुरता, सुसंस्कृत व्यवहार और शालीनता, सौन्दर्य को आह्लादक एवं स्तुत्य बनाते हैं। पद्मावती के चरित्र में इन पहलुओं का आद्योपान्त विस्तार ही देखा जाता है।

पद्मावती की धर्म में विशेष रुचि है। कञ्चुकी के कथन "धर्मप्रिया नृपसुता नहि धर्मपीडामिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः" से तथा "कस्यार्थः कलशेन को मृगयते" इत्यादि घोषणा से पद्मावती की धर्मनिष्ठा प्रतीत होती है। इच्छुक तपस्वी को यथाभिलषित दान देकर अपने इस दानकार्य में स्वयं पर तपस्वियों का ही अनुग्रह देखती है। तद्यथा—"आत्मानुग्रहमिच्छति नृपसुता धर्माभिरामप्रिया।" इसकी कुलीनता, शालीनता, धर्माभिरुचि, धीरता आदि गुणों को देखकर ही यौगन्धरायण वासवदत्ता को इसके हाथ में न्यास के रूप में रखना

चाहता है। कहता है--"धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चरित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः।" यौगन्धरायण की इच्छा को पूरा करने में जब इसका काञ्चुकीय टालमटोल करता है तो यह मीठे शब्दों से डाँटती है--"आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीति अयुक्तमिदानीं विचारयितुम्।" इसके साधुस्वभाव को देखकर वासवदत्ता को न्यास रूप में रखते हुए यौगन्धरायण को आत्मविश्वास है कि वासवदत्ता यहाँ उत्कण्ठित नहीं होगी। कहता भी है—"साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यते।"

पद्मावती में उच्चकुलसुलभ शालीनता एवं त्रपा है। उदयन के प्रति उसके युवा मन में अनुरक्ति है। "राजा मोहमुपगतः" ऐसी ब्रह्मचारी की उक्ति को सुनकर पद्मावती मदहोश सी हो जाती है। परन्तु उदयन की चेतना वापस आ गयी यह सुनकर "दिष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्" इत्यादि कथन को करती है। पुनः चेटी जब कहती है "वासवदत्ता के मर जाने पर क्या उदयन अपना दूसरा विवाह करेंगे" तो पद्मावती इसे अपनी मन की बात मानती है। यथा—"मम हृदयनैव सह मन्त्रितम्"। इससे स्पष्ट होता है कि उदयन के प्रति इसकी अनुरक्ति तो है पर शालीनता-पूर्ण है। चतुर्थ अङ्क में वासवदत्ता के "हला ! प्रियस्ते भर्ता ?" प्रश्न का उत्तर वह कुलीनता के साथ देती है—"आर्ये न जानामि। आर्यपुत्रेण विरहिता उत्कण्ठिता भवामि।" विदूषक जब उदयन से बार-बार वासवदत्ता और पद्मावती में उसके प्रेम की अधिकता जानना चाहता है तो पद्मावती इसे बड़ी धृष्टता समझती है और कहती है—"अहोऽस्य पुरोभागिता एतावता हृदयं न जानाति"। उदयन की वासवदत्ता में अत्यधिक आसक्ति जानकर जब चेटी "अदाक्षिण्यः खलु भर्ता" कहती है तो पद्मावती उदयन में दाक्षिण्यगुण ही बताती है—"हला ! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एव आर्यपुत्रो य इदानीमपि आर्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति" इत्यादि के द्वारा।

पद्मावती में धैर्य की पराकाष्ठा है। स्वयं उदयन कहता है "इयं बाला नवोद्वाहा" इत्यादि। पद्मावती का हृदय सत्य को जानकर भी कहीं अपनी मर्यादा को लाँघता नहीं है, भले ही इसके सिर में व्यथा हो गई है, परन्तु कहीं भी रहस्योद्भेदन नहीं है।

पद्मावती के हृदय में दूसरों के प्रति आदरभाव है। दूसरों के आदर में वह अपना सम्मान समझती है। अतः दासी के द्वारा पुष्प समृद्धि को नष्ट नहीं करना चाहती है। कहती है—"आर्यपुत्रेण इहागत्य कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम्"। वासदत्ता के मायके के लोगों का आना जानकर वह उन्हें आत्मीय ही समझती है—"प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम्"। उदयन जब वासवदत्ता की धात्री आदि के समक्ष उसे भी प्रस्तुत करना चाहते हैं तो उनकी मनोदशा को समझती हुई मना करती है—"आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इति उदासीनमिव भवति"। इससे उसके दूसरों के हृदयगत भावों को पढ़ने की क्षमता का पता चलता है। चित्रलिखित वासवदत्ता को देखती हुई वह सिर से उसका अभिवादन करती है। सम्मुख लायी गयी वासवदत्ता का मुख जब राजा देखना चाहता है तो वह "प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति तदार्या पश्यतु सदृशो न वेति" कहकर वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा को वासवदत्ता को देखने के लिए प्रेरित करती है। वासवदत्ता के प्रकट हो जाने पर अपने किये गए सखी-व्यवहार के लिए क्षमा माँगती है। कहती है—"सखिजनसमुदाचारेणाजानन्त्यातिक्रान्तः समुदाचारः तच्छीर्षेण प्रसादयामि"।

इस प्रकार महाकवि भास ने पद्मावती का चित्रण बड़े ही मनोयोग से किया है इसमें सन्देह नहीं। पद्मावती भी प्रस्तुत नाटक की नायिका ही है क्यों कि नाटक का नायक उदयन दक्षिण है अतः उसकी दोनों भार्यायें वासवदत्ता और पद्मावती नायिका ही हैं, ऐसा मेरा विचार है।

स्वप्नवासवदत्तस्य संक्षिप्तकथासारः

प्रथमाङ्कः—प्रथमाङ्के वत्सदेशस्य महामात्यो यौगन्धरायणः स्वयं परिव्राजकनेपथ्य आवन्तिकावेषधारिण्या वासवदत्तयाऽनुगम्यमानस्तपोवनमागच्छति। अस्मिन्नेव काले मगधराजदर्शकभगिनो पद्मावता तपोवनम्प्रविशति। तदाज्ञया तस्याः काञ्चुकोय उद्घोषयति यद् यो यद् वाच्छेत् सः अत्रागत्य याचनां कुर्यात्। यौगन्धरायणो वासवदत्तया सह तमुपसपर्य्य कथयति—इमास्मे भगिनीं प्रोषितभर्तृकां न्यासरूपेण किञ्चित्कालपर्यन्तं स्वीकरोतु भवती। पद्मावती काञ्चुकीयेन निजस्वीकृत्ति वितरति। अतो यौगन्धरायणः स्वकृतज्ञतां प्रकटयति।

अस्मिन्नेवावसरे समागच्छति एको ब्रह्मचारी । यौगन्धरायणेन जिज्ञासितः सः वासवदत्तावियोगविधुरस्य वत्सराजोदयनस्य वृत्तान्तं श्रावयति । तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा सर्वे दुःखिता जायन्ते । अनन्तरं सः ब्रह्मचारी गच्छति । यौगन्धरायणोऽपि पद्मावत्यनुमतिं लब्ध्वा गच्छति । तपोधनाया आशीर्वादं लब्ध्वा पद्मावती-वासवदत्ते पर्णकुटीरम्प्रविशतः ।

द्वितीयाङ्कः—द्वितीयाङ्कस्य प्रवेशके चेटी रङ्गमञ्चम्प्रविश्य सूचयति यत् पद्मावती कन्दुकक्रीडां करोति । अनन्तरं वासवदत्तां वार्तां विदधती प्रविशति पद्मावती । तदानीमेव धात्री आगत्य शुभवृत्तान्तं सूचयति यत् मगधराजेनो-दयनाथ पद्मावती दत्ता, उदयनेन सा स्वीकृता चेति । तदनन्तरमेकाऽन्या चेटी रङ्गमञ्चम्प्रविश्य ताः सूचयति यत् अद्यैव पद्मावत्युदयनयोः परिणयो भवितेति भट्टिनी आदिशति अतः मङ्गलस्थानं शीघ्रमाधादनीयम् ।

तृतीयाङ्कः—तृतीयाङ्के पद्मावत्युदनयोः परिणयवृत्तान्तेन व्यथिता वासवदत्ता प्रमदवने स्वमनः सान्त्वयन्ती रङ्गमञ्चम्प्रविशति । तदानीमेवैका चेटी पुष्पं गृहीत्वा तत्सविधे आगच्छति । सा वासवदत्तां प्रति पद्मावत्याः विवाहार्थं कौतुकमालां ग्रथितुं कथयति । विविधौषधनाम पृच्छन्ती वासवदत्ता मनोज्ञां पुष्पमालां ग्रथ्नाति । परन्तु सपत्नीमर्दनं नामौषधन्तस्यां न गुम्फति । अपरा चेटी आगत्य तां मालां गृहीत्वा व्रजति । तयोः गमनानन्तरं वासवदत्ता स्वध-वस्योदयनस्य द्वितीयविवाहेन भृशं तप्यमाना दुःखं विनोदयितुं शयनागारम्प्र-विशति ।

चतुर्थाङ्कः—चतुर्थाङ्कस्य प्रवेशके पद्मावत्युदयनसम्पन्नविवाहविषये प्रसन्नतां प्रकटयन् स्वास्वस्थतां प्रति चिन्तितः उदयनमित्रः विदूषकः प्रविशति रङ्गमञ्चम् । तदानीमेव तमन्विष्यन्ती एका चेटी तत्रागत्य पृच्छति—"अपि स्नातो जामाता" इति । विदूषकः उदयनस्नानं कथयित्वा भोजनं विहाय विलेपनद्रव्यमेवानेतुं तामादिशति । अनन्तरम् उभौ रङ्गमञ्चात् निष्क्रामतः ।

चतुर्थाङ्कस्य प्रारम्भे पद्मावती, वासवदत्ता, चेटी च प्रमदवने दृश्यन्ते । अत्र वार्तालापक्रमेण वासवदत्ता जानाति यत् यद्यपि पद्मावती उदयने प्रेम करोति, परन्तु वासवदत्तायामाबद्धमुदयनमनः आकर्षितु सक्षमा नास्ति । अन-

न्तरन्तत्र उदयनविदूषकौ आगच्छतः। स्वधवदर्शनं परित्यज्य पद्मावती वासवदत्तां निगूढयितुं माधवीलतानिकुञ्जम्प्रविशति, राजविदूषकावपि सूर्यतापं वारयितुं तन्निकुञ्जं प्रविशतुमिच्छतः। अतः चेटी भ्रमरसंसक्तां लतिकामेकामान्दोल्य तदागमनं वारयति। अनन्तरं राजविदूषकौ बहिरेव तिष्ठतः। इदानीमेव विदूषको राजानं पृच्छति का ते प्रिया? पूर्वं वासवदत्ता, इदानीं वा पद्मावतीति? राजा कथयति–"यद्यपि पद्मावती बहुमता, परन्तु वासवदत्ताबद्धं मे मनः न हरति।" श्रुत्वेमां वार्ताम्पद्मावती राजानम्प्रशंसति, वासवदत्ता चाऽऽत्मतुष्टिं लभते। पुनः राजाऽपि तदेव प्रश्नं विदूषकम्पृच्छति। विदूषकः पद्मावतीम्प्रशंसति। अतः राजा कथयति–"सर्वं खलु निवेदयिष्यामि वासवदत्तायै"। विदूषको वासवदत्तानिधनं स्मारयति। उदयनो रोदिति। विदूषको जलमानेतुं बहिर्गच्छति। अवसरं प्राप्य वासवदत्ता लतामण्डपात् गच्छति पद्मावतीं राजानं सान्त्वयितुमादिश्य।

विदूषको जलमादायागच्छति। राज्ञः समक्षं समुपस्थितां पद्मावतीं दृष्ट्वा तया कारणे पृष्टे सति स कथयति "काशकुसुमरेणुना राज्ञो मुखं साश्रुपातमिति"। राजाऽपि तदेव समर्थयति। अनन्तरं विदूषको राजानं भणति "सम्भाव्यते यदद्य भवता सम्मेलनार्थं मगधराजः आगमिष्यतीति"। अतः सर्वे गच्छन्ति।

पञ्चमाङ्कः–पञ्चमाङ्कस्य प्रवेशके पद्मिनिकामधुकरिके रङ्गमञ्चम्प्रविशतः। उभयोर्वार्तालापेनावगम्यते यत् पदमावती शिरोव्यथया तान्ताऽस्ति। अतः मधुकरिका वासवदत्तायै तद्वृत्तान्तं निवेदयितुं गच्छति। पद्मिनिका च विदूषकमन्विषति। तदनन्तरं पद्मिनिका विदूषकं श्रावयति पद्मावत्या अस्वस्थतावृत्ताम्। अनन्तरं सा शीर्षानुलेपनमानेतुं गच्छति। विदूषकश्च तद्वृत्तान्तं राजानमुदयनाय निवेदयितुं गच्छति।

पञ्चमाङ्कस्य प्रारम्भे वासवदत्तावियोगविधुरो राजोदयनो रङ्गमञ्चम्प्रविशति। तदानीमेवागत्य विदूषको राजानं पद्मावतीशिरोवेदनां श्रावयति। पद्मावतीमपि वासवदत्तामिव चिन्तयन् राजा समुद्रगृहमुपसर्पति। विदूषकद्वितीयो राजा समुद्रगृहे पद्मावतीमलब्ध्वा तत्प्रतीक्षां कुर्वाणः शय्यामधिशेते। विदूषकः तन्मनोरञ्जनाय कथां कथयति। तदानीमेव राजा शेते। सुप्तं तं ज्ञात्वा विदूषकः शीतमपसारयितुं प्रावारकमानेतुं बहिर्गच्छति।

अस्मिन्नेव काले वासवदत्ता चेट्या निर्दिश्यमाना तत्रागच्छति। शयानं राजानं पद्मावतीति मन्यमाना वासवदत्ता तस्मिन्नेव पर्यङ्के स्वपिति। राजा स्वप्ने वासवदत्तामाह्वयति। वासवदत्ता राजानं विज्ञायोत्तिष्ठति। राजा स्वप्ने वासवदत्तां पश्यति तथा प्रणयगर्भितैर्वाक्यैः संलपते। किञ्चित्कालानन्तरं वासवदत्ता तल्पात् बहिरवलम्बमानं हस्तं तल्पे निधायापरदर्शनशङ्कया बहिर्गच्छति। राजा तत्स्पर्श-सुखमनुभूय तां गृह्णातुमिच्छति परन्तु वासवदत्ता तद्धस्तमपसार्य प्रपलायते। राजाऽपि तामनुसरति, परन्तु द्वारपक्षेण ताडितः सन्तिष्ठते।

तदानीमेव विदूषक आगच्छति। तं प्रति वासवदत्तादर्शनम्प्रस्तौति उदयनः। परन्तु विदूषकः कथयति यत् उज्जयिनीसम्बन्धितकथाश्रवणादेव सा भवता स्वप्ने दृष्टा, सा तु निश्चयेनोपरता। अनन्तरं राजविदूषकौ भवने व्रजतः। तत्र काञ्चुकीयो महाराजदर्शकवृत्तान्तम् उदयनं श्रावयति यत् आरुणिशत्रुविनाशाय भवन्मन्त्री रुमण्वान् महासैन्यसंयुक्तआगतोऽस्ति, अस्माकमपि चतुरङ्गिणी सेना सन्नद्धा वर्तते, अतः युद्धार्थं प्रयाणं कुरु। राजा प्रयाणं करोति।

षष्ठाङ्कः—षष्ठाङ्कस्य विष्कम्भके काञ्चुकीयो रङ्गमञ्चम्प्रविश्य प्रतीहारी-मादिशति यत् महाराजमुदयनं श्रावय—महाराजचण्डप्रद्योतसकाशात् तस्य काञ्चुकीयः, महिष्याऽङ्गारवत्या प्रेषिता वासवदत्ताधात्री चोपस्थिता। प्रतीहारी सन्देशं श्रावयितुमसमर्थतां प्रकटयति। सा कथयति घोषवतीवीणाधिगमनादधुना महाराजोदयनस्य वासवदत्ताविरहदुःखं नूतनञ्जातमतोऽधुना तत्समीपगमनस्य नास्ति देशः कालश्च। अयमपि वृत्तान्तः वासवदत्तासम्बद्ध इति कथयित्वा काञ्चु-कीयः पुनः आदिशति। अथ प्रतीहारी सूचयति यत् विदूषकेन सह राजा इत एवा-गच्छति, अत्रैव तस्मै निवेदयिष्यामि। अतः प्रतीक्षमाणौ तौ तिष्ठतः।

अनन्तरं षष्ठाङ्कस्य प्रारम्भे विलपन् राजा घोषवतीमङ्के निधाय तामुपालभ-मानः प्रविशति। सो घोषवतीवीणायाः शुद्ध्यर्थं विदूषकं प्रेषयति। गते विदूषके प्रतीहारी राजानम्प्रति महासेनकाञ्चुकीयस्य वासवदत्ताधात्रीवसुन्धरायाश्चागमनं श्रावयति। राजा पद्मावतीमाहूय तौ सादरमुपस्थापयितुं प्रतीहारीमादिशति। वसुन्धराकाञ्चुकीयौ आगत्य राजानम्प्रति महासेनस्य सन्देशं कथयतः यत् "तव वासवदत्तायाश्च चित्रफलकं निर्मापयित्वा अङ्गारवतीप्रद्योताभ्यां युवयोः परिणयः सम्पादितः। यद्यपि वासवदत्तामृता, तदपि युवयोः चित्रं प्रेष्यत" इति। एवमुक्त्वा

राज्ञः समक्षं तयोश्चित्रफलकं स्थापयतः। चित्रं दृष्ट्वैव पद्मावती आवन्तिक स्मरति। सा राजानं कथयति एतादृशी रूपवती वनिताऽत्रैव निवसति। राज तामानेतुमाज्ञापयति।

अस्मिन्नेव काले छद्मब्राह्मणवेषे यौगन्धरायणः आगत्य स्वभगिनिक याचते। इतः पद्मावती अवन्तिकावेषधारिणीं वासवदत्तां गृहीत्वा राजानमुप सर्पति। साक्षीभूता वासवदत्ताधात्री तां वनितां पश्यति। धात्री वासवदत्त परिचिनोति। झटित्येव यौगन्धरायणोऽपि छद्मवेषं परित्यज्य स्वं प्रकटयति सर्वत्रैवानन्दो जायते।

प्रमुखपात्राणां चरित्रचित्रणम्

उदयनः—सामान्यनायकगुणैर्युक्त उदयनः धीरललितनायकत्वेन प्रथितोऽस्ति अस्मिन् स्वप्नवासवदत्ते नाटके। धीरललितस्य लक्षणं यथा साहित्यदर्पण कीर्तितम्—"निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्" इति उदयनस्य चारित्रिकविश्लेषणे सति निम्नाङ्कितानि वैशिष्ट्यानि दृश्यन्ते—

उदयनः प्रसिद्धभरतवंशीयो नरेन्द्रोऽस्ति, यः वत्सदेशस्य शासनं करोति अस्य प्रेम वासवदत्तायामुदात्तमस्ति। स वासवदत्तायै सकलमिमं संसारं शून्य मिव पश्यति। पद्मावत्या सह अस्य परिणये सम्पादितेऽपि असौ तस्यां न रमते चतुर्थाङ्के पद्मावती कथयति "तर्कयामि आर्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्व दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदिति"। प्रमदवने एव यदा विदूषकः पद्मावतीं प्रशंसति तदा उदयनः कथयति—"वसन्तक! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासव दत्तायै"। पञ्चमाङ्के उदयनः स्वप्नेऽपि वासवदत्तासंयोगं सबहुमानं पश्यति स कथयति—"यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्। अथायं विभ्रमो व स्याद्विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्"। प्रथमाङ्के उदयनप्रेम प्रशंसन् कथयति ब्रह्म चारी—"नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः। धन्या स स्त्री यां तथा वेति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा"। इत्थमत्रोदयन प्रेम्णः आदर्श इति नात्र सन्देहः।

उदयनहृदये सानुक्रोशत्वं दृश्यते। वासवदत्ता तद्गुणं प्रशंसति—"जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।" चतुर्थाङ्के यदा विदूषको माधवीलता

निकुञ्जं प्रवेष्टुम्भ्रमरसन्त्रासमुत्पादयितुं प्रयतते तदा वारयति उदयनस्तम्—"मा मा भवानेवम्" इत्याद्युक्तिभिः। अस्य मनसि श्रेष्ठानां गुरुजनानां कृते आदरभावो दृश्यते। स वासवदत्ताधात्रीम्प्रति वासवदत्तामातुरङ्गारवत्याः कुशलं पृच्छति--"मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु" इत्यादिकथनेन। वसुन्धराकाञ्चुकीययोः मुखात् श्राव्यमाणं महासेनसन्देशं श्रोतुम् आसनात् उत्तिष्ठते।

अयमुदयनोऽस्ति धृतिमान्। यथा चतुर्थाङ्के चेट्या कथ्यते—"आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति"। उदयने कुलीनता, विद्वत्ता, आयुः, सौन्दर्यञ्चेत्येते गुणाः विद्यन्ते, येन प्रभावितः सन् महाराजदर्शकस्तस्मै स्वभगिनीं पद्मावतीं दातुमैच्छत्। तद्यथा द्वितीयाङ्के चेटी कथयति—"अभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता"। तृतीयाङ्के यदा वासवदत्ता जामातुः उदयनस्य विषये पृच्छति, चेटी ताम्प्रति तमुदयनं शरचापहीनं मन्मथमेव प्रस्तौति।

यद्यपि उदयने सन्ति केचित् मानवसुलभा दोषास्तदपि अस्मिन् गुणानामाधिक्यं दृश्यते। अयं हि प्रेमिलोकस्यादर्शमस्मिन् जगति प्रस्तौति नात्र सन्देहः।

वासवदत्ता—महासेनचण्डप्रद्योतस्य पुत्री अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता अस्य नाटकस्य प्रधाननायिकास्ति, या स्वीया मध्या चित्रिताऽस्ति। साहित्यदर्पणे स्वीयायाः नायिकायाः लक्षणं यथा--"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया"। मध्यायाः लक्षणं यथा तत्रैव—"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना। ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता"॥ वासवदत्ताचरित्रविश्लेषणे निम्नाङ्कितवैशिष्ट्यानि प्राप्यन्ते--

वासवदत्तायाः उदयने अद्भुतं प्रेम अस्ति, यस्मिन् त्यागस्य भावना विद्यते। उदयनसमृद्ध्यर्थमेव स्वपतिविरहं स्वीकृत्य यौगन्धरायणनीत्यनुरूपं प्रयतते। यौगन्धरायणे विश्वसिति। अस्मिन् विश्वासे मूलमस्ति उदयन प्रेम एव। सा कथयति "भवतु अविचार्यं क्रमं न करिष्यति"। पञ्चमाङ्के समुद्रगृहके च सा कथयति—"किं नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वायंयौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः"। इत्थमियं यौगन्धरायणवदेव स्वकार्यसाधने

धीराऽस्ति । अस्यैव कृते इयं स्वसमक्षमेव पद्मावतीं स्वीकरोति । स्वकीयान् विरहदिवसान् यापयन्ती सा कथयति—"आर्यपुत्रं पश्यामीत्यनेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा" ।

इयमस्ति पतिपरायणा वासवदत्ता । पद्मावत्या सह परिणये तस्य धवो नास्ति दोषभाक् इति ज्ञात्वा तद्रोषः विलीयते सा कथयति—"अनपराद्ध इदानीमार्यपुत्रः" । चतुर्थाङ्के स्वविरहावधौ प्रथमेऽवसरे दृष्ट्वा सा कथयति—"दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः" । यदा चतुर्थाङ्के विदूषकस्मारितां वासवदत्तां स्मृत्वा राजा साश्रुपातः सन्तिष्ठते, तदा सा तु गच्छति परन्तु पद्मावतीं धवोदयनस्य सविधे प्रेषयति । पञ्चमाङ्के पद्मावत्याः शिरोव्यथां श्रुत्वा सा खिन्ना जायते कथयति च—"अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थलभूतेयमपि नाम पद्मावती अस्वस्था जाता" । इत्थं बहुषु स्थलेषु वासवदत्तायाः पतिपरायणता चित्रिता वर्तते ।

वासवदत्ता स्वभावेन सरला निष्कपटपूर्णा चास्ति । उदयनमुखात् "वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनोहरती" ति श्रुत्वा सा कथयति—"भवतु, भवतु दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य" इति । अस्यां सौन्दर्यानुसारमेव कुलीनताऽप्यस्ति । तापसी तां दृष्ट्वा कथयति—"यदीदृशी अस्या आकृतिरियमपि राजदारिकेति तर्कयामि" । दर्शकभामिन्यपि अस्या विषये चेटीमुखात् कथयति—"महाकुलप्रसूता, स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या" इति । तपोवनादुत्सार्यमाणेयं यौगन्धरायणं कथयति—"आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः" । अस्याः पद्मावत्यां भगिनीस्नेहो दृश्यते । तद्यथा—"राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते" । समस्तघटनासञ्चालकं यौगन्धरायणम्प्रति कदापीयं कटुवाक्यं न आचरति ।

अस्तीयम्प्रत्युत्पन्नमतिः । बहुषु स्थलेषु पतिपक्षपातं विदधत्यपि एषा चातुर्येण कथनेन रहस्योद्भेदनं न करोति । तद्यथा—"आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । अस्तु दृष्ट उपायः" इत्यादि । सखीजनव्यवहारार्थं क्षमायाचमानायां पद्मावत्यां स्नेहं वितरन्ती सा कथयति—"अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति" । इत्थं वासवदत्ताऽस्मिन् नाटके आदर्शप्रेमिका सती त्यागपूर्णभूमिकामुपस्थापयति ।

पद्मावती -- नाटकेऽस्मिन् पद्मावती स्वीयामुग्धानायिकारूपे चित्रिताऽस्ति। स्वीयायाः लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे--"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।" मुग्धायाः विशेषलक्षणं यथा--"प्रथमाऽवतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।" पदमावतीचरित-विश्लेषणे कानिचित् वैशिष्ट्यानि प्राप्यन्ते यानि अधोलिखितानि सन्ति---

इयमस्ति प्रख्यातनृपस्य मगधराजस्य दर्शकस्य भगिनी। अस्या अवस्थाऽस्ति किशोरतरुणावस्थयोः सन्धौ। प्रथमाङ्कस्य प्रारम्भे एवास्याः दर्शनञ्जायते। एनां पश्यन्ती एव वासवदत्ता कथयति—"अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्", "नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा" इत्यादि। द्वितीयाङ्कस्य चेट्याः "इयं भर्तृ-दारिकोत्कीर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन" इत्यादिकथनेन एतस्या अपूर्व सौन्दर्यं ध्वन्यते।"

अस्यां न केवलमस्ति सौन्दर्यमपितु कुलीनताशालीनतेऽपि दृश्येते। विदूषकं चतुर्थाङ्के प्रशंसति—"तरुणी दर्शनीया, अकोपना अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदा-क्षिण्या" इत्यादि। उदयनोऽपि एनां प्रशंसति—"रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्ताम्" इत्यादिना। अन्यत्र च उदयन एव--"पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः" इत्यादिना प्रशंसति।

एतस्या धर्मे विशेषाभिरुचिर्दृश्यते। कञ्चुकीवाक्यैः तद्यथा स्पष्टीक्रियते—"धर्मप्रिया नृपसुता नहि धर्मपीडामिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः", "कस्यार्थः कलशेन को मृगयते" इत्यादिभिः। इयं दानप्रदानेन तपस्विनां स्वस्यां कृपां याचते। तद्यथा--"आत्मानुग्रहमिच्छति नृपसुता धर्माभिरामप्रिया"। यौगन्ध-रायणोऽपि एनां प्रशंसति—"धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चरित्रं रक्षितुम्मे भगिन्याः" इत्यादिना। इयं प्रथममुद्घोष्य याचनां तिरस्कारार्थं स्वकाञ्चुकीयं विजल्पति--"आर्य! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीति अयुक्तमिदानीं विचार-यितुम्" इत्यादिना। अनेन एतस्याः सत्यवादिता, धीरता च लक्षिता।

उच्चकुलानुरूपमेवैतस्यां त्रपा विद्यते। यद्यपि अस्य युवमनसि विद्यते उदयनासक्तिः, परन्तु कुत्रापि इयं प्रगल्भा न दृश्यते। यदा चेटी उदयनविवाह-प्रसङ्गमारभते तदेयं कथयति--"मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्" चतुर्थाङ्के यदा

वासवदत्ता एनां पृच्छति–"हला ! प्रियस्ते भर्ता ?" इति, सा कथयति–"आर्ये ! न जानामि । परन्तु आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि" । "कतमा ते प्रिया" इति राजानमुदयनं प्रति विदूषकस्य हठोक्ति श्रुत्वा सा कथयति–"अहोऽस्य पुरोभागिता, एतावताऽपि हृदयं न जानाति" इति । यदा चेटी उदयने दाक्षिण्य-शून्यत्वं प्रस्तौति तदा सा वारयति–"हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एव आर्यपुत्रो, य इदानीमपि आर्याया वासवदत्तायाः गुणान् स्मरति" इत्यादिना ।

पद्मावत्यां दृश्यते धैर्यस्य पराकाष्ठा स्वयमुदयनोऽप्येनां प्रशंसति—'इयं बाला नवोद्वाहा" इत्यादिना । यद्यपि एतस्या मस्तके व्यथा जायते, परन्तु कुत्रापि एतेनोदयने क्रोधो न प्रदर्शितः ।

अन्येषां गुरुजनानां कृते एतस्याः हृदये आदरभावोऽस्ति । वासवदत्तायाः मातृकुलस्य जनागमनावसरे इयं वृत्तान्तश्रवणे दत्तचित्ताऽस्ति । सा कथयति–– प्रियम्मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम्" । इयमस्ति समाजाशयवेदिनी । अत एव सा वासवदत्तामातृकुलजनाभिमुख गन्तुं नेच्छति । सः कथयति––आर्यपुत्रस्या-परः परिग्रह इति उदासीनमिव भवति ।" चित्रलिखितां वासवदत्तामेषा शिरसा नमस्करोति ।

इयमस्ति निरहङ्कारा । कदापि इयं वासवदत्तायां सपत्नव्यवहारम्प्रदर्शयितुं न वाञ्छति । आवन्तिकैवास्ति वासवदत्तेति ज्ञात्वेयं क्षमां याचते । सा कथयति– "सखिजनसमुदाचारेणाजानन्त्यातिक्रान्तः समुदाचारः, तच्छीर्षेण प्रसादयामि" ।

इत्थम्महाकविना भासेनेयं पद्मावती सुष्ठु चित्रितेति नात्र सन्देहः । उदयनस्य दक्षिणनायकत्वादियमप्यस्त्येषस्य नाटकस्य नायिकेति, नात्र विमतिः ।

यौगन्धरायणः—उदयनो धीरललितो नायकोऽस्ति, यस्य राज्यधुरं महा-मात्यो योगन्धरायणो वहति । यद्यपि यौगन्धरायणस्य रङ्गमञ्चे आगमनं नाटकस्य प्रारम्भे अन्तिमे च भागे दृश्यते परन्तु सम्पूर्णस्यास्य नाटकस्य सञ्चालको केन्द्रविन्दुः वा अयमेव प्रतिभाति । अस्य चरित्रविश्लेषणे निम्नाङ्कितानि वैशिष्ट्यानि दृश्यन्ते–

वत्सदेशमहामात्यो योगन्धरायणः स्वामिभक्तोऽस्ति । अयं वंशानुगतो ब्राह्मणोऽमात्योऽस्ति । अस्यैका एव भावनाऽस्ति सर्वविधमुदयनराज्यविस्तारः स्यात् । अस्यैव कूटनीतिसाफल्येनापूर्वसुन्दरी महासेनपुत्री वासवदत्ताऽपहृतो-

दयनेन। परन्तु उदयनस्य तस्यामद्भुताऽनुरक्तिर्जाता। अतः उदयनो राज्यधुरं महामात्ययौगन्धरायणे निक्षिप्य ललितादिकलाविलासी जातः। अत एव यौगन्धरायणेन द्वितीया कूटनीतिः प्रचालिता। अनेन वासवदत्तादहनं स्वस्य दहनञ्च लोके प्रसारितम्। यौगन्धरायणस्येमां योजनां सर्वेऽपि उच्चाधिकारिणो जानन्ति स्म। वासवदत्ताऽपि योजनामिमां जानन्ती अङ्गीकृतवती। इदमेव तथ्यं यौगन्धरायणस्य देशभक्ति, महत्तां, विश्वसनीयताञ्च प्रकटयितुमलम्।

यद्यपि सः नाटकस्य मध्ये नागतः, परन्तु सम्पूर्णयोजनाया अयमेव सूत्रधार इति प्रतीयते। उच्चाधिकारसम्पन्ने विश्वसनीयतापात्रभूतेऽपि अस्मिन् यौगन्धरायणे गर्वमानप्रभृतयो दोषा न दृश्यन्ते। योजनायां फलीभूतायामपि अयं राज्ञः विभेति। इयं नम्रता स्वामिभक्तिकारणादेवास्ति तस्मिन्। अतः स कथयति—"सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ। किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे" इति।

अयमस्ति प्रौढबुद्धिकः, प्रत्युत्पन्नमतिश्च। प्रथमाङ्के पद्मावतीभटोत्सारणकारणात् विग्नां वासवदत्तां सान्त्वयति, अनेनैतस्य बुद्धेः प्रौढता दृश्यते। पद्मावतीकाञ्चुकीयमुखेन--"तत्कस्याद्य किं दीयताम्" इति श्रुत्वैव स कथयति--"हन्त दृष्ट उपायः" इति। इत्यनेनैतस्य प्रत्युत्पन्नमतित्वं लक्ष्यते। पद्मावतीहस्ते वासवदत्तान्यसने तस्य दूरदर्शिबुद्धेः प्रमाणं प्राप्यते। वासवदत्तापद्मावत्योः सपत्न्योः जायमानयोः अपि भगिनीवत् प्रेम स्यादित्यस्मादेव कारणादिदं कार्यं पद्मावत्युदयनपरिणयपूर्वमेव सम्पादितम्।

अयमस्ति यशोनिरभिलाषी। फलप्राप्तौ अपि अयं तस्याः सम्पूर्णं श्रेयः रुमण्वते वितरति। स कथयति प्रथमाङ्के आत्मगतत्वेन—"सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः। तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः" इति। योजनासाफल्येऽयमुदयनभाग्यमेव कारणत्वेनाङ्गीकरोति। तद्यथा—"स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम्"। सर्वविषमावस्थासु, सर्वोपायैः स। स्वस्वामिनं स्वराज्यञ्च परिपालयति। तद्यथा उदयनकथनम्—"मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः। भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः" इति। अत्रैवोदयनः

सूत्ररूपेण यौगन्धरायणस्य विविधगुणान् प्रशंसति। तद्यथा—"यौगन्धरायणो भवान् ननु"। अत्रेदमवधेयम्—निश्चयेन भवान् युगं धरतीति युगन्धरस्तस्यापत्यं पुमान् यौगन्धरायणोऽस्ति।

इत्थं यौगन्धरायणोऽत्र सहयोगिपात्रत्वेन चित्रित इति।

विदूषकः—"कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः" इति विश्वनाथकृतमस्ति विदूषक-लक्षणम्। प्रायशः नाटकविदूषकाः एभिरेव लक्षणैर्युक्ता दृश्यन्ते। एतानि लक्षणानि स्वप्नवासवदत्तस्यापि विदूषके दृश्यन्ते। अयं यदा रङ्गमञ्चम्प्रविशति तदा "अनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते," "वातशोणितमभित इव वर्तते पश्यामि," "कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्त" इत्याद्युक्तिभिः हास्यपात्रतामेव भजते। परन्तु कथानकगम्भीर्यात् अस्मिन् अपि दृश्यन्ते कानिश्चित् वैशिष्ट्यानि तानि प्रदर्श्यन्ते—

अस्य नाटकस्य विदूषको वसन्तकाभिधेयो वासवदत्ताविरहविधुरमुदयनं संयमितुं प्रयतमानोऽस्ति। विविधस्थलेषु अनेनेदं कार्यं सम्यक् सम्पादितम्। चतुर्थाङ्के "धारयतु-धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः" इत्याद्युक्तिभिरयमुदयनं शमयति। विषमावस्थामापन्नमुदयनमयं स्वोक्तिभिः त्रायते। चतुर्थाङ्के एव यथा रुदनकारणं पद्मावतीं प्रति विज्ञापयति विदूषकपरामर्शेणोदयनः—"काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखम्मम" इत्यनेन विदूषकस्य प्रत्युत्पन्नमतित्वं दृश्यते। पुनः विदूषकस्तमुदयनं चातुर्यपूर्णव्यहारेण तस्मात् स्थानात् दूरं नयति।

यद्यपि अयमस्ति बुद्धिमान् तदपि यत्र कुत्रापि मूर्खवदाचरति। यथा पञ्चमाङ्के रात्रिनिविडतमसि तोरणमालां सर्प इति कथयति। परन्तु चतुर्थाङ्के अनेन पद्मावत्याः प्रमदवने आगमनं तत्स्थलात् परावर्तनञ्च त्रोटितपुष्पनिकरादनुमीयते, इत्यनेन ज्ञायते यदयमस्ति बुद्धिमान्।

यद्यपि अयं जानाति यौगन्धरायणस्य योजनाम्। परन्तु तद्रहस्योद्भेदमकृत्वैव चातुर्येण उदयनं धैर्यं धारयति। पञ्चमाङ्के वासवदत्तां दृष्ट्वा यदोदयनः वासवदत्ताजीवनं कल्पते तदा विदूषकः "अविहा! वासवदत्ता……," "उदकस्नान सङ्कीर्तनेन…सा स्वप्ने दृष्टा भवेत्," "अवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी……दृष्टा

भवेत्'' इत्यादिनिजोक्तिभिः उदयनं सान्त्वयति। अनन्तरं स स्वबुद्धिकौशलेन प्रसङ्ग-मेव परिवर्तितवान् ''मेदानीं भवान् अनर्थं चिन्तयित्वा। एतु एतु भवान्। चतुः शालं प्रविशावः'' इत्यादिकथनेन।

यत्र कुत्रापि अयं राज्ञो मनोविनोदमपि करोति। यथा समुद्रगृहके स उदयनम्प्रति कथां करोति मौर्ख्यपूर्णाम्। तद्यथा—''अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम''।

इत्थं विदूषको नाटकस्यास्य मुख्ययोजनायां सहायकोऽस्ति, यः स्वकीयं प्रसिद्धं हास्यव्यक्तित्वं किञ्चिदंशे धारयित्वा चातुर्येण स्वकीयमुत्तरदायित्वं वहति।

नाटकस्य काश्चन सूक्तयः

१. अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यप्यवधूयन्ते।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—सूक्तिरियम्महाकविभासप्रणीतनाटकस्य स्वप्नवासवदत्तस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृताऽस्ति। अनया सूक्त्या उत्सारणपरिभवखिन्नां वासवदत्तां सान्त्वयति यौगन्धरायणः।

व्याख्या—यदा वासवदत्ता आवन्तिकावेषधारिणी यौगन्धरायणम्प्रति पृच्छति अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति तदा यौगन्धरायणः उत्तरति भवति != माननीये !, एवम् = इत्थम्, अनिर्ज्ञातानि = अविदितानि, अपरिचितानीति भावः, दैवतानि = सुराः, अपि = च, अवधूयन्ते = तिरस्क्रियन्ते। अयम्भावः = अत्रभवतीं वासवदत्तां कोऽपि न जानाति यत् भवती अस्ति महाराजोदयनस्य भार्या वत्स देशराजमहिषी। अतस्त्वद्विषयेऽपि उत्सारणकार्यं सुनिश्चितमेव। अतस्त्वं विषादं मा वह॥ १॥

२. चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तानाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या यौगन्धरायणः भाग्यस्यानुल्लङ्घनीयत्वं प्रस्तूय वासवदत्ताव्यथां परिहरति।

व्याख्या—महाराजदर्शकभटोत्सारणकार्यविग्नां वासवदत्तां यौगन्धरायणः सान्त्वयति यत् भुक्तोज्झित एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या। यतो हि

यदा भवती राजमहिषी आसीत् पद्मावतीसदृशमेव गमनं त्वयाऽपि अभीष्टमासीत्। पुनः भर्तुरुदयनस्य विजयानन्तरमित्थमेव यास्यसि। इदमेवार्थान्तरेण द्रढयति-जगतः=लोकस्य, कालक्रमेण=समयपरिपाट्या, परिवर्तमाना=परिभ्रमन्ती, भाग्यपङ्क्तिः=अदृष्टपरम्परा, चक्रारपङ्क्तिः=रथाङ्गावयवश्रेणिः, इव=यथा, गच्छति=व्रजति। अयम्भावः=यथा स्यन्दनचक्रनेमिरुन्नतावनतक्रमेण गच्छति तथैव भाग्यमपि क्रमेण विपर्ययमधिगच्छति। अतोऽत्र परिभवो मा ध्यातव्य इति ॥ २ ॥

३. प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या यौगन्धरायणः पद्मावत्यां स्वात्मीयतायाः कारणं समर्थयति।

व्याख्या—संन्यासिवेषे प्रच्छन्नो यौगन्धरायणः स्वगतत्वेन विचारयति यदियमेव पद्मावती पुष्पकभद्रादिभिः ज्योतिर्विद्भिः महाराजोदयनभार्या भवितेति आदिष्टा। अत एव एतस्यां भाविराजमहिष्यास्मे महामात्यस्य महती आत्मीयताऽनुभूयते। अत्र कारणम्प्रस्तौति, यतो हि—प्रद्वेषः=अत्यधिकाऽप्रीतिः, बहुमानः=अत्यधिकादरः, वा=अथवा, सङ्कल्पात्=मानसकर्मणः, उपजायते=उत्पद्यते। कस्यचिज्जनस्य कस्मिंश्चिदपि जने वस्तुनि वा स्वमनोव्यापारादेव रागो विरक्तिर्वा उत्पद्यत इति भावः ॥ ३ ॥

४. दुःखं न्यासस्य रक्षणम्।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या पद्मावतीकाञ्चुकीयो न्यासरक्षणस्य दुष्करत्वमुपस्थापयति।

व्याख्या—पूर्वं तु काञ्चुकीयः पद्मावत्याऽऽदिष्टः दानं ग्रहीतुं तपस्विषु घोषणां करोति, परन्तु यदा यौगन्धरायणः प्रोषितभर्तृकायाः स्वभगिन्या आवन्तिकायाः पद्मावतीसंरक्षणं याचते तदा काञ्चुकीयः कथयति-अर्थं, प्राणान्, तपः, अन्यत् सर्वमपि वस्तु दातु कोऽपि सुखं समर्थो जायते, परन्तु न्यासस्य रक्षणे स समर्थो भविष्यति न वेति अनिश्चितमेव। अतः दुःखं=कष्टबहुलमस्तीति शेषः, न्यासस्य=निक्षेपस्य, रक्षणं=गोपनमिति। अतः सर्वतोभावेन तव भगिनीं रक्षयिष्याम इति प्रतिश्रुतिं कथं कुर्म इति भावः ॥ ४ ॥

५. तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यनाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः । अनया सूक्त्या यौगन्धरायणो रुमण्वतः महद्भारं समर्थयति ।

व्याख्या—यौगन्धरायणः ब्रह्मचारिमुखात् वासवदत्ताविरहविधुरस्योदयनस्य विक्षिप्तावस्थां, श्रुत्वा राजानं पर्यवस्थापयितुं रुमण्वतः परिश्रमं च ज्ञात्वाऽऽत्मगतत्वेन तत्परिश्रमदुष्करत्वं विचारयति—मया तु राजमहिषी वासवदत्ता पद्मावतीहस्ते सुन्यस्ता, परन्तु इदानीं रुमण्वान् दुष्करं कर्म करोति । यतो हि-तस्मिन्=मन्त्रिणि रुमण्वति, सर्वं=सकलम्, अधीनम्=आयत्तं, यत्र=यस्मिन् रुमण्वति, नराधिपः=राजा, अधीनः=आयत्तः, अस्तीति शेषः । मद्भारापेक्षया रुमण्वतो भारो गुरुतर इति भावः ॥५॥

६. तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वकं गेहमिति ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः । अनया सूक्त्या तपोवनमागतां पद्मावतीम्प्रति तापसी तपोवनस्य सर्वंजनसुलभत्वमुपस्थापयति ।

व्याख्या—तापसी पद्मावतीनमस्कारं स्वीकृत्य स्वागतं व्याहरति—पुत्रि ! प्रविश । तपोवनानि=तपःस्थलानि, अतिथिजनस्य=आगन्तुकस्य, कृत इति शेषः, स्वकं=निजं, गेहं=भवनम्, एव भवतीति शेषः । अत्रेदमवधेयम्—लोकविरताः वानप्रस्थिनः संन्यासिन एव तपोवनं निवसन्ति । ते रागद्वेषं विहाय मोक्षप्राप्तये प्रयतन्ते । अतः सर्वेष्वेव प्राणिषु तेषां समभावो दृश्यते । सर्वेष्वेव ते स्निह्यन्ति । तेषां कृते यथा पापास्तथैव धर्मचारिणोऽपि । अतः तपःस्थलं सर्वेषां प्राणिनां गृहमिति भावः ॥ ६ ॥

७. सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः । अनया सूक्त्या काञ्चुकीयः ब्रह्मचारिणम्प्रति आश्रमस्य सर्वंजनसुलभत्वं प्रस्तूय प्रविष्टुं प्रेरयति ।

व्याख्या—यदा ब्रह्मचारी तपोवने आगत्य तत्रस्थस्त्रीसमुदायं पश्यन् स्वं प्रवेशनात् वारयितुमिच्छति तदा तत्प्रवेशार्थं मगधराजकाञ्चुकीयः कथयति—भवान् ! स्वैरं स्वैरं प्रविशतु । यतो हि—सर्वजनसाधारणं=सकललोकसामान्यम्,

आश्रमपदं=तपःस्थलं, नाम=निश्चयेन। लोकविरतानां तपस्विनां सविधे आगन्तुं सर्वेऽपि प्राणिनः कृतोत्साहा दृश्यन्ते। अतः स्त्रीसमुदायं दृष्ट्वा कापि शङ्का मा कार्येति भावः ॥ ७ ॥

८. सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य द्वितीयाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या पद्मावती उदयनमनोज्ञतां कल्पते।

व्याख्या—मगधराजप्रासादवने उदयनस्वरूपप्रसङ्गे जाते यदा वासवदत्ता पतिपक्षपातेन उदयनस्वरूपं प्रशंसति तदा पद्मावती तद्रूपदर्शनकारणं पृच्छति। अनन्तरं वासवदत्ता व्याजोक्ति भणति यत् तया उज्जयिनीयानां जनानां मन्त्रणयेदं कथ्यते। अतः पद्मावती अस्य कथनस्य समर्थनमनया सूक्त्या करोति यत् न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वेऽपि जनाः उज्जयिनीयाः अपूर्वलावण्यसंयुक्तमुदयनं दृष्टवन्तो भवेयुः। यतो हि—सौभाग्यं=सौन्दर्यं, सर्वजनानां = सकललोकानां, मनसां = चेतसां, कृत इति शेषः, अभिरामं=मनोज्ञं, नाम = निश्चयेन, खलु, भवतीति शेषः ॥ ८ ॥

९. अनतिक्रमणीयो हि विधिः।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य चतुर्थाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या विदूषकः वत्सराजोदयनं धैर्यं धारयति।

व्याख्या—यदा चतुर्थाङ्के वासवदत्ताप्रसङ्गजाते उदयनः तां स्मृत्वा रोदिति तदा विदूषकस्तं सान्त्वयति—भवान् धैर्यं धारयतु। यतो हि—विधिः = दैवं, अनतिक्रमणीयः=अनुल्लङ्घनीयः। तव वासवदत्तायाः संयोगः इयत्कालार्थं मेवासीत्। भाग्यस्यातिक्रमणं कर्तुं न शक्यते, विधिप्रतिपादितमवश्यम्भावि। अतः भवान् धैर्यं धारयतु इति भावः ॥ ९ ॥

१०—स्त्रीस्वभावस्तु कातरः॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य चतुर्थाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः। अनया सूक्त्या वत्सराजोदयनः अबलानां कातरं स्वभावं समर्थयति।

व्याख्या—यदा चतुर्थाङ्के पद्मावती स्वधवमुदयनम्प्रति तदश्रुपातकारणम्पृच्छति तदोदयनः कथयति व्याजोक्तिं "हे भामिनि! काशपुष्पलवेनेदं मुखं

साश्रुपातमि"ति । अस्यां व्याजोक्तौ आत्मगतत्वेन कारणमपि प्रस्तौति—यद्यपि इयं नवोद्वाहा बाला प्रसभं धीरस्वभावाऽस्ति तदपि सत्यं श्रुत्वा व्यथां प्राप्स्यति । इदमेवार्थान्तरेण द्रढयति—यतो हि स्त्रीणाम्=अबलानां, स्वभावः=प्रकृतिः, कातरः=अधीरः, भवतीति शेषः । उपरतां सपत्नीं वासवदत्ताम्प्रति मे पत्युः प्रणयातिशयं विदित्वा पद्मावतीयं च्युतधैर्या भविष्यतीति भावः ॥६॥

११. प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तामित्याख्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः । अनया सूक्त्या महासेनकाञ्चुकीयः उदयनम्प्रति सोत्साहैः पुरुषैरेव राज्यश्रीलाभः इत्युपस्थापयति ।

व्याख्या—महासेनकाञ्चुकीयः राजानमुदयनम्प्रति कथयति यत् दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं प्रत्यानीतमिति । यतो हि—ये जनाः कातराः, अपि वा अशक्ताः, तेषु उत्साहः नोत्पद्यते । तस्मात् कारणात् प्रायेण=प्रायशः, नरेन्द्रश्रीः=राज्यलक्ष्मीः, सोत्साहैः=उत्साहसम्पन्नैः, एव जनैरिति शेषः, भुज्यते=उपभुज्यते ॥ ११ ॥

१२. साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः ॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्वप्नवासवदत्तामित्याख्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतेयं सूक्तिः । अनया सूक्त्या न्यासपरावर्तनकाले साक्ष्यस्य आवश्यकतां प्रतिपादयति ।

व्याख्या—यदा यौगन्धरायणो धृतसंन्यासिवेषः पद्मावतीहस्तन्यस्तां न्यासभूतां वासवदत्तामावन्तिकां याचते तदा उदयनः कथयति—साक्षिमत्=साक्षात् द्रष्टयुक्तं यथा स्यात्तथा, न्यासः=निक्षेपः, निर्यातयिव्यः=प्रत्यर्पणीयः । अतः पद्मावति! एतस्य ब्राह्मणस्य न्यासं परावर्तय । अस्मिन् न्यासपरावर्तनकाले अत्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती वसुन्धरा चाधिकरणं भविष्यतः इति भावः ।

स्वप्नवासवदत्तं के कुछ पारिभाषिक शब्द

प्रस्तुत नाटक के कुछ नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द हैं जिनके लिए संस्कृत व्याख्या के भाग को देखें । पारिभाषिक शब्दों के सामने पृष्ठ संख्या दी गयी है, जो निम्नाङ्कित हैं टिप्पणी को देखें—नान्दी—२ । सूत्रधार—२ । नेपथ्य—४ । स्थापना—५ । काञ्चुकीय–१२ । स्वगत–१५ । अङ्क–६० । आकाशभाषित–६२ । विदूषक–८४ । अपवारित–१२९ । विष्कम्भक १८० । भरतवाक्य–२२५

●

श्लोकानुक्रमणिका

पात्र-परिचयः

पुरुषाः

राजा—वत्सदेशाधिपः उदयनः ।

यौगन्धरायणः—वत्सदेशस्य महामात्यः ।

रुमण्वान्—वत्सदेशस्य अमात्यः ।

ब्रह्मचारी—लावाणकग्रामस्य छात्रः ।

(१) काञ्चुकीयः—मगधराजभवनान्तःपुराधिकारी ब्राह्मणः ।

(२) काञ्चुकीयः—उज्जयिनीराजप्रासादान्तःपुराधिकारी ब्राह्मणः ।

(३) काञ्चुकीयः—वत्सराजभवनान्तःपुराधिकारी ब्राह्मणः ।

सम्भषकः भटश्च—मगधराजभृत्यौ ।

विदूषकः—उदयनस्य वयस्यो वसन्तकाभिधेयः ।

स्त्रियः

वासवदत्ता—उदयनप्रथमभार्या, प्रद्योतपुत्री ।

आवन्तिका—छद्मवेषधारिणी वासवदत्ता ।

पद्मावती—मगधराजपुत्री, उदयनद्वितीयभार्या, दर्शकभगिनी ।

अङ्गारवती—प्रद्योतभार्या, वासवदत्ताजननी ।

तापसी—मगधवास्तव्या तपस्विनी ।

मधुकरिका—पद्मावतीसहचरी ।

पद्मिनिका—पद्मावतीसहचरी ।

धात्री—पद्मावत्या उपमाता ।

वसुन्धरा—वासवदत्तायाः धात्री ।

विजया—वत्सराजस्य प्रतीहारी ।

चेटी—मगधराजान्तःपुरदासी ।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

लालमतीकृष्णाव्याख्यासमलङ्कृतम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

हासः सुरसरस्वत्याः भासो नाम महाकविः ।
निजनाटकनिर्माणैः यशोमन्दिरमाप्तवान् ॥१॥

स्वप्नवासवदत्ताऽऽख्या तदीया नाट्यनिर्मितिः ।
कृष्णया लालमत्या च टीकया विशदीकृता ॥२॥

परीक्षाब्धिं तितीर्षूणां सेतुबन्धसमानताम् ।
इदं टीकाद्वयम्भूयाद् विशदार्थप्रकाशनात् ॥३॥

कवितावनिताहासो महाकविर्भासः सहृदयदर्शकाध्येतृहृद्रञ्जनार्थं स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयन्नाटकम्प्रारभमाणः स्थापनामुपस्थापयितुमुपक्रमते-नान्द्यन्त इति । नान्द्यन्ते-नान्द्याः=नाटकमङ्गलाचरणस्य, अन्ते=परिसमाप्तौ, सतीति शेष, ततः= अनन्तरं । सूत्रधारः=नाट्यसञ्चालकः प्रधाननटः, प्रविशति=प्रवेशं करोति, रङ्गमञ्चमिति शेषः ।

[नान्दी (नाटक के मङ्गलाचरण) की समाप्ति के बाद सूत्रधार प्रवेश करता है ।]

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—नान्दी संस्कृत नाट्यपरम्परा में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए जो स्तुति-पाठ किया जाता है उसे नान्दी कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नान्दी का लक्षण किया है—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥"

अर्थात् जिससे देवता, ब्राह्मण और राजा आदि का आशीर्वचन से युक्त स्तुति का प्रयोग होता है, उसे ही नान्दी कहते हैं। यह नान्दी चारपादों से, अष्टपादों से या बारहपादों से युक्त होती है।

सूत्रधार—सूत्रधार का लक्षण आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में किया है—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥"

अर्थात् नाटक के उपकरणों को सूत्र कहते हैं, जिनसे नाटक का सञ्चालन होता है। इन सूत्रों का सम्यक् सञ्चालन करने वाला प्रधान नट ही सूत्रधार कहा जाता है। इसी के निर्देश से अन्य सभी पात्र नाटक को सकुशल प्रस्तुत करते हैं।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—महाकविभासप्रणीतस्य 'स्वप्नवासवदत्तम्" नामधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कसमुद्धृतमिदम्पद्यम्। कविर्भासो बलभद्रस्तवनपुरःसरमत्र नाटकपात्राणान्नामनिर्देशनङ्करोति।

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वाम् पाताम् ॥१॥

सूत्रधार—उदयकालिक बाल चन्द्रमा के समान रङ्गवाली (स्वच्छ), शराब पीने से कमजोर (आलस्य युक्त), कमलों के सदृश कोमल और वसन्त ऋतु के समान मनोहर, बलराम की दोनों भुजाएं आप लोगों की रक्षा करें ॥१॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

पदार्थः—उदयनवेन्दुसवर्णौ=उदयकालिक नये चन्द्रमा के समान वर्णवाली, आसवदत्ताबलौ=मदिरापान से निर्बल, पद्मावतीर्णपूर्णौ=कमलों के समान कोमल, वसन्तकम्रौ=वसन्त ऋतु के समान मनोहर, बलस्य=बलभद्र की, भुजौ=दोनों भुजाएँ, त्वाम्=तुम्हारी, पाताम्=रक्षा करें ।।१।।

लालमती व्याख्या—उदयनवेन्दुसवर्णौ उदये=उत्थानकाले, यो नवो=नवीनो बाल इति भावः, इन्दुः=चन्द्रः, तेन समानो=सदृशो, वर्णो=रङ्गो ययोः तौ, औत्थानिकचन्द्रद्युतिमन्ताविति यावत्, आसवदत्ताबलौ-आसवेन=मदिरया, दत्तम्=उद्भूतम्, अबलम्=अलसता याभ्यां तौ, सुरापानोद्भूतालसताभाजाविति यावत्, पद्मावतीर्णपूर्णौ-पद्मस्य=पङ्कजस्य, अवतीर्णः=आविर्भावस्तेन पूर्णौ=परिपूर्णौ, जलजवत् मृदू इति भावः, वसन्तकम्रौ-वसन्तः=मधुमास इव कम्रौ=मनोज्ञौ, बलस्य=बलभद्रस्य, भुजौ=बाहू, "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः, त्वां=सहृदयदर्शकवर्गम्, अत्र जातावेकवचनं, पातां=रक्षताम् ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् आर्यावृत्तम् । तद्यथा—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।।" अत्र च पदविन्यासदक्षत्वेनोदयन-वासवदत्ता-पद्मावती-वसन्तकाणां प्रधानपात्राणां संसूचनात् मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं यथा—"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।।"

मङ्गलं प्रस्तूय कविः सूत्रधारमुखेनैव नाटकीयेतिवृत्तसूचनोपक्रमं प्रारभते—एवमिति । आर्यमिश्रान्=नवनाटकदर्शनसमुपस्थितान् श्रेष्ठसामाजिकसहृदयान्, एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, विज्ञापयामि=संसूचयामि । अये=अरे ! आश्चर्यबोधकमिदमव्ययपदम् । किं नु खलु=किं कारणमस्ति, मयि=सूत्रधारे, विज्ञापन व्यग्रे=सूचनाव्यापृते सतीति शेषः, शब्दः=ध्वनिः, इव=यथा, श्रूयते=निशम्यते । अङ्ग !=अस्तु !, पश्यामि=अवलोकयामि ।

श्रेष्ठ सामाजिक (दर्शक) जनों को मैं इस तरह सूचित करता हूँ । अरे ! सूचना देने के लिए मेरे उद्यत होते ही यह कैसा शब्द सुनाई पड़ने लगा ? अच्छा ! (महाशयों !) देखता हूँ ।

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।

(नेपथ्ये = रङ्गमञ्चस्य पृष्ठप्रदेशे वेषपरिवर्तनस्थाने)

टिप्पणी-नेपथ्य-रङ्गमञ्च को पृष्ठभाग जहाँ अभिनेतागण नाटक के उपयुक्त वेषभूषा धारण करते हैं उसे नेपथ्य गृह कहा जाता है । जैसे कहा भी गया है—

"कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते" ॥

पूर्वोक्तशब्दाकारमुपस्थापयति—उस्सरहेत्यादि । आर्याः ! = श्रेष्ठाः !, उत्सरत = अपसरत, उत्सरत = अपसरत, उत्सरत = अपसरत, त्रिरुक्तिस्त्वराविशेषं द्योतयति, अस्मात्स्थानादिति शेषः ।

कारणं ज्ञात्वा सूत्रधारो निरूपयति—भवतु = अस्तु, विज्ञातं = सम्यक् विदितम् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन सूत्रधारः नेपथ्यशब्दकारणभूतं मगधराजभृत्यैर्जनोत्सारणं निरूपयति ।

अन्वयः—स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः मगधराजस्य भृत्यैः तपोवनगतः सर्वो जनो धृष्टम् उत्सार्यते ॥२॥

पदार्थः—स्निग्धैः = प्रिय, कन्यानुगामिभिः = राजकुमारी की सेवा के लिए नियुक्त होने से आगे पीछे चलने वाले, मगधराजस्य = मगध देश के राजा के,

---

(नेपथ्य में)

हटिए, हटिए, महाशयों ! हटिए !

सूत्रधार—अच्छा, समझ लिया ।

स्नेहयुक्त और राजकुमारी (पद्मावती) के अनुगामी मगधराज (दर्शक) के सेवकों के द्वारा तपोवन में वसे (आये) हुए लोग धृष्टतापूर्वक हटाये जा रहे हैं ॥२॥

धृष्टमुत्सार्यंते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(प्रविश्य ।)

भृत्यैः = सेवकों के द्वारा, तपोवनगतः = तपोवन में रहने वाले, सर्वः = सभी, जनः = लोग, धृष्टं = अवहेलना पूर्वक, उत्सार्यंते = हटाये जा रहे हैं ॥२॥

लालमती — स्निग्धैः = प्रियैः, विश्वस्तैरिति यावत्, अत एव, कन्यानुगामिभिः — अनुगन्तुं शीलं येषां तेऽनुगामिनः = अनुयायिनः सेवकाः, कन्यायाः = राजकुमार्याः पद्मावत्या इति भावः, अनुगामिनस्तैः, पद्मावतीपरिचारकैरिति यावत्, मगधराजस्य = मगधदेशनृपतेः, दर्शकस्येति यावत्, भृत्यैः = सेवकैर्भटैः, तपोवनगतः = आश्रमासादितः, सर्वः = अशेषः, जनः = तपस्विलोकः, धृष्टं = सावज्ञम् यथा स्यात्तथा, क्रियाविशेषणमिदम्पदम्, उत्सार्यंते = मार्गमध्याद् दूरीक्रियते ॥२॥

छन्दः — पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा — 'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥"

(निष्क्रान्तः = सूत्रधारो रङ्गमञ्चात् बहिर्गतः)

टिप्पणी — स्थापना — सूत्रधार के निष्क्रमण तक स्थापना समाप्त हुई । स्थापना को ही आमुख तथा प्रस्तावना भी कहा जाता है । इसका लक्षण आचार्य धनञ्जय के मत में जैसे —

"सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥"

अर्थात् जहाँ सूत्रधार, नटी, मार्ष (पारिपार्श्विक) या विदूषक से इस प्रकार की बातचीत करता है जिससे प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश हो जाय, उसे ही आमुख, स्थापना या प्रस्तावना कहा जाता है ।

(प्रविश्य = रंगमञ्चं प्रविश्य)

(सूत्रधार रङ्गमञ्च से निकलता है ।)

(स्थापना समाप्त हुई)

(रङ्गमञ्च पर प्रवेश कर)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-

र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।

भटौ—आर्याः ! =श्रेष्ठाः !, उत्सरत उत्सरत उत्सरत=मार्गमध्यात् द्रागेव अपसरत ।

(तत इति । ततः = तदनन्तरम् परिव्राजकवेषः—परिव्राजकस्य वेषो यस्य सः, काषायाम्बरधारिसन्यासिवन्नेपथ्यः इति भावः, यौगन्धरायणः = वत्सराजोदयनस्यैतन्नामको महामात्यः, आवन्तिकावेषधारिणी—आवन्तिकायाः = अवन्तिदेशोद्भवायाः स्त्रियाः सदृश वेषं = नेपथ्यं धारयति = बिभर्ति, आकलयति या सा तथाभूता, वासवदत्ता=महासेनप्रद्योतस्य पुत्री वत्सराजोदयनस्य परिणीता, च = तथा, प्रविशति = प्रवेशं करोति ।)

यौगन्धरायणः—कर्णं दत्वा=श्रोत्रं वितीर्य, शब्दश्रवणार्थमिति भावः, कथं= कस्मात् कारणात्, इहापि=अस्मिन् सर्वजनसुलभे तपोवनेऽपि, उत्सार्यते=अपसार्यते, कुतः=कस्मात्—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविभासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात्समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणश्चलैर्भाग्यैरुत्सिक्तस्य पुरुषस्य तपोवनस्थजनोत्सारणकार्यं विनिन्दति ।

अन्वयः—धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानार्हस्य वल्कलवतो जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भोः ! उत्सिक्तो विनयाद् अपेतपुरुषः चलैः भाग्यैः विस्मितः अयं कः निभृतम् इदं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ॥३॥

दोनों भट [राजपुरुष]—हटिए, हटिए, महाशयों ! हटिए ।

(तब सन्यासी के वेष में यौगन्धरायण और अवन्ति देश की स्त्री के वेष में वासवदत्ता प्रवेश करते हैं ।)

यौगन्धरायण—(कान देकर) कैसे यहाँ भी हटाया जा रहा है । क्योंकि—

धैर्यवान्, आश्रम में निवास करने वाले, जङ्गली कन्दमूलादि फलों से सन्तुष्ट रहने वाले, सम्मान के योग्य और पेड़ की त्वचा को वस्त्र के रूप में धारण करने

उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ।। ३ ।।

पदार्थः—धीरस्य=स्थिर चित्त वाले, आश्रमसंश्रितस्य=तपोवन को प्राप्त कर, वसतः=निवास करते हुए, वन्यैः=जङ्गली, फलैः=फलों से (कन्दमूल आदि से) तुष्टस्य=सन्तुष्ट, मानार्हस्य=सत्कार के योग्य, वल्कलवतः=वृक्षचर्म (वल्कल) धारण करने वाले, जनस्य=तपस्वी वर्ग को के लिए), त्रासः=भय, समुत्पाद्यते= पैदा किया जा रहा है । भोः !=अरे !, उत्सिक्तः=गर्व से मतवाला, विनयात्= नम्रता से, अपेतपुरुषः=विरहित भृत्यों वाला (उद्धत सेवकों वाला), चलैः= चञ्चल (अस्थिर) भाग्यैः=सौभाग्यों (सम्पत्ति ऐश्वर्यादि रूप) से, विस्मितः= आश्चर्यचकित बना हुआ, अयं=यह, कः=कौन (राजा) है, (जो) निभृतं= अत्यधिकशान्त, इदं=इस, तपोवनं=आश्रम भूमि को, आज्ञया=(अपनी) आज्ञा से, ग्रामीकरोति=गाँव की तरह से बना रहा है अर्थात् पुर तथा ग्राम में अपनी आज्ञा को जैसे चलाता है वैसे ही इस तपोवन में भी चला रहा है ॥३॥

लालमती—धीरस्य = धृतियुक्तस्य, स्थिरचित्तस्येति यावत्, आश्रमसंश्रितस्य —आश्रमं=तपोवनं संश्रितः=आश्रितस्तस्य, वसतः=निवसतः, तपोभूमिस्थस्येति भावः, वन्यैः-वने=अरण्ये, अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्- इत्यमरः, भवैः=उत्पन्नैः, फलैः=कन्दमूलादिभिः, तुष्टस्य=सन्तुष्टस्य, मानार्हस्य—मानः=सत्कारः, तदर्हस्य=तद्योग्यस्य सम्माननीयस्येति भावः, वल्कलवतः—वल्कलं=वृक्षत्वक् अस्यास्तीति वल्कलवान् तस्य वृक्षत्वग्वस्त्रभृत इति यावत्, जनस्य=तपस्विलोकस्य, त्रासः=दरः, दरस्त्रासो भीतिर्भीः साध्वसं भयम्—इत्यमरः, उत्सारणजनितं कष्टमिति यावत्, समुत्पाद्यते=उद्भाव्यते, भृत्यैरिति शेषः । व्यर्थमेवैते संसारविरक्ताः तपोवनस्थास्तपस्विनो भटैः क्लेश्यन्त इति भावः । अथवाऽत्र एतेषां भृत्यानां को दोषः, एते तु प्रभोराज्ञयैवेत्थं कुर्वन्ति

वाले लोगों (तपस्वियों) को भी भय दिखाया (पैदा) किया जा रहा है । अरे ! धृष्ट, नम्रता रहित सेवकों वाला, अस्थिर (चञ्चल) भाग्य से आश्चर्यचकित बना

वासवदत्ता – अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [**आर्य ! क एष उत्सारयति ?**]

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता – अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति । [**आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।**

इति श्लोकोत्तरादर्धेन समर्थयति—भोः !=अरे ! इत्यनादरसूचकम्पदम्, उत्सिक्तः=अतिक्रान्तमर्यादः, विनयादपेतपुरुषः—विनयात्=विनम्रतायाः, अपेता=च्युताः, पुरुषाः=सेवकलक्षणा यस्य स उद्धतभृत्य इति यावत्, चलैः= चञ्चलैः अस्थिरैरिति भावः, भाग्यैः=ऐश्वर्यरूपैः, विस्मितः=आश्चर्यान्वितः अतिगर्वित इति भावः, "विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमः",–"इत्यमरः दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः"—इत्यमरश्च, कोऽयं=किमभिधेयः, स्वामीति शेषः, य इति शेषः, आज्ञया = तापसजनोत्सारणरूपेण स्वकीयनियोगेन; निभृतं= शान्तं, इदम् = पुरोदृश्यमानं, तपोवनं = आश्रमपदं, ग्रामीकरोति-अग्रामं ग्रामं करोतीति ग्रामीकरोति अग्रामरूपमपि आश्रमपदं ग्रामरूपतां नयतीति भावः ॥३॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तद्यथा—
"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥

वासवदत्ता—आर्य !=आदरणीय ! मन्त्रिन् !, क एषः=कः सत्तासम्पन्नः, उत्सारयति = मार्गमध्यादपसारयति ? यौगन्धरायणः—भवति !=श्रीमति !, यः, धर्मात्=पुण्यात्, "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः" इत्यमरः, आत्मानं = स्वम्, उत्सारयति=दूरीकरोति ।

वासवदत्ता – आर्य !=महाशय !, नहि=न, एवम्=इत्थं, वक्तुकामा = वक्तुं=वदितुम्प्रष्टुमिति भावः कामः=अभिलाषो यस्याः सेति तदर्थः, अपितु शेषः, अहमपि=राजमहिषी वासदत्तापि, नाम=नामशब्दोऽत्र प्रश्नार्थकः, उत्सारयितव्या=अपसारणीया, भवामि=भविष्यामि ।

हुआ यह कौन सा व्यक्ति (राजा) शान्त इस तपोवन को उत्सारण (हटने) की आज्ञा से गाँव की तरह बना रहा है ॥३॥

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायण—पूज्ये ! जो धर्म से अपने को हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मेरे पूछने का यह अभिप्राय नहीं है (अपितु) क्या मैं भी हटाई जाने वाली हूँ ।

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभावो ! [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथाऽयं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

यौगन्धरायणः—भवति !=देवि !, एवम्=इत्थमेव, अनिर्ज्ञातानि=स्वरूपतोऽविदितानि, दैवतानि = सुराः, अपि, अवधूयन्ते = तिरस्क्रियन्ते ।

वासवदत्ता—आर्य ! = पूज्यवर !, परिश्रमः=मार्गश्रमः, तथा = तादृशं, परिखेदं=कष्टं, न = नहि, उत्पादयति = जनयति, यथा = यादृशं परिखेदमिति शेषः, अयं = तपोवनोत्सारणरूपः, परिभवः = अनादरः, "अनादरः परिभवः परीभावः"—इत्यमरः ।

यौगन्धरायणः—अत्रभवत्या = अत्रश्रीमत्या, आदरबोधकमिदम्पदं, वासवदत्तयेति भावः, एष विषयः=उत्सारणपूर्वको गमनरूपो विषयः, भुक्तोज्झितः—प्राक्भुक्तः=अनुभूतः, पश्चात् त्यक्तः=परित्यक्तः, अत एव, अत्र=अस्मिन् उत्सारणविषये, न = नहि, चिन्ता=चिन्तनं, कार्या=करणीया, कुतः—

यौगन्धरायण--देवि ! अपरिचित देवता इसी तरह तिरस्कृत (अपमानित) होते हैं ।

वासवदत्ता - आर्य ! (मार्ग में) चलने का परिश्रम (थकावट) भी वैसा कष्ट नहीं उत्पन्न कर रहा है जैसा कि यह अपमान ।

यौगन्धरायण--यह विषय (लोगों को हटाकर चलने का) आप के द्वारा भी अनुभूत करने के बाद छोड़ा गया है, इसमें आप को चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्यों कि--

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-

च्छलाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणो वासवदत्ताभाग्यमुपस्थाप्य तां समादधाति ।

अन्वयः—पूर्वं त्वया अपि एवं गतम् अभिमतम् आसीत् । पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि । कालक्रमेण परिवर्तमाना जगतो भाग्यपङ्क्तिः चक्रार-पङ्क्तिः इव गच्छति ॥४॥

पदार्थः—पूर्वं = पहले, त्वया = तुम्हारे द्वारा (आप के द्वारा) अपि = भी, एवं = इस प्रकार का, गतं = चलना, अभिमतं = अभीष्ट, पसन्द, आसीत्= था । पुनः =फिर, भर्तुः =पति (वत्सराज) के, विजयेन =विजय होने पर, श्लाघ्यं =प्रशंसनीय ढंग से, गमिष्यसि =गमन करोगी । (क्योंकि) कालक्रमेण= समय के क्रम से, परिवर्तमाना =परिवर्तनशील, जगतः =संसार की, भाग्य-पङ्क्तिः =भाग्य-रेखा, चक्रारपङ्क्तिः इव =(रथ के) पहिए के अरों की परम्परा की भाँति, (ऊपर नीचे), गच्छति = चलती है ॥४॥

लालमती—पूर्वं =पूर्वस्मिन् काले (यदा वासवदत्ता राजमहिषी आसीत्) त्वया =वासवदत्तया राजमहिष्या, अपि =अनया पद्मावत्येव, एवम् =इत्थं, परिजनसेवितमिति भावः, गतं =व्रजनम् अभिमतम् =अभीष्टम्, आसीत्, पुनः = भूयो. भर्तुः =धवस्योदयनस्य, धवः प्रियः पतिः भर्ता— इत्यमरः, विजयेन = सम्पत्स्यमानेन राज्यप्राप्तिलक्षणजयेन, श्लाघ्यं =भृत्यैः प्रशंसनीयं यथा स्यात्तथा, गमिष्यसि =यास्यसि । इममेवार्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति कालक्रमेण-कालस्य = समयस्य, क्रमेण =अनुसारेण, समयपरिपाट्येति भावः, परिवर्तमाना = परि-भ्रमन्ती, जगतः = लोकस्य, लोकस्तु भुवने जने-इत्यमरः, भाग्यपङ्क्तिः = दैव-

---

पहले (जब आप वत्सदेश की रानी थीं) आप को भी इसी तरह से जाना अभीष्ट था, फिर पति (उदयन) के अभ्युदय होने पर प्रशंसनीय रूप से उसी प्रकार गमन करेंगी । काल-क्रम से जगत् की परिवर्तनशील भाग्यपङ्क्ति रथ के

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥४॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः । उत्सरत ।]
(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

परम्परा, दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः-इत्यमरः, चक्रारपङ्क्तिः = स्यन्दनचक्रश्रेणिः, वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः श्रेणी-इत्यमरः, इव=यथा, गच्छति= याति । यथा चक्रस्य भूमिस्थो भाग उपरि आगच्छति उपरिस्थश्चाधोगच्छति तथैव लोकस्यापि अदृष्टपरम्परा दृश्यते, यश्चेदानीं सुखी सः दुःखी भविष्यति, दुःखी च सुखभाग्भवति । अतो विग्ना मा भूयास्त्वमिति भावः यौगन्धरायणस्य वासवदत्ताचिन्ताविषये । अमुमेवार्थं महाकविः कालिदासः मेघदूते निबध्नाति—

"कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥" अलङ्कारश्चात्रार्थान्तरन्यासः पूर्वार्धप्रतिपादितस्य विशेषस्योत्तरार्धप्रतिपादितेन सामान्यार्थेन समर्थनात् । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥ साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ॥" ४ ॥

भटौ— उत्सरत=अपसरत, आर्याः=श्रेष्ठाः, उत्सरत=अपसरत ।

(ततः=तदनन्तरं, काञ्चुकीयः=कञ्चुकी, प्रविशति=प्रवेशं करोति, रङ्गमञ्चमिति यावत्)

पहिए के अरों के समान चलती रहती है (अर्थात् जैसे गाड़ी के चलते समय चक्के का नीचे वाला भाग ऊपर और ऊपर वाला नीचे जाता है उसी तरह संसार की भाग्यपङ्क्ति भी चलती रहती है ।) ॥४॥

दोनों सिपाही—हटिए आर्यों ! हटिए ।

(तब मगधराज का काञ्चुकीय प्रवेश करता है)

काञ्चुकीय:—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।

टिप्पणी काञ्चुकीय: (कञ्चुकी)—अन्त:पुर में बेरोकटोक आने जाने वाले वृद्ध, गुणवान् ब्राह्मण को काञ्चुकीय या कञ्चुकी कहा जाता है, जो सब कार्यों को साधने में कुशल होता है । आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में इसका लक्षण किया है—

"अन्त:पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित: ।
सर्वकार्यार्थकुशल: कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥"

काञ्चुकीय: —सम्भषक !=इदं सम्बुद्धिपदमत्र प्रयुक्तमुत्सारणकर्मण्यापृतैक-तरस्य भटस्याभिधेये । न खलु न खलु=तापसलोकस्य निश्चयेन नहि, उत्सारणा=अपसारणं, कार्या=विधेया । पश्य =अवलोकय ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन काञ्चुकीय: लोकविरक्तानां मानधनानां तापसजनानामुत्सारणं निषेधयति ।

अन्वय: —भवान् नृपाऽपवादं परिहरतु, आश्रमवासिषु परुष न प्रयोज्यम् । मनस्विन एते नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ।

पदार्थ:—भवान्-आप (सम्भषक), नृपापवादं=राजा की निन्दा के कारणभूत उत्सारण कार्य को, परिहरतु=छोड़े । आश्रमवासिषु=तपोवन में रहने वालों से (आश्रमवासियों से) परुषं = कठोर (कटु) व्यवहार (वचन), न = नहीं, प्रयोज्यम् = प्रयोग करना चाहिए (कहना चाहिए) । एते = ये, मनस्विन: = मनस्वी लोग (महाशय), नगरपरिभवान्=नगर के अपमानों से, विमोक्तुं=बचने के लिए, वनम्=वन को, अभिगम्य = प्राप्त कर, वसन्ति= रहते हैं ॥५॥

काञ्चुकीय—सम्भषक ! (घोषणा करने वालों में से किसी एक को सम्बोधित कर) हटाना नहीं चाहिए, हटाना नहीं चाहिए । देखो—

तुम राजा (मगधराज) की निन्दा का कारण (उत्सारण करना) छोड़ दो । तपोवन में रहने वालों में कठोर वचन (आचरण) नहीं किया जाता । क्योंकि ये

नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

लालमती—भवान्=त्वं सम्भषक इति भावः, नृपापवादं-नृपस्य=मगधराजदर्शकस्य, अपवादः=परीवादः—"अवर्णाक्षेपनिर्वादपरीवादापवादवत्"—इत्यमरः, तम्, उत्सारणजनितमिति भावः, परिहरतु=दूरीकरोतु । धर्मपालकस्य मगधराजदर्शकस्य निन्दा भवदुत्सारणकार्यजनितेदानीमिति । अतो युवाभ्यामिदृशं परुषं माऽचरणीयमिति । प्रस्तौति-आश्रमवासिषु = तपोवनाश्रितेषु वसत्सु तापसलोकेषु, परुषं=कर्कशं, क्रूरमिति भावः, वाक्यमाचरणं वेति शेषः, न = नहि, प्रयोज्यं = प्रयोक्तव्यम् । यतो हि, मनस्विनः = प्रशस्तमानसाः, उदारहृदया इति भावः, एते=तपोवनवासिनः, नगरपरिभवान्—नगरे=पुरे, सम्भावितान् परिभवान् = अनादरान्, "अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया" इत्यमरः, विमोक्तुं = परित्यक्तुं, वनम्=अरण्यम् "अटव्यरण्यं गहनं विपिनं काननं वनम्"—इत्यमरः अभिगम्य=अधिगम्य, वसन्ति=निवसन्ति । अतस्तपोधनेषु महाशयेषु मुनिजनेषु परुषम्माऽचरणीयमिति ॥५॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् पुष्पिताग्रावृत्तम् । तद्यथा—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।" अलङ्कारश्चात्र पूर्वार्द्धहेतुत्वेनोत्तरार्द्धस्य स्थापनात् काव्यलिङ्गम् । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गन्निगद्यते ।"

उभौ—आर्य ! = मान्यवर !, तथा=तेनैव प्रकारेण, भवता यदुक्तं तथैव साधयावः, अनुत्सारणेन नृपापवादं परिहराव इति भावः ।

(निक्रान्तौ--एतेन भट्योर्निर्गमनमुक्तम्)

मनस्वी लोग शहर में होने वाले (सम्भावित) अपमानों को छोड़ने के लिए ही तपोवन में आकर वास करते हैं ॥५॥

दोनों सिपाही--आर्य ! ऐसा ही हो ।

(दोनों रङ्गमञ्च से निकल जाते हैं)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

यौगन्धरायणः—हन्त ! = हर्षबोधकमिदम्पदम् । अस्य = पुरोदृश्यमानस्य काञ्चुकीयस्य, दर्शनं = ज्ञानं सविज्ञानं—विशिष्टज्ञानसंयुक्तं, धर्मनीत्यनुकूलमिति यावत्, अस्तीति शेषः । वत्से ! = बालिके !, तावदिति वाक्यालङ्कारे, एनं = काञ्चुकीयम्, उपसर्पावः = समीपं व्रजावः ।

वासवदत्ता—आर्य ! = पूज्यवर !, तथा = उपसर्पणं कुर्व इति भावः ।

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य = समीपं गत्वा) भोः ! = हे महाशय !, उत्सारणा = उत्सारणक्रिया, किङ्कृता-केन प्रयोजनेन सम्पादिता ।

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् ! = हे तापस ।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतं = स्वगतम्) तपस्विन् इति = तापस ! इति अयम् = एषः, आलापः = प्रेमपूर्णमाभाषणं "स्यादाभाषणमालापः"—इत्यमरः, गुणवान् = विशिष्टगुणसंयुक्तः, तु = परन्तु, अपरिचयात् = असंस्तवात् न = नहि, श्लिष्यते = सम्बद्ध्यते ।

यौगन्धरायण—अरे ! इस (काञ्चुकीय) का ज्ञान अनुभव से सम्पन्न है। बहन ! हमदोनों इसके पास चलें ।

वासवदत्ता—आर्य ! ऐसा ही हो ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) महाशय ! यह हटाना किस प्रयोजन से है ?

काञ्चुकीय—हे तपस्वी !

यौगन्धरायण—(स्वगत) "तपस्विन्" यह सम्बोधन गुणविशिष्ट बातचीत है, परन्तु जान-पहचान न होने से मेरे मन को जँच नहीं रहा है ।

काञ्चुकीय--भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रम-

---

टिप्पणी – स्वगतम् (आत्मगतम्)—रङ्गमञ्च पर पात्र कुछ ऐसी बातों को करते हैं जिससे ज्ञात होता है किसी अन्य पात्रों को वे सुनाना नहीं चाहते ।-अतः अश्राव्य बात को वह स्वगत या आत्मगत रूप से दर्शकों को सुनाता है । इसे ही स्वगत या आत्मगत कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसका लक्षण है—

"अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतम् मतम् ।"

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—प्रस्तुतोऽयं गद्यांशः कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधानस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतोऽस्ति । गद्यांशेनानेन मगधराजकाञ्चुकीयो यौगन्धरायणं तापसवेषधारिणम्प्रति राजकुमार्याः पद्मावत्याः तत्तपोवनवासाभिलाषमुपस्थापयन् तत्परिचयमपि श्रावयति ।

लालमती व्याख्या—भोः ! = हे तपस्विन् !, श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्; एषा = समीपतरस्थिता, गुरुभिः = मातापित्रादिभिः श्रेष्ठजनैः, अभिहितनामधेयस्य = कथिताभिधानस्य, "आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च"— इत्यमरः, अस्माकं = मगधवास्तव्यानां, महाराजदर्शकस्य = महाधिपतेः दर्शकाभिधेयस्य, भगिनी = स्वसा, "भगिनी स्वसा"— इत्यमरः, पद्मावती नाम = पद्मावतीत्यभिधाना, अत्र नामेति प्रसिद्धौ । सा = तथोक्ता, एषा = समीपतरवर्तिनी, नः = अस्माकं, महाराजमातरं = महाराजदर्शकस्य जननीं महादेवीम् = एतदभिधेयाम्, आश्रमस्थां = वार्द्धक्ये मुनिवृत्तिमवलम्ब्य तपोवनस्थाम्, अभिगम्य = अधिगत्य, तत्रभवत्या = परमादरणीययाऽऽश्रमस्थया महादेव्या, अनुज्ञाता = आज्ञप्ता, पद्मावतीति शेषः, राजगृहम्-एतन्नामकं मगधराजधानीभूतं

काञ्चुकीय--हे महाशय ! सुनिए । गुरुजनों (माता-पिता आदि) के द्वारा "दर्शक" नाम रखे गये हमारे महाराज की बहन ये पद्मावती हैं । वैसी ये तपोवन में (वानप्रस्थाश्रमको स्वीकार कर) विद्यमान राजमाता महादेवी के पास

स्यामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद् भवन्तः--

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।

प्रधाननगरं यद्वा राज्ञः = महाराजदर्शकस्य, गृहं = भवनं, यास्यति=गमिष्यति। तत् = तस्मात् हेतोः, अद्य = इदानीम्, अस्मिन् = पुरोवर्तमाने, आश्रमपदे = तपःस्थले, अस्याः = पद्मावत्याः, वासः = निवासः, अभिप्रेतः=अभीष्टः, अस्तीति शेषः। तत् = तस्मात् कारणात्, भवन्तः = यूयं तापसाः—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतोऽस्ति। पद्येनानेन काञ्चुकीयः मगधराजकुमार्याः पद्मावत्याः धर्मप्रियत्वं समर्थयन् तपस्विलोकं स्वधर्माचरणाय प्रवर्तयति।

अन्वयः—तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् तपोधनानि वनात् स्वैरम् उपनयन्तु। हि धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां न इच्छेत्, एतत् अस्याः कुलव्रतम् (अस्ति) ॥६॥

पदार्थः—तीर्थोदकानि = तीर्थों का जल, समिधः = हवन की लकड़ियाँ, कुसुमानि = फूल, दर्भान् = कुशा, तपोधनानि=तपस्या के उपकरणों (साधनों) को, वनात् = जङ्गल से, स्वैरं = स्वेच्छापूर्वक, उपनयन्तु = ले आवें। हि = क्योंकि, धर्मप्रिया=धर्म में प्रेम रखने वाली, नृपसुता = राजकुमारी (पद्मावती) तपस्विषु=तपस्वियों में, धर्मपीडां = धर्म में बाधा को, न = नहीं, इच्छेत् = चाहती हैं। एतत् = यह, अस्याः=इनके (पद्मावती के), कुलव्रतम् = कुल (वंश) का नियम (है) ॥६॥

लालमती—(भवन्तः तपस्विनः) तीर्थोदकानि-तीर्थस्य = पवित्रस्य नद्यादेर्जलाशयस्य वा उदकानि जलानि, समिधः = पलशादितरूणां काष्ठखण्डानि,

---

जाकर उनकी आज्ञा को प्राप्त "राजगृह" नामक मगध की राजधानी या "राजभवन" में जायेंगी। इस कारण से आज इन्हें इसी आश्रम में निवास करना अभिमत है। अतः आप लोग--

तीर्थजल, समिधाएँ, फूल, कुश (आदि इन सब) तपस्या की वस्तुओं को जङ्गल से ले आवें। क्यों कि धर्म को पसन्द करने वाली राजकुमारी (पद्मावती)

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः--(स्वगतम्) एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः--

---

कुसुमानि = सुमानि, "स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्"—इत्यमरः, दर्भान् = कुशान्, तपोधनानि—तपसे = तपश्चर्यार्थं, धनानि=द्रव्याणि, वनात्= अरण्यात्—"अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्"—इत्यमरः, स्वैरं= स्वच्छन्दम्, उपनयन्तु=आनयन्तु, हि=यतो हि, धर्मप्रिया—धर्मः = सुकृतं "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः"—इत्यमरः, प्रियः =स्निग्धः, यस्याः सा तथोक्ता धर्मानुरागिणीति यावत्, नृपसुता = राजकन्या, पद्मावतीति भावः, तपस्विषु = तापसेषु, धर्मपीडां-धर्मस्य = तपोरूपस्य, पीडा = बाधा, "पीडा बाधा व्यथा दुःखमामनस्यं प्रसूतिजम्"—इत्यमरः, तां, न=नहि, इच्छेत् = वाञ्छेत्, एतत् = इदं, तपोविघ्नस्पृहाराहित्यमिति भावः, अस्याः = पद्मावत्याः, कुलव्रतं-कुलस्य = वंशस्य, व्रतं = नियमः अस्तीति शेषः ॥६॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।" अलङ्कारश्चात्र काव्यलिङ्गम् । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गन्निगद्यते" ॥६॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम् = आत्मगतम्) एवम्=इत्थम् ! एषा= समीपतरवर्तिनी, सा = धर्मशीलत्व लावण्यप्रभृतिगुणैरञ्चिता दैवज्ञवर्णिता, मगधराजपुत्री = मगधाधिपकन्या, पद्मावती नाम = एतन्नामिका, या = प्रसिद्धा पद्मावती पुष्पकभद्रादिभिः—पुष्पकश्च भद्रश्च पुष्पकभद्रौ, तौ आदी येषां ते तैः, पुष्पकभद्रेत्येतदादिनामधारिभिः, आदेशिकैः—आदेशः = आज्ञा स्वेच्छानुसारिभाविफलसूचनमिति भावः, आदेश एव शीलमेषामित्यादेशिकास्तैः, त्रिकालज्ञैः

तपस्वियों के धर्म में बाधा को नहीं चाहेंगी, यह इनकी वंशपरम्परा का नियम (आचरण) है ॥६॥

यौगन्धरायण—(स्वगत) ऐसा ! ये वही मगधराज की पुत्री पद्मावती नाम की हैं जिन्हें पुष्पक और भद्र आदि ज्योतिषियों ने "स्वामी (वत्सराज उदयन) की पटरानी होंगी" ऐसा आदेश दिया है । इस कारण से—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।

सिद्धपुरुषैरिति यावत्, आदिष्टा = सूचिता, यदिति शेषः, स्वामिनो = वत्सराजोदयनस्य, देवी = राजमहिषी, भविष्यति = भविता, इति = इत्थम् । ततः = तस्मात् कारणात्, राजमहिषीत्वेनैव निमित्तेनेतिभावः—"प्रद्वेषो·· स्वता"।

सन्दर्भप्रसङ्गौ – कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणो भाविन्यां राजमहिष्यां पद्मावत्यां स्वकीयां सहजां स्वताम्प्रस्तौति ।

अन्वयः -- प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तृदाराभिलाषित्वात् मे अस्यां महती स्वता (अस्ति) ॥७।

पदार्थः—प्रद्वेषः = अतिशय द्वेष, (अप्रीति या घृणा), बहुमानः = अत्यधिक समादर, वा = अथवा, सङ्कल्पात् = मन के भाव से अर्थात् मानसिक सङ्कल्प (भावना) से, उपजायते = उत्पन्न होता है, भर्तृदाराभिलाषित्वात् = स्वामी (उदयन) की (यह) पत्नी बनेगी (बने) इस इच्छा से, मे=मेरी, अस्यां=इस (पद्मावती) में, महती=अत्यधिक (बड़ी), स्वता=आत्मीयता (है) ।

लालमती व्याख्या—प्रद्वेषो=द्वेषातिशयः, अतिशया प्रीतिरिति यावत्, बहुमानो = अतिशयादरो वा=अथवा, सङ्कल्पात् = मानसात्कर्मणः, "सङ्कल्पः कर्म मानसम्"—इत्यमरः, उपजायते = उत्पद्यते कस्यचिज्जनस्य कस्मिंश्चिदपि जने वस्तुविशेषे वा स्वचित्तवृत्तेरेव रागो द्वेषो वा दृश्यते । यथा एतद्भटोत्सारणं दृष्ट्वाऽस्यास्मे जुगुप्साऽऽसीत्, परन्तु इदानीन्तु—भर्तृदाराभिलाषित्वात् = इयं पद्मावती स्वामिनो वत्सराजोदयनस्य पत्नी भवतु, भविष्यति वेति अभिलाषुकत्वात्, भर्तृदारान् अभिलषतीति तच्छीलः भर्तृदाराभिलाषी, तस्य भावः, तत्त्वं, तस्मात्, "भार्या जायाऽथ पुम्भूम्नि दाराः" इत्यमरः, मे = मम, यौगन्धरायणस्येति

प्रद्वेष (द्वेष, अनीप्सा, घृणा आदि) या अत्यधिक सम्मान अपने मानसिक सङ्कल्प (चित्तवृत्ति) के अनुसार उत्पन्न होता है । अतः (इनके उत्सारण कार्य

भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—(**स्वगतम्**) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जाइ । [**राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।**]

(ततः **प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च ।**)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु । [**एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु ।**]

यावत्, अस्यां=पद्मावत्यां, महती = अत्यधिका, स्वता = आत्मीयताऽस्तीति शेषः ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ॥ अलङ्कारश्चात्रार्थान्तरन्यासः काव्यलिङ्गञ्च ॥७॥

वासवदत्ता—(स्वगतम् = आत्मगतम्) राजदारिका = राजकुमारी अस्तीयं पद्मावती, इति = इत्थं, श्रुत्वा = निशम्य, अत्र = अस्यां पद्मावत्यां, मे = मम वासवदत्तायाः, भगिनिकास्नेहः—अनुकम्पिता भगिनी भगिनिका, तस्याः स्नेहः स्वसृप्रणय इति भावः, सम्पद्यते = उत्पद्यते ।

(ततः—तदनन्तरं, सपरिवारा—परिवारैः=सखीसमूहेन सहिता, पद्मावती, प्रविशति, चेटी = प्रधानपरिचारिका, च = तथा, प्रविशति । परिवारः सखीवर्गः, चेटी दासी इत्यनयोर्भेदमाकलय्य चेट्याः पृथङ् निर्देशः ।)

चेटी—एतु एतु = आगच्छतु, आगच्छतु, भर्तृदारिका = राजकुमारी, "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः, इदं=पुरोदृश्यमानम्, आश्रमपदं =तपोवनस्थानं, प्रविशतु = प्रवेशं विधेहि ।

को सुनकर इनके प्रति मेरी घृणा थी लेकिन इस समय) "ये मेरे स्वामी वत्सराज उदयन की देवी हों" ऐसी इच्छा करने से मेरी इन (पद्मावती) में अत्यधिक आत्मीयता है ॥७॥

वासवदत्ता—(स्वगत) "राजकुमारी" ऐसा सुनकर इस (पद्मावती) में मेरा बहन का सा स्नेह उत्पन्न हो रहा है ।

(तब पद्मावती सखियों के साथ प्रवेश करती है और दासी भी)

दासी—आइए, आइए, राजकुमारी इस आश्रम में प्रवेश कीजिए ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी ।)

तापसी—साअदं राअदारिआए । [स्वागतं राजदारिकायाः ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ । अभिजणाणुरूवं खु से रूवं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।]

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अदिहि-जणस्स सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथि-जनस्य स्वकगेहम् ।]

(ततः = तदनन्तरं, उपविष्टा = आसनाधिष्ठिता, तापसी = तपस्विनी, प्रवि-शति = प्रवेशं करोति ।)

तापसी—राजदारिकायाः = तपोवनप्रविष्टायाः, राजकुमार्याः पद्मावत्याः, स्वागतं = शुभागमनं, भवत्विति शेषः ।

वासवदत्ता—(स्वगतम् = आत्मगतम्) इयं = पुरोदृश्यमाना, सा = काञ्चु-कीयोक्ता, राजदारिका—राज्ञः = मगधाधिपस्य, दारिका = कुमारी । अस्याः = पद्मावत्याः, रूपं = स्वरूपमाकृतिरिति भावः, खलु = निश्चयेन, अभिजनानुरूपम्—अभिजनस्य = वंशस्य "सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ"—इत्यमरः अनुरूपम् = उचितं योग्यमिति भावः । यथाऽस्याः राजदारिकायाः कुलं प्रशस्तन्तथैवास्या रूपमपीति गम्यार्थः ।

पद्मावती—आर्ये ! = पूज्ये !, वन्दे = प्रणौमि ।

तापसी—चिरं = अतिदीर्घकालं, जीव = जीवितन्धारय । आयुष्मती भवेति भावः । जाते ! = वत्से !, प्रविश प्रविश = प्रवेशं विधेहि, प्रवेशं विधेहि । यतः—

(तब बैठी हुई तापसी प्रवेश करती है)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह वही राजकुमारी हैं । वंश के अनुसार ही इनका सौन्दर्य है ।

पद्मावती—आर्ये ! मैं आप की वन्दना करती हूँ ।

तापसी—बहुत समय तक जीती रहो । बेटी ! प्रवेश करो, प्रवेश करो । तपोवन अतिथि जन का अपना ही घर होता है ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भागिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

तपोवनानि = आश्रमपदानि, नामेति वाक्यालङ्कारे, अतिथिजनस्य = नवागन्तुकलोकस्य, स्वकगेहं = स्वकीयं गृहमेवास्ति इति शेषः ।

पद्मावती—भवतु भवतु = अस्तु अस्तु, उपचारप्रदर्शनं नास्त्यावश्यकमिति भावः, आर्ये ! = पूज्ये !, विश्वस्ताऽस्मि = विश्रब्धा वर्ते । अनेन = भवदुक्तेन, बहुमानवचनेन—बहुः मानो यस्मिस्तत् बहुमानं, बहुमानञ्च तद् वचनम्, अत्यधिकसत्कारवाक्येनेति भावः, अनुगृहीता = अनुग्रहयुक्ता अस्मीति शेषः ।

वासवदत्ता—रूपम् एव = केवलं स्वरूपमेव, न = नहि, मनोज्ञमिति शेषः, अपितु, अस्या = राजकुमार्याः पद्मावत्याः, वागपि = वचनमपि, मधुरा = मनोहरा अस्तीति शेषः, खलु = निश्चयेन ।

तापसी—भद्रे ! = कल्याणि !, "श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्"—इत्यमरः, इमाम् = पुरोदृश्यमानां, तावदिति वाक्यालङ्कारे, भद्रमुखस्य—

पद्मावती—अच्छा अच्छा पूज्ये ! मैं विश्वस्त हूँ । इस अत्यधिक आदरयुक्त वाणी से अनुगृहीत हूँ ।

वासवदत्ता—(मन में) इसका केवल स्वरूप ही नहीं इसकी वाणी भी मधुर है ।

तापसी—भद्रे ! प्रियदर्शन राजा दर्शक की इस बहन को कोई राजा वरण नहीं करता ? (अर्थात् कहीं इस राजकुमारी की शादी की बात-चीत चली है या नहीं ।)

चेटी—अस्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि। [**अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति।**]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणीआ दाणि संवुत्ता। [**भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानींसंवृत्ता।**]

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि

भद्रं मुखं यस्य तस्य = कल्याणसूचकवदनस्य "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"—इत्यमरः, प्रियदर्शनस्य मगधराजदर्शकस्येतिभावः, भगिनिकाम् = अनुकम्पनीयां स्वसारं पद्मावतीमिति यावत्, कश्चिदपि = कोऽपि, राजा = नरेशो, न = नहि, वरयति = इच्छति ? केनचित् राज्ञा सह प्रियदर्शकभगिन्याः पद्मावत्याः परिणयसम्बन्धविषयको वार्तालापो नोक्षिप्तः किमिति भावः।

चेटी—उज्जयिन्याः = विशालायाः, "विशालोज्जयिनी समे"—इत्यमरः, राजा = अधिपः, प्रद्योतः = महासेनचण्डप्रद्योतः, नाम = नामकः, अस्ति = वर्तते। सः = पूर्वोक्तः, दारकस्य = पुत्रस्य, कारणात् = पाणिग्रहणनिमित्तात्, दूतसम्पातं = चरसम्प्रेषणं, करोति = विदधाति।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतम्) भवतु भवतु = अस्तु अस्तु। एषा = पद्मावती, च = तथा, इदानीम् = अधुना, आत्मीया = स्वकीया, भ्रातृसम्बन्धस्य भावित्वादिति शेषः, संवृत्ता = सञ्जाता।

तापसी—अर्हा = पूज्या, खल्विति निश्चये, आकृतिः = आकारः, अवयवसंस्थानविशेषः पद्मावत्याः, इयं = पद्मावतीसम्बन्धिनी, अस्य बहुमानस्य =

दासी—उज्जयिनी के राजा महासेनचण्डप्रद्योत नामक हैं। उन्होने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा, अच्छा। यह इस समय अपनी हो गई।

तापसी—इस (पद्मावती) की यह आकृति (स्वरूप) अतिशय सम्मान के ही योग्य है। दोनों ही कुल बहुत बड़े (प्रशंसनीय) हैं ऐसा सुना जाता है।

महत्तराणि त्ति सुणीअदि । [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य । उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते ।]

पद्मावती—अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणे नतवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति । [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति ?]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या। भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः !

विवाहसम्बन्धसङ्घटनरूपस्य पूर्वोक्तस्य प्रद्योतकृतसम्मानस्य। स्वलावण्येनेय पद्मावती पूर्वोक्तपरिणयसम्बन्धसम्मानयोग्यैवेति यावत् । उभे = द्वे, राजकुले = दर्शकप्रद्योतराजकुले, महत्तरे = अतिमहती, इति = इत्थं, श्रूयते = आकर्ण्यते ।

पद्मावती—स्वपरिणयवार्ताश्रवणनोद्भूतलज्जा पद्मावती विषयान्तरमधिगच्छन्ती निजागमनप्रयोजनमुपस्थापयति काञ्चुकीयम्--आर्य ! = पूज्य ! मुनिजनः = ऋषिलोकः, "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः, आत्मानं=स्वम्, अनुग्रहीतुम्= अनुगृहीतं कर्तुम् दृष्टः = वीक्षितः, किमिति प्रश्ने । अभिप्रतप्रदानेन = अभीष्टवस्तुवितरणेन हेतुना, तपस्विजनः = तापसलोकः, उपनिमन्त्र्यता = निमन्त्रितः क्रियताम्, तावदिति वाक्यालङ्कारे, कः = तापसः, किं = वस्तु, अत्र = अस्मिन् पुण्यक्षेत्रे आश्रमपदे, इच्छति = अभिलषति, इति = इत्यम् ?

काञ्चुकीयः—भवत्या = राजकुमार्या पद्मावत्या, यदभिप्रेतं=यथाऽभीष्टम् । भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः ! = हे हे तपोवनाधिष्ठितास्तापसाः !, शृण्वन्तु शृण्वन्तु = आकर्णयन्तु आकर्णयन्तु, भवन्तः = यूयम्, इह = अस्मिन् आश्रमपदे, अत्रभवती = आदरणीया, मगधराजपुत्री = मगधेश्वरकुमारी, पद्मावतीति भावः,

---

पद्मावती—आर्य ! अपने को अनुगृहीत करने के लिए आपने किसी तपस्वी को देखा ? अभिलषित (यथा वाञ्छित) वस्तु के दान के लिए तपस्वी का निमन्त्रण दें । यहाँ (आश्रम की पुण्य भूमि में) कौन (तपस्वी) क्या चाहता है ?

काञ्चुकीय--आप जैसा चाहें । आश्रम में निवास करने वाले हे हे तपस्वियों ! आप लोग सुनें, सुनें, यहाँ माननीया मगधराज की पुत्री आप लोगों

श्रृण्वन्तु श्रृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेनविस्रम्भेणोत्पादित-विस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।

अनेन=तापस्या प्रदर्शितेन, विस्रम्भेण=विश्वासेन, "समौ विस्रम्भविश्वासौ—" इत्यमरः, उत्पादितविस्रम्भा—उत्पादितः=उद्भावितो विस्रम्भः=विश्वासो यस्य सा तथोक्ता, धर्मार्थं=धर्माय, धर्माचरणार्थमिति भावः, अर्थेन=वितरणीयेन द्रव्येण निमित्तेन, उपनिमन्त्रयते=उपनिमन्त्रणं विदधाति ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन मगधराजकाञ्चुकीयः पद्मावत्यादिष्ट· धर्माचरणाय तपस्विभ्यो दानं प्रदातुमुप-निमन्त्रयते तापसान् ।

अन्वयः—कस्य कलशेन अर्थः ? को वासो मृगयते ? यथानिश्चितं दीक्षां पारितवान् (कः) किम् इच्छति यत् पुनः गुरोः देयं भवेत् ? इह धर्माभिरामप्रिया नृपजा आत्मानुग्रहम् इच्छति । यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु । अद्य कस्य किं दीयताम् ? ।। ८ ।।

पदार्थः—कस्य=किस तपस्वी को, कलशेन=घड़े (कमण्डलु) से, अर्थ=प्रयोजन (आवश्यकता) है । कः=कौन तपस्वी, वासः=वस्त्र, मृगयते=खोजता (चाहता) है । यथानिश्चितं=अपने निश्चय के अनुसार, दीक्षा=वेदाध्ययन की शिक्षा, पारितवान्=पार (समाप्त) किया हुआ (करने वाला) (कः=कौन स्नातक ब्रह्मचारी) किं=क्या, इच्छति=चाहता है, यत्=जो, पुनः=फिर, गुरोः=गुरु

के किये हुए स्वागत से विश्वस्त होकर धर्म के लिए आपलोगों को अभिलषित वस्तुओं को देने के लिए निमन्त्रित करती हैं ।

"किसे कलश (कमण्डलु) का प्रयोजन है ? कौन सा तपस्वी वस्त्र चाहता है। अपनी इच्छानुसार अध्ययन को समाप्त करने वाला कौन स्नातक (ब्रह्मचारी) गुरु को दक्षिणा में देने योग्य कौन सी वस्तु चाहता है ? इस आश्रम में धार्मिकों में प्रेम (आस्था) रखने वाली राजकुमारी (पद्मावती तपस्वियों की याचना से)

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ।८।

के लिए, देयं=देने योग्य, भवेत्=होता है (होना चाहिए)। इह=यहाँ (आश्रम की पुण्यभूमि में) धर्माभिरामप्रिया=धर्म में अभिरुचि एवं प्रेम रखने वाली अथवा धार्मिक लोगों को चाहने वाली, नृपजा=राजकुमारी (पद्मावती), आत्मानुग्रहं=अपने ऊपर (दान लेने से तपस्वी की) कृपा, इच्छति=चाहती हैं। यस्य=जिसे, यत्=जो (वस्तु), समीप्सितम्=अभीष्ट हो, तद्=उस (वस्तु) को, वदतु=कहें, अद्य=आज, कस्य=किसको, किं=क्या दीयताम्=दिया जाय ॥ ८ ॥

लालमती व्याख्या—कस्य=मुनिजनस्य, कलशेन=घटेन, कमण्डलुनेति भावः, अर्थः=प्रयोजनमस्तीति शेषः। कः—कश्चन तापसजनः, वासः=वस्त्रं, मृगयते=अभिलषति। यथानिश्चितं-निश्चय एव निश्चितं, निश्चयो=निर्धारणं सङ्कल्पो वा, निश्चितमनतिक्रम्येति यथानिश्चितं सकल्पानुसारमिति भावः, दीक्षां=गुरुकुलवासपूर्वकं वेदाद्यध्ययनं, पारितवान्=समापितवान्, को ब्रह्मचारीति शेषः, किं=वस्तु, इच्छति=कामयते, यद्वस्तु, पुनरिति वाक्यालङ्कारे, गुरोः=आचार्यस्याचार्यायेति वा, सम्बन्धसामान्यविवक्षायामत्र षष्ठी, देयं=दातव्यम्भवेत्=स्यात्। इह=अस्मिन् आश्रमपदपुण्यप्रदेशे, धर्माभिरामप्रिया—धर्मे=सुकृते "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः"—इत्यमरः, अभिरामः=अभिरतिः रुचिरिति भावः, येषान्ते धर्माभिरामा धर्मानुरागिणस्ते प्रिया यस्यै सा तथोक्ता, नृपजा-नृपात्=अधिपात्, जाता=उद्भूता, राजकुमारी पद्मावतीति भावः, आत्मानुग्रहं=भवत्तापसकर्तृकमात्मन्यनुग्रहम्, इच्छति=अभिलषति। अत एव यस्य=तापसजनस्य, यत्=वस्तु, समीप्सितम्=अभीष्टं वर्तते, तत्=वस्तु, वदतु=कथयतु, अद्य=अस्मिन् दिने, कस्य=तपस्विजनस्य, किं=किमभिधानं वस्तु, दीयताम्=वितीर्यताम् ॥ ८ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तद्यथा—"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"।

अपने ऊपर कृपा (अनुग्रह) चाहती हैं। अतः जिसको जो वस्तु अभीष्ट है उसे कहें। आज किस (तपस्वी) को क्या दिया जाय" ? ॥८॥

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (**प्रकाशम्**) भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती—दिठ्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं । [**दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।**]

तापसी—संतुठ्ठतवस्सिजणं इदं अस्समदं । आअन्तुएण इमिणा होदव्वं । [**सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।**]

काञ्चुकीयः—भोः किं क्रियताम् ?

यौगन्धरायणः—हन्तेति हर्षे, दृष्टो=वीक्षितः, उपायः=साधनमित्येतद्वदति स्वगतत्वेन । (प्रकाशं=सर्वश्राव्यं यथा स्यात्तथा) भोः=हे !, अहं=विप्रः, अर्थी=याचकः, अस्मीति शेषः ।

पद्मावती-दिष्ट्या=भाग्येन, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"—इत्यमरः, मे=मम पद्मावत्याः, तपोवनाभिगमनम्=आश्रमपदभ्रमणं, सफल=सार्थकं, जातं ब्रह्मणार्थित्वादिति शेषः ।

तापसी—इदम्=पुरोदृश्यमानम्, आश्रमपदं=तपोवनं, सन्तुष्टतपस्विजनं—सन्तुष्टः=पूर्णतुष्टः, तपस्विजनः=तापसलोको यस्मिस्तत् ससन्तोषतापसलोकमिति भावः, "लोकस्तु भुवने जने"—इत्यमरः, अस्तीति शेषः । सन्तुष्टा आश्रमस्थाः केऽपि किमपि नार्थयन्ते इति भावः । अनेन=याचकेन, आगन्तुकेन=देशान्तरादागतेन भवितव्यं=भव्यम् । अर्थित्वमाविष्कुर्वाणः स्थानान्तरादागतोऽयं भवेदिति यावत् ।

काञ्चुकीयः—भोः !=हे !, किं, क्रियतां=विधीयताम् । भवते ब्राह्मणाय किं प्रदेयमिति भावः ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अच्छा ! उपाय सूझ गया । (सुनाकर) महाशय ! मैं अर्थी (याचक) हूँ ।

पद्मावती—भाग्य से मेरा तपोवन में आना सफल हुआ ।

तापसी—यह आश्रम का स्थान सन्तुष्ट तपस्वियों से संयुक्त है । अतः यह (याचना करने वाला) कोई आगन्तुक (दूसरे स्थान से आया हुआ) होगा ।

काञ्चुकीय—महाशय ! क्या किया जाय (आप की क्या याचना है) ?

यौगन्धरायणः-इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।

यौगन्धरायणः—इयं=समीपतरवर्तिना, मे=मम ब्राह्मणस्य, स्वसा=भगिनी अस्तीति शेषः । इमां=पुरोदृश्यमानां, प्रोषितभर्तृकां—प्रोषितः भर्ता यस्याः सा प्रोषितभर्तृका तां प्रवासोषितपतिकां; देशान्तरं प्राप्तस्य पत्युर्वियोगमनुभवन्तीं दीनामिति भावः, अत्रभवत्या=परमादरणीयया राजकुमार्या, कञ्चित्काल=कञ्चित्समयपर्यन्तं, परिपाल्यमानां=संरक्ष्यमाणाम्, इच्छामि=अभिलषामि । कुतः=कस्मात्—कार्यं नैवार्थैः...मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । अनेन पद्येन यौगन्धरायणः पद्मावतीसंरक्षत्वेन वासवदत्तान्यासकारणमुपस्थापयति ।

अन्वयः—अर्थैः न एव, भोगैः अपि न, वस्त्रैः (अपि) न कार्यम् । अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नः न (अस्मि) । धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयं कन्या मे भगिन्याः चरित्रं रक्षितुं शक्ता (अस्ति) ॥ ९ ॥

पदार्थः—(मुझे) अर्थैः=धन-सम्पत्ति से, न एव=न तो, भोगैः=भोगों (सांसारिक वैषयिक सुखों) से, अपि=भी, न=न तो, वस्त्रैः=(और) वस्त्रों से (भी) न=न तो, कार्यम्=कार्य (प्रयोजन) है । अहं=मैं, वृत्तिहेतोः=जीविका (अर्थोपार्जन) के लिए, काषायं=गेरुआ वस्त्र (सन्यासी कपड़ा) प्रपन्नः=धारण किया हूँ । धीरा=गम्भीर, दृष्टधर्मप्रचारा=देखा गया है धर्म प्रचार जिसका ऐसी अर्थात् धर्म का प्रचार करने वाली, इयं=यह, कन्या=कुमारी (राजकुमारी पद्मावती) मे=मेरी (यौगन्धरायण की)

यौगन्धरायण—यह (वासवदत्ता) मेरी बहन है । इसके पति परदेश गये हैं । अतः इसको कुछ समय तक ये माननीया (राजकुमारी पद्मावती) अपने संरक्षण में रखें, मैं यहीं चाहता हूँ । क्यों कि—

न तो मुझे धन से प्रयोजन है, न भोगों से तथा न तो वस्त्रों से ही । मैंने

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चरित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

भगिन्याः = बहन के (वासवदत्ता के) चारित्रं = चरित्र की, रक्षितुं = रक्षा करने में (के लिए) शक्ता = समर्थ हैं ।।९।।

लालमती व्याख्या—(मम यौगन्धरायणस्य) अर्थैः = द्रव्यैः, हिरण्यादिभिः, नैव, कार्यं = प्रयोजनम् । भोगैः = कलशादिभिर्भोग्यपदार्थैः यच्च सांसारिक-वैषयिकसुखैः, नापि, कार्यं = प्रयोजनम् । वस्त्रैः = परिधानार्हैः अम्बरैरपि, न = नह्यस्ति, कार्यं = प्रयोजनम् । अहं = यौगन्धरायणः, वृत्तिहेतोः = जीविका-कारणात्, काषायं = गैरिकवस्त्रं, परिव्राजकलिङ्गभूतं कषायेण रक्तमम्बरमिति भावः, प्रपन्नः = अङ्गीकृतः, न = नहि, अस्मीति शेषः । जीवनयापनाय मयेदं परिव्राजकत्वन्नाङ्गीकृतमिति भावः । धीरा = विदुषी गम्भीरा चेति भावः, "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः–" इत्यमरः, दृष्टधर्मप्रचारा—धर्मस्य = सुकृतस्य "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः"–इत्यमरः प्रचारः = प्रसारः, दृष्टः = ज्ञातो धर्मप्रचारो यस्याः सा तथोक्ता, इयं = पुरोदृश्यमानैषा, कन्या = कुमारी राजकुमारी पद्मावतीति यावत्, मे = मम ब्राह्मणस्य, यौगन्धरायणस्येति भावः, भगिन्याः = स्वसुः, वासवदत्ताया इति भावः, चारित्रं = शीलं, रक्षितुं = त्रातुं, शक्ता = सक्षमाऽस्तीति शेषः ।।९।।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वैश्वदेवीनाम वृत्तम् । तद्यथा–बाणाऽश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ" । अलङ्कारश्चात्र पद्यावत्या न्यासरक्षणक्षमत्वस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासः । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते । साधर्म्येणतरेणार्थान्तर-न्यासोऽष्टधा ततः" ।।९।।

जीविका के लिए गेरुवे वस्त्रों को नहीं पहन रखा है । विदुषी और धर्मप्रचार देखा गया है जिस राजकुमारी में ऐसी यह पद्मावती मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं ।।९।।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि । [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययोगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्—मनसि), हमिति अवधारणे, इह=अस्यां पद्मावत्यां, मां—वासवदत्तां, निक्षेप्तुकामः=निक्षेप्तुं = स्थापयितुं, कामः= अभिलाषः, "कामोऽभिलाषः तर्षश्च"—इत्यमरः, यस्येति स तथोक्तः, आर्यः= श्रेष्ठश्चासौ यौगन्धरायणः । भवतु = अस्तु, अविचार्य = अविमृश्य, क्रमं= उपक्रमं प्रवृत्तिमिति भावः, न = नहि, करिष्यति = विधास्यति यौगन्धरायण इति शेषः ।

काञ्चुकीयः--भवति = सम्माननीये ! हे राजकुमारीति भावः, अस्य= ब्राह्मणयाचकस्य, यौगन्धरायणस्येति भावः, महती = गुर्वी, व्यपाश्रयणा= आश्रययाचना । कथं=केन प्रकारेण, प्रतिजानीमः = प्रतिज्ञां विदधामः, कथङ्कार-मिदृशो दुष्करोऽर्थः स्वीकर्तव्य इति भावः । कुतः = कस्मात्—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवा-सवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन महाकविर्भासः काञ्चुकीयमुखेन न्यासस्य दुष्करत्वमुपस्थापयति ।

अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत्, प्राणाः सुखं दातुं (भवेयुः) तपः सुखं दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं दातुं भवेत्, (परन्तु) न्यासस्य रक्षणं दुःखं (भवेत्) ॥ १० ॥

वासवदत्ता—(स्वगत) हूँ ! (समझ गयी) आर्य यौगन्धरायण पद्मावती के हाथ में मुझे धरोहर के रूप में देना चाहते हैं । अच्छा, ये बिना विचारे काम नहीं करेंगे ।

काञ्चुकीय—माननीये ! (राजकुमारि !) इनकी यह आश्रय लेने की प्रार्थना कठिन है । कैसे प्रतिज्ञा (हमलोग) करें ? क्यों कि—

धन दे देना सुखकर है, प्राणों को उत्सर्ग करना, तपस्या का फल देना

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चरित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

भगिन्याः = बहन के (वासवदत्ता के) चारित्रं = चरित्र की, रक्षितुं = रक्षा करने में (के लिए) शक्ता = समर्थ हैं ॥९॥

लालमती व्याख्या—(मम यौगन्धरायणस्य) अर्थैः = द्रव्यैः, हिरण्यादिभिः, नैव, कार्यं = प्रयोजनम् । भोगैः = कलशादिभिर्भोग्यपदार्थैः यच्च सांसारिक-वैषयिकसुखैः, नापि, कार्यं = प्रयोजनम् । वस्त्रैः = परिधानार्हैः अम्बरैरपि, न = नह्यस्ति, कार्यं = प्रयोजनम् । अहं = यौगन्धरायणः, वृत्तिहेतोः = जीविका-कारणात्, काषायं = गैरिकवस्त्रं, परिव्राजकलिङ्गभूतं कषायेण रक्तमम्बरमिति भावः, प्रपन्नः = अङ्गीकृतः, न = नहि, अस्मीति शेषः । जीवनयापनाय मयेदं परिव्राजकत्वन्नाङ्गीकृतमिति भावः । धीरा = विदुषी गम्भीरा चेति भावः, "धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः–" इत्यमरः, दृष्टधर्मप्रचारा—धर्मस्य = सुकृतस्य "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः"–इत्यमरः प्रचारः = प्रसारः, दृष्टः= ज्ञातो धर्मप्रचारो यस्याः सा तथोक्ता, इयं = पुरोदृश्यमानैषा, कन्या = कुमारी राजकुमारी पद्मावतीति यावत्, मे = मम ब्राह्मणस्य, यौगन्धरायणस्येति भावः, भगिन्याः = स्वसुः, वासवदत्ताया इति भावः, चारित्रं = शीलं, रक्षितुं = त्रातुं, शक्ता = सक्षमाऽस्तीति शेषः ॥९॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वैश्वदेवीनाम वृत्तम् । तद्यथा–बाणाऽश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ" । अलङ्कारश्चात्र पद्मावत्या न्यासरक्षणक्षमत्वस्य समर्थनादर्थान्तरन्यासः । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते । साधर्म्येणेतरेणार्थान्तर-न्यासोऽष्टधा ततः" ॥९॥

जीविका के लिए गेरुवे वस्त्रों को नहीं पहन रखा है । विदुषी और धर्मप्रचार देखा गया है जिस राजकुमारी में ऐसी यह पद्मावती मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं ॥९॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि । [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययोगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम् = मनसि), हमिति अवधारणे, इह = अस्यां पद्मावत्यां, मां = वासवदत्तां, निक्षेप्तुकामः = निक्षेप्तुं = स्थापयितुं, कामः = अभिलाषः, "कामोऽभिलाषः तर्षश्च"—इत्यमरः, यस्येति स तथोक्तः, आर्यः = श्रेष्ठश्चासौ योगन्धरायणः । भवतु = अस्तु, अविचार्य = अविमृश्य, क्रमं = उपक्रमं प्रवृत्तिमिति भावः, न = नहि, करिष्यति = विधास्यति यौगन्धरायण इति शेषः ।

काञ्चुकीयः—भवति = सम्माननीये ! हे राजकुमारीति भावः, अस्य = ब्राह्मणयाचकस्य, यौगन्धरायणस्येति भावः, महती = गुर्वी, व्यपाश्रयणा = आश्रययाचना । कथं = केन प्रकारेण, प्रतिजानीमः = प्रतिज्ञां विदधामः, कथङ्कारमिदृशो दुष्करोऽर्थः स्वीकर्तव्य इति भावः । कुतः = कस्मात्–

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन महाकविर्भासः काञ्चुकीयमुखेन न्यासस्य दुष्करत्वमुपस्थापयति ।

अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत्, प्राणाः सुखं दातुं (भवेयुः) तपः सुखं दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं दातुं भवेत्, (परन्तु) न्यासस्य रक्षणं दुःखं (भवेत्) ॥ १० ॥

वासवदत्ता—(स्वगत) हूँ ! (समझ गयी) आर्य यौगन्धरायण पद्मावती के हाथ में मुझे धरोहर के रूप में देना चाहते हैं । अच्छा, ये बिना विचारे काम नहीं करेंगे ।

काञ्चुकीय—माननीये ! (राजकुमारि !) इनकी यह आश्रय लेने की प्रार्थना कठिन है । कैसे प्रतिज्ञा (हमलोग) करें ? क्योंकि—

धन दे देना सुखकर है, प्राणों को उत्सर्ग करना, तपस्या का फल देना

सुखमन्यद्‌ भवेत्‌ सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम्‌ ॥ १० ॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि

पदार्थः—अर्थः = धनसम्पत्ति, सुखं = सुखपूर्वक, दातुं = देना, भवेत्‌ = होता है। प्राणाः = प्राण, सुखं = सुखपूर्वक, दातुं = देना, भवेयुः = होते हैं। तपः = तपस्या (का फल) सुखं = सुखपूर्वक (आसानी से) दातुं = देना, भवेत्‌ = होता है, अन्यत्‌ = अन्य, सर्वं = सब कुछ, सुखं = सरलता से, दातुं = देना, भवेत्‌ = होता है, (परन्तु), न्यासस्य = धरोहर की, रक्षणं = रक्षा करना, दुःखं = कठिन, भवेत्‌ = होता है।

लालमती—अर्थः = धनं, सुखं = सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा, दातुं = विपरीतुं, भवेत्‌ = स्यात्‌। प्राणाः = जीवितं, सुखं = सरलतया, दातुम्‌ = अर्पयितुं, (भवेयुः = स्युः), तपः = तपश्चरणजन्यं फलं, सुखं = कष्टं विना, दातुं = दानाय, भवेत्‌ = स्यात्‌। अन्यत्‌ = अपरं, सर्वं = निःशेषं, सुखम्‌ = आयासं विना, दातुं = विपरीतुं, भवेत्‌ = स्यात्‌ (परन्तु) न्यासस्य = धरोहरस्य, रक्षणं = गोपनं, दुःखं = दुष्करमसाध्यं वा, भवेदिति शेषः ॥१०॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन्‌ अनुष्टुब्वृत्तम्‌। तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्‌। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः"। अलङ्कारश्चात्र यौगन्धरायणयाचनादुष्करत्वप्रतिपादनादर्थान्तरन्यासः। तद्यथा—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः" ॥

पद्मावती—आर्य ! = पूज्य !, प्रथमं = पूर्वम्‌, उद्घोष्य = उच्चैः घोषणां कृत्वा, कः = तापसः, किं = वस्तु, इच्छति = वाञ्छति इति = इत्थं, इदानीम्‌ =

तथा अन्य सब कुछ देना आसान है परन्तु किसी के धरोहर की रक्षा करना दुःखपूर्ण है ॥१०॥

पद्मावती—आर्य ! पहले "कौन क्या चाहता है" ऐसी घोषणा कर अब तर्क-वितर्क करना उचित नहीं है। ये जो कहते हैं, आप उसे करें।

विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः–अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी–चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी । [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।]

तापसी--चिरं जीवदु भद्दे ! । [चिरं जीवतु भद्रे !]

काञ्चुकीयः--भवति ! तथा । (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

साम्प्रतं, तापसेन कृतायां याचनायां, विचारयितुं = विचिन्तयितुम्, अयुक्तम्= असमीचीनम् । अत एव, यत्=यत्किमपि, एषः=अयं ब्राह्मणो, भणति= कथयति, याचते इति भावः, तद् = वासवदत्तान्यासकार्यम्, आर्यः पूज्यः काञ्चुकीय इति भावः, अनुतिष्ठतु = करोतु ।

काञ्चुकीयः—अनुरूपं = समीचीनं, कालधर्मकुलोचितमिति भावः, भवत्या =माननीयया राजकुमार्या, एतद् = वासवदत्तान्यासरूपे स्वीकरणम्, अभिहितं= कथितम् । वचनमुद्घोष्य प्रतिज्ञायाः कर्मणा पालनमपि करणीयमिति त्वया राजकुमार्या पद्मावत्या शोभनमेवाभिहितमिति भावः ।

चेटी—चिरं=दीर्घकालं, जीवतु = प्राणान्धारयतु, दीर्घायुर्भवतादिति भावः, एवम् = इत्थ, सत्यवादिनी=ऋतभाषिणी, भर्तृदारिका=राजकुमारी पद्मावती–"राजा भट्टारको देवस्तुत्सुता भर्तृदारिका"–इत्यमरः ।

तपसी—भद्रे ! = कल्याणि ! राजकुमारीति भावः, चिरञ्जीवतु = आयुष्मती भवत्विति भावः ।

काञ्चुकीयः--भवति != पूज्ये ! राजकुमारीति भावः, तथा=तेनैव

काञ्चुकीय—आपने यह उचित कहा ।

चेटी—इस प्रकार सत्यवादिनी राजकुमारी दीर्घायु हों ।

तापसी--भद्रे ! आप बहुत काल तक जीती रहें ।

काञ्चुकीय–आदरणीये ! (राजकुमारि !) वैसा ही करता हूँ । (यौगन्धरायण

यौगन्धरायणः--अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम् ।

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) का गई । एसा गच्छामि मन्दभाआ । [का गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

पद्मावती--भोदु भोदु । अत्तणीआ दाणि संवुत्ता । [भवतु भवतु । आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।]

तापसी--जा ईदिसी से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि । [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।]

प्रकारेण, करिष्यामीति शेषः । (उपगम्य = यौगन्धरायणमुपसृत्य) भोः ! = हे !, तापस ! इति भावः, अत्रभवतः = सम्माननीयस्य तव, यौगन्धरायणस्येति यावत्, भगिन्याः = स्वसुः, वासवदत्ताया इति भावः, परिपालनं = परिरक्षणम्, अत्रभवत्या = राजकुमार्या पद्मावत्येति भावः, अभ्युपगतम् = अङ्गीकृतम् ।

यौगन्धरायणः--तत्रभवत्या = परमादरणीयया, राजकुमार्या, अनुगृहीतः = कृतानुग्रहः, अस्मि = वर्ते । वत्से ! = भगिनि ! वासवदत्ते इति भावः, अत्रभवतीं = माननीयां पद्मावतीमिति भावः, उपसर्प = समीपं व्रज ।

वासवदत्ता--का = कीदृशी, गतिः = स्थितिः । एषा = इयं, मन्दभागा--मन्दो भागो यस्याः सा, मन्दं भाग्यं यस्याः सेति भावः, स्वल्पभाग्येति यावत्, गच्छामि = व्रजामि ।

पद्मावती--भवतु भवतु = अस्तु अस्तु । इदानीम् = अधुना, इयं वासवदत्तेति शेषः, आत्मीया = स्वकीया, संवृत्ता = सञ्जाता ।

तापसी--या ईदृशी = यादृशी, अस्याः = समीपतरवर्तिन्याः वासवदत्ताया इति भावः, आकृतिः = आकारः, स्वरूपमिति भावः, इयमपि = एषाऽपि, राजदारिका = राजकुमारी अस्तीति शेषः, इति = इत्थं, तर्कयामि = कल्पयामि ।

के समीप जाकर) महाशय ! आदरणीया राजकुमारी ने आप की बहन का संरक्षण करना स्वीकार कर लिया है ।

यौगन्धरायण--आदरणीया (पद्मावती) से मैं अनुगृहीत हूँ । वत्से ! (बहन !) राजकुमारी के पास जाओ ।

वासवदत्ता--(स्वगत) अब क्या गति है ? यह (मैं) मन्दभागिनी जाती हूँ ।

पद्मावती--अच्छा, अच्छा । इस समय ये आत्मीया हो गयीं ।

तापसी--जो इनकी यह आकृति है, ये भी राजकुमारी हैं ऐसी मैं सम्भावना करती हूँ ।

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि । [**सुष्ठु आर्या भणति । अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे ।]**

यौगन्धरायणः--(**आत्मगतम्**) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुत –

चेटी--आर्या =पूज्या तापसी, सुष्ठु=युक्तियुक्तं, भणति=कथयति, इयं याचकभगिनी राजदारिकेति कथनं समीचीनमिति भावः । अनुभूतसुखा–अनुभूतं= उपभुक्तं, सुखं=शातं "शातशर्मसुखानि च"—इत्यमरः, यया सा तथोक्ता, राजदारिकेति शेषः, इति=इत्थम्, अहं = चेटी, प्रेक्षे=पश्यामि, जानामीति भावः ।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतं=स्वगतम्) हन्तेति हर्षेऽव्ययपदम्, भोः= स्वं प्रति सम्बुद्धिः, भारस्य = भरस्य, स्वशिरसि विद्यमानस्येति शेषः, अर्धं= समांशः, अवसितं = समाप्तं दूरीकृतमिति भावः । यथा=येन प्रकारेण मन्त्रिभिः =सचिवैः "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः"–इत्यमरः, रुमण्वत्प्रभृतिभिरिति भावः, सह—साकं, समर्थितं = मन्त्रितं, निर्धारितमिति भावः, तथा=तेन प्रकारेण, परिणमति=परिणाममधिगच्छति । स्वामिनि=प्रभौ वत्सराजोदयने इति भावः, प्रतिष्ठिते= पूर्ववत् सिंहासनाधिरूढे सतीति यावत्, तत्रभवतीं=परमादरणीयां वासवदत्तामिति भावः उपनयतः =प्रापयतः, वत्सराजोदयनस्य समक्षमिति शेषः मे=मम यौगन्धरायणस्य, मगधराजपुत्री=मगधाधिपदुहिता, पद्मावतीति भावः विश्वासस्थानं=प्रत्यक्षकारणं, भविष्यति=वर्तिष्यते । कुतः=कस्मात्

दासी—मान्या (तापसी) ठीक कहती हैं । इन्होंने भी कभी सुख का अनुभव किया है ऐसा मैं जान रही हूँ ।

यौगन्धरायण—(मन में) अहा ! आधा बोझ (सिर से) उतरा । जैसा (मैंने) मन्त्रियों के साथ निश्चय किया था, वैसा ही परिणाम (फल) हो रहा है । तब स्वामी (महाराज उदयन) के फिर (राजसिंहासन पर) प्रतिष्ठित (आरूढ) होने पर महारानी वासवदत्ता को सौंपने पर मेरी गवाह (साक्षिणी) ये मगधराजकुमारी (पद्मावती) होंगी । क्योंकि —

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणः पद्मावत्यां वासवदत्ताया न्यासत्वेन स्थापनस्य कारणभूतं सिद्धवाक्यमुपस्थापयति ।

अन्वयः—यैः प्रथमं विपतिः दृष्टा अथ पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री (इति) प्रदिष्टा । तत्प्रत्ययात् इदं कृतम् । हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि व्युत्क्रम्य न गच्छति ।। ११ ।।

पदार्थः—यैः = जिनके (पुष्पक भद्र आदि सिद्धपुरुषों के) द्वारा, प्रथमं = पहले ही, विपत्तिः = आपत्ति (राजा उदयन की राज्यापहरणरूपा हानि) दृष्टा = देखी गयी (सूचित की गयी) । अथ=इसके बाद, पद्मावती= राजकुमारी पद्मावती, नरपतेः=वत्सराज उदयन की, महिषी=महारानी, भवित्री= होनेवाली, प्रदिष्टा कही गयी । तत्प्रत्यात् = उन्हीं की वाणी पर विश्वास कर, इदं=यह (कार्य) कृतं (मेरे द्वारा) किया गया । हि=क्योंकि, विधिः=भाग्य, सुपरीक्षितानि=अच्छी तरह विचार करके कहे गये, सिद्धवाक्यानि=सिद्धपुरुषों के वचनों को, उत्क्रम्य=लाँघकर (अतिक्रमण कर) न = नहीं, गच्छति=जाता है ।

लालमती व्याख्या–यैः=पुष्पकभद्रादिसिद्धपुरुषैः, प्रथमं=पूर्वं विपत्तिः=आपत्तिः 'विपत्यां विपदापदौ' इत्यमरः आरुणि नामधेयशत्रुतृंकोदयनराज्यापहरणरूपेति यावत्, दृष्टा = वीक्षिता, सूचितेतिभावः अथ=अनन्तरं पद्मावती = मगधराज-दर्शकभगिनी, महिषी = राज्ञी "कृताभिषेका महिषी"–इत्यमरः, भवित्री=भाविनी भविष्यतीति भावः, इति चेति शेषः, प्रदिष्टा=आदिष्टा, तैरेव सिद्धपुरुषैः इति

जिन पुष्पक भद्र आदि सिद्ध पुरुषों (ज्योतिषियों) ने पहले ही राजा उदयन की राज्यापहरण रूप आनेवाली विपत्ति को देखा (सूचित किया) था, उसे तो हमलोगों ने प्रत्यक्ष ही देखा । अब उन्होंने "महाराज उदयन की राजरानी

तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ ११ ॥
(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः।

शेषः, तत्प्रत्ययात् = सिद्धवाग्विश्वासात्, इदं=पद्मावत्यां न्यासरूपेण वासवदत्ता-स्थापनमिति यावत्, कृतं = सम्पादितम् मया यौगन्धरायणेनेति शेषः । उक्तमेवार्थान्तरन्यासेन द्रढयति--हि = यतः, विधिः = भाग्यं भवितव्यतेति भावो, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"-इत्यमरः, सुपरीक्षितानि = सत्यत्व-परीक्षायां समुत्तीर्णानि, सिद्धवाक्यानि—सिद्धानां =ज्ञानगोचरीकृतत्रैकालिकाशेष-विषयाणां सिद्धपुरुषाणां, वचनानि = वचांसि, उत्क्रम्य = विलङ्घ्य, न = नहि, गच्छति = व्रजति ॥ ११ ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च--पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" । अलङ्कारश्चात्रार्थान्तरन्यासः । तल्लक्षणं पूर्वस्मिन् श्लोके निगदितम् ॥ ११ ॥

(ततः = तदनन्तरं, ब्रह्मचारी = वेदपाठी बटुः, प्रविशति = प्रवेशं करोति, रङ्गमञ्चमिति शेषः ।)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वम् = आकाशे, अवलोक्य = वीक्ष्य) मध्याह्नः = दिवसमध्यभागः, स्थितः=सञ्जातः । दृढं=प्रसभं, परिश्रान्तः = परिक्लान्तः, अस्मि=वर्ते । अथ=तर्हि, कस्मिन् प्रदेशे=कस्मिन् वनभागे, विश्रमयिष्ये= विश्रामं करिष्यामि ? (परिक्रम्य = इतस्ततः परिभ्रम्य) भवतु = अस्तु, दृष्टं=

पद्मावती होंगी" ऐसा कहा है। उन्हीं की वाणी पर विश्वास कर मैंने ऐसा कार्य (पद्मावती के पास महारानी वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखने का कार्य) किया है। क्योंकि भाग्य अच्छी से परीक्षित सिद्धपुरुषों के वचनों को लाँघ कर नहीं गमन करता है ॥१०॥

(तब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है)

ब्रह्मचारी—(ऊपर देखकर) मध्याह्न हो गया है। (मैं) बहुत थक

अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम् । अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथाहि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया

वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।

विश्रामाय स्थलं वीक्षितम् । अभितः = समीपे, तपोवनेन = आश्रमपदेन, भवितव्यं = स्यात् । तथा हि = यतो हि—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन ब्रह्मचारी तपोवनलक्षणानि उपस्थाप्य तद्विश्रामस्थलयोगत्वम्प्रस्तौति ।

अन्वयः—देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विस्रब्धं चरन्ति । सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः दयारक्षिताः (सन्ति) । कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठं (सन्ति) । दिशः अक्षेत्रवत्यः (सन्ति) । हि अयं धूमो बह्वाश्रयः (अस्ति) । इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् (अस्ति) ॥ १२ ॥

पदार्थ :—देशागतप्रत्ययाः = (सुरक्षित) स्थान में होने के कारण विश्वास से युक्त (निश्चिन्त), हरिणाः = हिरण, अचकिताः = निर्भय होकर, विस्रब्धं = विश्वासपूर्वक (निश्चिन्त), चरन्ति = विहार कर रहे हैं । सर्वे = सभी, वृक्षाः = पेड़ पौधे, पुष्पफलैः = फूल और फलों से, समृद्धविटपाः = भरीपूरी डालियों (शाखाओं) वाले, दयारक्षिताः = दया से रक्षित (ऋषि-मुनियों द्वारा प्रेम पूर्वक पाले गये सन्ति = हैं) । कपिलानि = भूरे वर्ण वाली उत्तम कपिला गोकुलधनानि = गायों के समूह रूप धन, भूयिष्ठ = अत्यधिक मात्रा में, (सन्ति = हैं) । दिशः = दिशाएँ, अक्षेत्रवत्यः = खेतवाली नहीं (सन्ति = हैं) अर्थात् दिशाओं में दूर-दूर तक कृषिकार्य का पता नहीं है । हि अयं = यह क्योंकि,

---

गया हूँ । तो किस प्रदेश में विश्राम करूँ ? (घूम कर) अच्छा ! देख लिया । चारों ओर तपोवन ही होना चाहिए । क्योंकि—

अपने इस प्रदेश में विश्वासयुक्त निर्भय हरिण विश्वास के साथ चारों ओर विचरण कर रहे हैं । सभी पेड़ फूल तथा फलों से भरे-पूरे शाखाओं से संयुक्त

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

धूमः=धूआँ, बह्वाश्रयः=बहुत आश्रय वाला अर्थात् अत्यधिक स्थानों से उद्भूत, अस्ति = है। इदं = यह, निःसन्दिग्धं = निःसन्देह, तपोवनं=तपोवन है ॥१२॥

लालमती व्याख्या—देशागतप्रत्ययाः—देशे = प्रदेशेऽस्मिन्, आगतः = प्राप्तः, प्रत्ययो = विश्वासो येषान्ते तथोक्ताः, स्थानप्राप्तविश्वासा इति भावः, अतएव अचकिताः = निर्भयाः, हरिणाः = मृगाः, विस्रब्धं = निःशङ्कं यथा स्यात्तथा, चरन्ति = सञ्चरणं कुर्वन्ति। सर्वे = निखिलाः, वृक्षाः = पादपाः, "वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः"–इत्यमरः, पुष्पफलैः—पुष्पाणि च फलानि चेति पुष्पफलानि तैः, पुष्पैश्च फलैश्चेति भावः, समृद्धविटपाः—समृद्धाः= परिपूर्णाः, विटपाः = शाखाः लताश्च "समे शाखालते"—इत्यमरः, "विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्"–इत्यमरश्च, येषान्ते तथोक्ताः, दयारक्षिताः दयया = अनुकम्पया, प्रेम्णेति भावः, रक्षिताः = संवर्धिताः पालिताश्च सन्तीति शेषः। कपिलानि = पिशङ्गानि, पीतवर्णानीति भावः "कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ"–इत्यमरः, गोकुलधनानि—गोकुलानि = धेनुयूथानि, धनानि = अर्थाः इवेति गोकुलधनानि, धेनुसमूहद्रव्याणीति यावत्, भूयिष्ठं=प्रचुरं यथा स्यात्तथा, सन्तीति शेषः। दिशः = ककुभः, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः"–इत्यमरः, प्रान्तभूभागा इति यावत्, अक्षेत्रवत्यः-क्षेत्राणि = कृषिसाधनानि स्थलानि विद्यन्तेऽत्रेति क्षेत्रवत्यः, तादृशा न भवन्तीत्यक्षेत्रवत्यः, सन्तीति शेषः। हि = यस्मात्कारणात्, अयम्=एषः धूमः=अग्निलिङ्गं, बह्वाश्रयः=अधिकाधिकरणः अस्तीति शेषः। अत एव, इदम् = एतत्, निःसन्दिग्धं = निःसन्देहं, तपोवनम् = आश्रमपदम् अस्तीति शेषः ॥ १२ ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"। अत्र तपोवनलिङ्गवर्णनवैचित्र्यादनुमानमलङ्कारः। तद्यथा साहित्यदर्पणे—"अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्" ॥ १२ ॥

दया से रक्षित हैं। भूरे रङ्गवाले गोसमूह रूप धन यहाँ प्रचुर मात्रा में हैं। दिशाएँ बिना खेत (कृषि कर्म=जुताई मढाई) वाली हैं। क्योंकि यह धूआँ बहुत फैला हुआ है, अतः निश्चय ही यह तपोवन है ॥१२॥

ब्रह्मचारी–यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः। (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम्! अये! स्त्रीजनः।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान्। सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम।

वासवदत्ता—हं।

ब्रम्हचारी–यावत् इति वाक्यालङ्कारे, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि। (प्रविश्य=प्रवेशोपक्रमं नाटयित्वा) अये!=अरे!, शङ्कायामिदमव्ययपदम्। आश्रमविरुद्धः=आश्रमवेषप्रतिकूलः, खलु = निश्चयेन, एषः = पुरोवर्तमानः काञ्चुकीयलक्षण इति भावः, जन = पुरुषः। (अन्यतः = अपरत्र, विलोक्य = वीक्ष्य) अथवा = यद्वा, अत्र = अस्मिन् स्थाने, तपस्विजनोऽपि = तापसलोकोऽपि अस्तीति शेषः। अतोऽत्र उपसर्पणम् = एतेषां जनानां समीपगमनं, निर्दोषं = दोषरहितमुचितमिति भावः। अये! = अरे!, शङ्काबोधकमिदमव्ययपदम्। स्त्रीजनः = स्त्रीसमूहोऽप्यत्र दृश्यत इति शेषः।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं = यथेच्छं, स्वच्छन्दमिति भावः, भवान् = ब्रह्मचारी, प्रविशतु = प्रवेशं करोतु। आश्रमपदं = तपोवनस्थलं, नामेति वाक्यालङ्कारे, सर्वजनसाधारणं = सकलव्यक्तिसामान्यमस्तीति शेषः।

वासवदत्ता—हं! = रोषभाषणव्यञ्जकमिदमव्ययपदम्। परपुरुषदर्शनमित्यनेन परिहरति वासदत्ता।

ब्रह्मचारी--जब तक प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश कर) अरे! यह व्यक्ति आश्रम के अनुकूल नहीं है अर्थात् राजसा वेषभूषा वाला है। (दूसरी ओर देखकर) अथवा यहाँ तपस्वी लोग भी हैं। पास जाने में कोई दोष नहीं है। अरे! स्त्रियाँ (स्त्री समूह भी है)।

काञ्चुकीय--आप स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवेश करें। आश्रम का स्थान सब लोगों के लिए सामान्य रूप से है।

वासवदत्ता--हूँ। (ओह!)

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।]

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

पद्मावती—अम्मो ! वितर्कार्थमव्ययपदम् । परपुरुषदर्शनं–परश्चासौ पुरुषः, तस्य दर्शनम् अपरिचितजनावलोकनमिति भावः, परिहरति = परित्यजति, परित्यक्तुमभिलषतीति भावः । आर्या = पूज्या वासवदत्तेति यावत् । भवतु = अस्तु, खलु = निश्चयेन, मन्न्यासः = मन्निक्षेपः, आवन्तिकारूपा वासदत्तेति भावः, सुपरिपालनीयः = सम्यग्गोपनीयः ।

काञ्चुकीयः—भोः = हे महाशय ! पूर्वं = प्रथमं, भवदागमनादिति शेषः, प्रविष्टाः स्मः = कृत प्रवेशाः स्मो वयमिति शेषः । अतिथिसत्कारः = अभ्यागतसमर्चा, "स्युरावेशिक आगन्तुरतिथिर्ना गृहागते"—इत्यमरः, व्यासेनातिथिलक्षणं यथा कृतम्—"दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम् । अतिथि तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः" इति, । प्रतिगृह्यताम् = अङ्गीक्रियताम् ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य = जलेन आचमनं कृत्वा) भवतु भवतु = अस्तु अस्तु । निवृत्तपरिश्रमः—निवृत्तः = व्यपगतः, परिश्रमः = मार्गश्रमो यस्य स तथोक्तः, अस्मि = वर्ते ।

पद्मावती—ओहो ! आर्या (आवन्तिका) परपुरुष को देखना नहीं चाहती हैं । अच्छा, मेरी न्यासभूता (आवन्तिका) का संरक्षण सब तरह से होना चाहिए ।

काञ्चुकीय—महाशय ! हम लोग (आप के आने से) पहले ही प्रवेश किए हैं । आप अतिथि का सत्कार स्वीकार करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन कर) अच्छा अच्छा । मैं आश्वस्त हो गया हूँ ।

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

ब्रम्हचारी—भोः ! श्रूयताम् ! राजगृहतोऽस्मि ! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [**हा ! लावाणकं नाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।**]

यौगन्धरायणः—भो ! = हे ब्रह्मचारिन् !, कुतः = कस्मात् स्थलात् आगम्यते = आव्रज्यते । क्व = कुत्र, गन्तव्यं=गम्यम्, आर्यस्य = पूज्यस्य ब्रह्मचारिणः, क्व = कुत्र, अधिष्ठानं = निवासस्थलं चास्तीति शेषः ।

ब्रह्मचारी—भोः = हे महाशय ! श्रूयताम् = आकर्ण्यताम् । राजगृहतः = अधिपभवनात् यद्वा मगधदेशराजधानीभूतराजगृहनगरात्, आगत इति शेषः, अस्मि = वर्ते । वत्सभूमौ = वत्सदेशपृथिव्यां, लावाणकं=एतदभिधेयो ग्रामोऽस्ति । तत्र = तस्मिन् ग्रामे, श्रुतिविशेषणार्थं—श्रुतेः विशेषणं, तस्मै यथा स्यात्तथा स्वाध्यायग्रहणार्थमिति भावः, यद्यपि "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी" इति कोषवचनानुसारं श्रुतिः वेदस्तदपि अत्र लक्षणया स्वाध्याये बोध्यम् । उषितवानस्मि=कृतवासोऽस्मि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतम्) हा !=पश्चात्तापेऽव्ययपदम् । लावाणकं नाम = लावाणकं शोच्यत इति भावः । लावाणकसङ्कीर्तनेन लावाणककथनेन, पुनः = भूयः, नवीकृतः—अनवो नवो यथा सम्पद्यते तथाकृतो नूतनीकृत इति भावः, इव = यथा, मे = मम वासवदत्तायाः, सन्तापः = शोकः ।

यौगन्धरायण—महोदय ! आप कहाँ से आये हैं ? आपको कहाँ जाना है ? और आपका (महोदय का) आवास-स्थान कहाँ है ?

ब्रह्मचारी महाशय ! सुनिए । राजगृह से आया हूँ । वेद का अध्ययन करने के लिए, वत्सराज के राज्य में लावाणक नामक गाँव है, वहाँ का रहने वाला हूँ ।

वासवदत्ता—(मन में) हाय ! लावाणक ! लावाणक कहने से मेरा दुःख फिर से नया सा हो गया ।

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रम्हचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रम्हचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

ब्रम्हचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—अथ = किं, विद्या = विद्याध्ययनं, परिसमाप्ता = अवसिता ।

ब्रह्मचारी—खलु = निश्चयेन, न = नहि, तावदिति वाक्यालङ्कारे ।

यौगन्धरायणः—यदि = चेत्, अनवसिता = अपरिसमाप्ता, विद्या = विद्याध्ययनं, तर्हीति शेषः, किमागमनप्रयोजनम् = इदानीं तस्मात् लावाणकात् प्रत्यागमने किं कारणमस्तीति भावः ।

ब्रह्मचारी—तत्र = लावाणकग्रामे, खलु = निश्चयेन, अतिदारुणं = अतिभङ्करं 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्''—इत्यमरः, व्यसनं = विपत्तिः, ''व्यसनं विपदि भ्रंशे''—इत्यमरः, संवृत्तम् = सञ्जातम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ! = कीदृशं व्यसनं समुपस्थितमिति भावः ।

ब्रह्मचारी—तत्र = लावाणकग्रामे, उदयनो नाम = उदयन इति नाम्ना ख्यातः, राजा = नृपः, प्रतिवसति = अवसत् । अत्र भूतार्थे वर्तमानता । उदयनाभिधेयोऽधिपः मृगयानिर्गतः कदाचिल्लावाणके वसतिमकरोदिति भावः ।

यौगन्धरायण—आपने अध्ययन समाप्त कर लिया क्या ?

ब्रह्मचारी—नहीं किया ।

यौगन्धरायण—अध्ययन समाप्त यदि नहीं हुआ तो फिर आपके आने का क्या कारण है ?

ब्रह्मचारी—वहाँ पर बहुत बड़ी विपत्ति टूट पड़ी ।

यौगन्धरायण—यह कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते हैं ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

ब्रम्हचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

ब्रम्हचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

यौगन्धरायणः—तत्रभवान् = आदरणीयः, उदयनः = एतदभिधेयो राजा, श्रूयते = आकर्ण्यते । किं सः = तद्विषये किं वृत्तमिति भावः ।

ब्रम्हचारी – अवन्तिराजपुत्री = अवन्तिदेशाधिपस्य महासेनचण्डप्रद्योतस्य पुत्री = दुहिता, वासवदत्ता नाम = नाम्ना वासवदत्ता, तस्य = वत्सराजोदयनस्य, पत्नी = भार्या, दृढं = प्रसभम्, अभिप्रेता = अभीष्टाऽऽसीदिति शेषः । किलेति ऐतिह्ये । जनोक्त्या श्रूयते यद् भार्या वासवदत्ता तस्मै वत्सराजोदयनाय रोचतेतमाम् ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यं = सम्भवमेतत् । युज्यते किल तदीयं प्रेम वासवदत्तायाम् इति भावः । ततस्ततः = तदनन्तरं किं जातम् ?

ब्रम्हचारी—ततः = तदनन्तरं, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, मृगयानिष्क्रान्ते = आखेटार्थं निर्गते, राजनि = अधिपे, वत्सराजोदयने इति भावः, तस्मात् ग्रामादिति शेषः, ग्रामदाहेन—ग्रामस्य = लावाणकाभिधेयस्य जनपदस्य, दाहेन = ज्वलनेन, सा = पूर्वोक्ता प्रियतमा भार्या वासवदत्ता, दग्धा = भस्मीभूता ।

यौगन्धरायण—श्रेष्ठ राजा उदयन का नाम सुना जाता है । उनका क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता नाम की उनकी अत्यधिक प्यारी पत्नी थीं ।

यौगन्धरायण—होंगी, तब क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—जब वे राजा शिकार खेलने के लिए उस गाँव से निकल गये तब उस गांव में आग लगने से वह (महारानी वासवदत्ता) जल गईं ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मन्दभाआ। [अलीकमलीकं खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रम्हचारी—ततस्ताभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति। ततस्ततः ?

वासवदत्ता—(आत्मगतं=स्वगतम्) अलीकम् अलीकम् = असत्यमसत्यं, खलु = निश्चयेन, एतत् = इदं, वासवदत्तादहनवृत्तमिति भावः। मन्दभागा-मन्दं भाग्यं यस्याः सा तथोक्ता, इयमहमिति शेषः,जीवामि = जीवितं धारयामि।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः = तदनन्तरं किमभूत् ?

ब्रम्हचारी—ततः = तदनन्तरं, तां = ज्वलन्तीं वासवदत्तामिति भावः; अभ्यवपत्तुकामः--अभ्यवपत्तुं व्यसने साहाय्यं कर्तुं, कामः = अभिलाषः, "कामोऽभिलाषः तर्षस्तु"--इत्यमरः, यस्य स तथोक्तः यौगन्धरायणो = एतन्नामकः, सचिवः = महामात्यः, "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः"--इत्यमरः, तस्मिन्नेवाग्नौ = प्रचण्डे पावके, पतितः = गतः, यौगन्धरायणो मन्त्री तत्रैव वह्नौ वासवदत्तात्राणायात्मानमपातयत् इति भावः।

यौगन्धरायणः--सत्यं पतित इति = वासवदत्तामुद्धर्तुमिच्छोः यौगन्धरायणस्य वह्नौ पतनमिदं सत्यं किम् ? ततस्ततः = तदनन्तरं संवृत्तं वृत्तं श्रोतुं त्वराभावगर्भः प्रश्नोऽयं यौगन्धरायणस्य।

वासवदत्ता—(आत्मगत) यह झूठ है झूठ है, मैं मन्द भाग्यवाली जीती जागती हूँ।

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ, क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब उन (महारानी) को बचाने की इच्छा करते हुए मन्त्री यौगन्धरायण उसी आग में कूद पड़े।

यौगन्धरायण--सच ही कूद पड़े ? उसके बाद क्या हुआ ?

ब्रम्हचारी--ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनित-सन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामाऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं। [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रम्हचारी—ततः = तदनन्तरं, प्रतिनिवृत्तो = आखेटात् प्रत्यावर्तितो, राजा = वत्सराजोदयनः; तद्वृत्तान्तं = वासवदत्तायौगन्धरायणदहनवार्तां, "वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्तः"–इत्यमरः, श्रुत्वा = निशम्य, तयोः = वासवदत्तायौगन्धरायणयोः, वियोगजनितसन्तापः--वियोगेन जनितः सन्तापो यस्य सः तथोक्तः, विप्रयोगोत्पन्नतापः इति भावः, तस्मिन्नेव = पूर्वोक्ते एव, अग्नौ = पावके, प्राणान् = असून्, परित्यक्तुकामः---परित्यक्तुं कामो यस्य सः तथोक्तः, त्यागेच्छुः इति यावत्, अमात्यैः = रुमण्वदादिभिर्मन्त्रिभिः, महता = अत्यधिकेन, यत्नेन = प्रयत्नेन, प्रयासेनेति भावः, वारितः=निरुद्धः।

वासवदत्ता--(स्वगतं) जानामि जानामि = वेद्मि वेद्मि, आर्यपुत्रस्य= स्वधवस्योदयनस्य, मयि = वासवदत्तायां, सानुक्रोशत्वम्-अनुक्रोशेन सहितः सानुक्रोशः, तस्य भावः सानुक्रोशत्वन्तस्य दयालुत्वमिति भावः "कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि"–इत्यमरः। मम प्रियतमोदयनो मद्विषये दयालुरस्तीत्यहं पूर्णतयाऽवगच्छामि।

यौगन्धरायणः--ततस्ततः = अग्निप्रवेशनिवारणानन्तरं राज्ञः कीदृशः वृत्तान्तः इति जिज्ञासात्वराभिप्रायेण पृच्छति यौगन्धरायणस्तदनन्तरं किं जातमिति।

ब्रह्मचारी--तब शिकार से लौटे हुए राजा उदयन उस घटना को सुनते ही महारानी और यौगन्धरायण के विरह से दुःखी होकर उसी आग में प्राण को छोड़ने की इच्छा किए। तब मन्त्रियों ने बहुत प्रयास से उन्हें रोका।

वासवदत्ता--(मन में) आर्य पुत्र का मुझ पर कितना स्नेह है जानती हूँ, जानती हूँ।

यौगन्धरायण--तब क्या हुआ, क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणिं अय्य जोअन्धराअणो होदु । [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

ब्रह्मचारी--ततः = तदनन्तरं, तस्याः = दग्धाया वासवदत्तायाः, शरीरोपभुक्तानि--शरीरे उपभुक्तानि, तानि शरीरोपभोगसाधनीभूतानि इति भावः, दग्धशेषाणि-प्राग्दधानि पश्चाच्छेषानि दहनावशिष्टानीति यावत्, आभरणानि= विभूषणानि, "अलङ्कारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्-" इत्यमरः, परिष्वज्य= आलिङ्गय, मोहं=मूर्छां "मूर्च्छा तु कश्मलं मोहः"—इत्यमरः, उपगतः= आसादितः ।

सर्वे—हा !-इत्यनेन पदेन राजमूर्च्छाऽऽकर्णनात् सर्वेषां विषादोदयम्प्रस्तौति । अत्र राजानमिति शेषः । उदयनस्य शोच्यत इति भावः ।

वासवदत्ता--(स्वगतम्=आत्मगतं) इदानीं=प्रिययोः वियोगस्य वार्तां श्रुत्वाऽस्मिन् समये, आर्ययौगन्धरायणः=कूटनीतिप्रयोगदक्षो महामात्यः, सकामः-कामेन=उर्षेण सह=समृद्धः समृद्धाभिलाष इति भावः "कामोऽभिलाषस्तर्षश्च"- इत्यमरः, भवतु=अस्तु । इदानीं कूटनीतिकारणादेव यौगन्धरायणेच्छाऽनुकूला आर्यपुत्रस्य मूर्च्छेयमुपगतेति उपालभते यौगन्धरायणं मनसा वासवदत्ता ।

चेटी—भर्तृदारिके ! माननीये ! राजकुमारि ! खलु=निश्चयेन, इयं= समीपस्था, आर्या=आवन्तिका, रोदिति=अश्रुपातं करोति ।

ब्रह्मचारी--तब वासवदत्ता के शरीर पर धारण किये गये जलने से बचे हुए अलङ्कारों को आलिङ्गन कर राजा मूर्च्छित हो गये ।

सब लोग--हाय ! (गजब हो गया) ।

वासवदत्ता--(मन ही मन) इस समय आर्य यौगन्धरायण (इस बात को सुनकर अपनी कूटनीति की कुशलता देख कर) पूर्ण मनोकामना वाले हों ।

दासी--राजकुमारि ! आर्या (आवन्तिका) रो रही हैं ।

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं। [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम्? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी। ततस्ततः?

ब्रम्हचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं। [दिष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्।]

पद्मावती—सानुक्रोशया—अनुक्रोशेन=दयया सहितया सा तया, दया संयुक्तयेति भावः, भवितव्यं = कल्पनीयम्। रुदती चेयमार्याऽऽवन्तिका दयावती सञ्जाता भवेत्, यतः उदाराशय विशेषतः स्त्रियो हि परदुःखप्रसङ्गे दुःखयुक्ता भवन्तीत्युदारचित्तया साम्प्रतं तया रुदितं स्यादिति भावः।

यौगन्धरायणः—अथ किम् = अन्यत् किमथ किम् = अन्यत् किम्। प्रकृत्या= स्वभावेन, मे = मम परिव्राजकस्य यौगन्धरायणस्येति भावः, भगिनी = स्वसा सानुक्रोशा = सदया। ततस्ततः = तदनन्तरं किमभूदिति पृच्छति यौगन्धरायणो ब्रह्मचारिणम्।

ब्रम्हचारी—ततः = तत्पश्चात्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दं, प्रतिलब्धसंज्ञः— प्रतिलब्धा संज्ञा येन सः प्राप्तचैतन्य इति भावः, "संज्ञा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थसूचना"—इत्यमरः, संवृत्तः = सञ्जातः।

पद्मावती—दिष्ट्या = भाग्येन, दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः, ध्रियते = अवतिष्ठते, दैवेन जीवतीति भावः। मोहं = मूर्च्छां, गतः = प्राप्तः इति = इत्थं, श्रुत्वा = निशम्य मे=मम पद्मावत्याः, हृदयं = "चित्तं, चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः = इत्यमरः, शून्यमिव = चैतन्यरहितमिव।

पद्मावती—(ये) दयालु होंगी।

यौगन्धरायण—और क्या? और क्या? मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है। तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—तब (राजा) धीरे-धीरे होश में आये।

पद्मावती—भाग्य से जी रहे हैं। "(राजा) बेहोश हो गये" इस बात को सुनकर तो मेरा हृदय ही शून्य सा हो गया था।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रम्हचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना–

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः = तदनन्तरं का वार्ता वत्सराजोदयनस्येति ।

ब्रम्हचारी—ततः = तत्पश्चात्, स = प्रियाविरहदुःखितः, राजा = अधिपः, महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः–मह्याः तलं, तस्मिन् परिसर्पणं, पाटलं शरीरं यस्य सः पाटलशरीरः, "श्वेतरक्तस्तु" पाटलः रः–इत्यमरः, पांसुभिः पाटलशरीरः पांसुपाटलशरीरः, महीतलपरिसर्पणेन पांसुपाटलशरीरः "स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना"–इत्यमरः, भूतलविवर्तनधूलिश्वेतरक्तगात्र इति भावः, सहसा=अकस्मात्, उत्थाय–"हा वासवदत्ते" इत्यादि प्रतिसम्बोधनं 'हा'–पदप्रयोगः शोकावेगं प्रतिपादयति–हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये वल्लभे ! हा प्रियशिष्ये ! प्रिया चासौ शिष्या चेति तत्सम्बुद्धौ, वीणावादने इयमासीद्वासवदत्तोदयनस्य शिष्येति, इति=इत्थं किमपि=अवर्णनीयं, बहु=भृशं, प्रलपितवान्=विलापमकरोत् । किं बहुना=भूयसा जल्पितेन किं तावत्फलं स्यात् ? वर्णनीयमपि कियत् ? उदयनस्य वासवदत्ता विरहजन्यदुःखविशेषविषये पूर्वोक्तमेतावदेव अलमिदानीमिति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताविनता हासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन ब्रह्मचारी वासवदत्ताविरहजन्योदयनशोकस्यावर्णनीयतमुपसंहरति ।

यौगन्धरायण––तब क्या हुआ, क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी––तब वे राजा (उदयन) जमीन में लोट-पोट होने से धूलि से भरे हुए शरीर वाले होकर अचानक उठकर हाय वासवदत्त ! हाय अवन्तिराजकुमारि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इस प्रकार कहते हुए बहुत प्रलाप करने लगे । अधिक क्या कहा जाय––

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥१३॥

अन्वयः--इदानीं तादृशाः चक्रवाकाः न एव। स्त्रीविशेषैः वियुक्ता अन्ये अपि तादृशाः न एव। सा स्त्री धन्या, यां भर्ता तथा वेत्ति, हि भर्तृस्नेहात् सा दग्धा अपि अदग्धा (अस्ति) ॥ १३ ॥

पदार्थः--इदानीं = इस समय, तादृशाः = उस (राजा) के समान, चक्रवाकाः, चकवे (पक्षि-विशेष) नैव = नही हैं। स्त्री विशेषैः = श्रेष्ठ स्त्रियों से, वियुक्ताः = बिछुड़े हुए, अन्ये अपि = दूसरे (प्रेमी) भी, तादृशा = उदयन के समान न एव = नहीं हैं। सा = वह स्त्री = नारी, धन्या = धन्य है, यां = जिसको, भर्ता = पति, तथा = वैसे, वेत्ति = जानता (मानता) है। अर्थात् उदयन की भाँति मानता है हि = क्योंकि, भर्तृस्नेहात् = पति के स्नेह के कारण, सा = वह, दग्धा अपि = जली हुई भी (जल जाने पर भी), अदग्धा = जली नहीं है अर्थात् पति के हृदय में जी रही है।

लालमती व्याख्या---इदानीं साम्प्रतं, तादृशाः = उदयनसमाः चक्रवाकाः = कोकाभिधेयाः पक्षिविशेषाः, "कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः"-इत्यमरः, नैव = नह्येव, ये नक्तं वल्लभाविप्रयोगं सहन्त इति भावः, स्त्रीविशेषैः = श्रेष्ठ स्त्रीभिः, सीतादमयन्तीशकुन्तलादिभिरिति यावत्, वियुक्ताः = विरहिताः, अन्ये अपि = अपरे अपि, रामनलदुष्यन्तादयो पतयो यावत्, तादृशाः = उदयनसदृशाः, पत्नीवियोगाऽसहिष्णव इति शेषः, नैव = नह्येव सन्ति। सा = पूर्वोक्ता, स्त्री = वल्लभा, वासवदत्तेति भावः, धन्या = पुण्यवती, यां = दग्धामपि वल्लभां, वासवदत्तामिति भावः भर्ता = धवः "धवः प्रियः पतिर्भर्ता"—इत्यमरः, उदयन

इस समय राजा के समान (पत्नी के विरह दुःख को सहने में अक्षम) चकवे नहीं हैं। श्रेष्ठ (प्रियतमा) पत्नी (स्त्रियों) से बिछुड़े हुए अन्य भी (राम, नल, दुष्यन्तादि) वैसे (उदयन के समान) नहीं हैं। वह स्त्री (वासवदत्ता) धन्य है, जिसे पति उस तरह चाहता है। पति के प्रेम से वह जलकर भी बिनजली है अर्थात् पति के हृदय में तथा लोक में कीर्ति रूप से विद्यमान है ॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम् । स हि–

इति भावः, तथा=अवर्णनीया, वेत्ति=स्निह्यति । सा=वासवदत्ता, दग्धाऽपि=भस्मीकृताऽपि, अदग्धा=अभस्मीकृता, अस्तीतिशेषः । पत्युरुदयनस्य प्रेमाऽतिशयेन सा कीर्तिशरीरेण स्वधवचेतसि लोके च जीवितप्रायैव इति भावः ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् शालिनीवृत्तम् । तद्यथा—"शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः" । अलङ्कारश्चात्र प्रसिद्धोपमानस्य चक्रवाकस्योपमेयत्वकल्पनात् प्रतीपम् । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—"प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् । निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते" ।

यौगन्धरायणः—अथेति प्रश्नेऽव्ययपदम्, भोः=हे महाशय ! ब्रह्मचारिन् ! इति भावः, तं=तथाभूतं दीनं राजानं, तु इति वाक्यालङ्कारे—पर्यवस्थापयितुं=विकृतावस्थातः प्रकृतावस्थां प्रापयितुमितिभावः, कश्चित्=कोऽपि, अमात्यः=सचिवः "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः"—इत्यमरः, यत्नवान्=प्रयासशीलो, न=नहि, अस्तीति किम् ?

ब्रह्मचारी—तत्रभवन्तं=माननीयमुदयनं, पर्यवस्थापयितुं=परितः अवस्थापयितुं, रुमण्वान्नाम=नाम्ना रुमण्वान्, अमात्यः=सचिवः, दृढं=भृशं, प्रयत्नवान्=प्रयासशीलः, अस्तीति शेषः । सः=रुमण्वान्, हि=निश्चयेन—

यौगन्धरायण—महोदय ! तो क्या राजा को सम्भालने के लिए (प्रकृत रूप में लाने के लिए) उस समय किसी मन्त्री ने प्रयत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—राजा को प्रकृतिस्थ करने के लिए रुमण्वान् नामक मन्त्री अत्यधिक प्रयत्नशील हैं । वे तो—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधानस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन ब्रह्मचारी वत्सराजोदयनं पर्यवस्थापयितुम्प्रयत्नशीलस्य स्वामिभक्तस्य मन्त्रिणो रुमण्वतश्चित्रणमुपस्थापयति ।

अन्वयः--(स हि) अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति । नृपः प्राणान् त्यजति यदि, तस्य अपि सद्यः उपरमः (स्यात्) ।। १४ ।।

पदार्थः--अनाहारे तुल्यः=भोजन न करने में (वह राजा के) समान, प्रततरुदितक्षामवदनः--प्रतत (निरन्तर) रोने से दुबले मुखवाला, नृपतिसमदुखं=राजा के समान दुःख के साथ, शरीरे=शरीर में (के) संस्कारं=स्नानादि कर्मों (संस्कारों) को, परिवहन्=करता हुआ, दिवा वा रात्रौ वा =दिन हो या रात हो इन दोनों में ही, यत्नैः=प्रयत्नपूर्वक, नरपतिं=राजा की, परिचरति=सेवा सुश्रूषा कर रहा है । यदि=अगर, नृपः=राजा, सद्यः= शीघ्र ही, प्राणान्=प्राणों को, त्यजति=छोड़ दें, (तर्हि=तो), तस्य=उस (मन्त्री रुमण्वान्) की, अपि=भी, उपरमः=मृत्यु, (स्यात्=हो जाय) ।। १४ ।।

लालमती व्याख्या—(स हि=रुमण्वान् मन्त्री) अनाहारे=राज्ञः उपवासे, तुल्यः=तत्समः, प्रततरुदितक्षामवदनः—प्रततं च तत् रुदितं, प्रततरुदितं, क्षामं वदनं यस्य स तथोक्तो निरन्तराश्रुपातकृशवक्त्रः, "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"—इत्यमरः, नृपतिसमदुःखं=वत्सराजोदयनसदृशकष्टं यथा स्यात् तथा, शरीरे=काये, संस्कारं=स्नानादिशुद्धिकर्म, परिवहन्=धारयन्, दिवा=दिवसे, वा=अथवा, रात्रौ=निशायां "निशा निशीथनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा"

भोजन न करने में राजा के समान हैं अर्थात् जब तक राजा को भोजन नहीं कराते तब तक भोजन नहीं करते । निरन्तर रोने से दुबले मुँहवाले राजा के समान दुःख का अनुभव करते हुए शरीर में स्नान आदि संस्कारों को करते हुए

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो । [दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः—

—इत्यमरः, वा=अथवा, यत्नैः=प्रयत्नैः, नरपतिं=भूपतिमुदयनं, परिचरति= उपासते । नृपः=अधिपः, प्राणान्=असून्, त्यजति=जहाति, मुञ्चेत् इति भावः, यदि=चेत्, तर्हीति शेषः, तस्य=मन्त्रिणो रुमण्वतोऽपि, सद्यः=सपदि "सद्यः सपदि तत्क्षणे"—इत्यमरः, उपरमः=निधनं स्यादिति शेषः ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् शिखरिणीवृत्तम् । तद्यथा—"रसै रुद्रै-श्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—दिष्ट्या=सौभाग्येन, इदानीम्=अस्यां विपन्नावस्थायां, आर्यपुत्रः=भर्ता, सुनिक्षिप्तः—सुष्ठु=सम्यक्, निक्षिप्तः=स्थितः, विद्यत इति शेषः । मम प्रियतमस्य रक्षाभारो इदानीं समुचिते स्निग्धे च मन्त्रिणि रुमण्वति आरोपितो वर्तत इति मम सौभाग्यमेवेति भावः ।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतं=स्वगतम्) अहो !=आश्चर्यम् । रुमण्वान्= एतदभिधेयो मन्त्री, महद्भारं—महतः राजपरिपालनरूपस्य विशिष्टस्य कार्यस्य, भारो=भरः, तं, वहति=कर्षति । राजपरिपालनरूपं विशिष्टं भारमुद्वहन् रुमण्वान् प्रशंनीयं कार्यं करोतीति भावः, कुतः=कस्मात्—

दिन-रात अनेक यत्नों से राजा की सेवा सुश्रूषा कर रहे हैं । अगर राजा प्राण छोड़ें तो तत्क्षण ही उनकी भी मृत्यु हो जाय ॥१४॥

वासवदत्ता—(मन ही मन) भाग्य से इस समय अच्छे व्यक्ति (के हाथ) में आर्यपुत्र पड़े हैं ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहो ! रुमण्वान् ने बड़े कार्य के भार को धारण किया है । क्योंकि—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणः वासवदत्तासंरक्षणरूपस्य स्वकार्यस्यावसानमुपस्थाप्य उदयनसंरक्षणरूपं विशिष्टभारमुद्वहतः रुमण्वतस्य कार्यस्य काठिन्यमुपस्थापयति ।

अन्वयः--हि अयं भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः । हि तस्मिन् सर्वम् अधीनं, यत्र नराधिपः अधीनः (अस्ति) ॥ १५ ॥

पदार्थः—हि=निश्चय ही, अयं=यह (वासवदत्ता की सुरक्षा रूप) भार= (मेरा) भार, सविश्रमः=विश्राम के साथ (है) अर्थात् कम हो गया है । तस्य=(किन्तु) उसका (रुमण्वान् का), तु=जो, श्रमः=परिश्रम (भार) प्रसक्तः=अत्यधिक (निरन्तर) हो गया है अर्थात् वैसा ही बना है । हि= क्यों कि, तस्मिन्=उसी के, सर्वं=सब-कुछ, अधीनं=अधीन है, यत्र=जिसके, नराधिपः=महाराज (उदयन), अधीनः=अधीन (वशवर्ती) हैं ॥ १५ ॥

लालमती व्याख्या--हि=निश्चयेन, "हि हेतावधारणे"--इत्यमरः, अयं= वासवदत्तारक्षणरूपो मदीयः, भारः=भरः, सविश्रमः=विश्रमेण=विरामेण सहितः संयुक्तः, अस्तीति शेषः, मम तु भारो विरतोऽभूदिति भावः । परन्तु, तस्य= रुमण्वतो मन्त्रिणः तु, श्रम=परिश्रमः, उदयनपरिरक्षणरूपो भारः, प्रसक्तः— प्रकर्षेण=विशेषेण सक्तः=लग्नः, "तत्परः प्रसितासक्तौ"—इत्यमरः, विशेषरूपेण स्थितोऽस्तीति भावः । हि=यतः, तस्मिन्=रुमण्वति, सर्वं=सकलो लोकः, अधीनम्=आयत्तं, यत्र=यस्मिन्, नराधिपः=वत्सराजोदयनः, अधीनः=आयत्तः, "अधीनो निघ्न आयत्तः"--इत्यमरः । रुमण्वति राज्ञोऽधीनत्वात् सर्वं खलु राजकार्यजातमधीनमस्ति । अतः तस्य रुमण्वतो भारो महत्तर इति भावः ॥१५॥

छन्दोऽलङ्कारश्च--पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" । अलङ्कारश्चात्र

यह मेरा भार खत्म हुआ, उस रुमण्वान् का श्रम निरन्तर बढ़ ही रहा है । क्योंकि उस व्यक्ति (रुमण्वान्) में सभी अधीन हैं, जिसमें राजा ही अधीन हैं ।

(प्रकाशम्) अथ भोः ? पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रम्हचारी--तदिदानीं न जाने। 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्। ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽमहपि निर्गतोऽस्मि।

उत्तरार्द्धस्थसामान्येन द्वितीयचरणस्यविशेषसमर्थनादथन्तिरन्यासः। तद्यथा—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः" ॥१५॥

(प्रकाशं=सर्वश्राव्यं) भोः=हे ब्रह्मचारिन्! अथ=किन्तर्हि, इदानीं=साम्प्रत, सः = वासवदत्ताविरहविग्नो राजा = वत्सराजोदयनः, पर्यवस्यापितः= प्रकृतौ अवस्थापितः ?

ब्रह्मचारी—"तदिदानीं न जाने।"' '''ततोऽहं निर्गतोऽस्मि"।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुदधृतोऽस्त्ययं गद्यांशः। ब्रह्मचारी प्रच्छन्नयौगन्धरायम्प्रति लावाणकग्रामजातं दुवृ त्त श्रावयन् वासवदत्ताविरहोद्विग्नस्य वत्सराजोदयनस्य विविधविधं प्रलापमुपस्थापयति।

लालमती व्याख्या--इदानीम् = अधुना, अहमिति शेषः, तत् = प्रकृतौ अवस्थापितो राजा, न वेति, न = नहि, जाने=जानामि। "इह = अस्मिन् स्थाने, तया=वासवदत्तया, सह = साकं, हसितं = विहसितम्, इह = अस्मिन् स्थलविशेषे, तया = वल्लभया, सह = समं, कथितं=वार्तालापमकरोत्, इह=

(प्रकट रूप से) महाशय! क्या इस समय राजा प्रकृतिस्थ कराये गये हैं ?

ब्रह्मचारी--इस समय उस बात (राजा की स्वस्थता) को मैं नहीं जानता। "इस स्थान में उन वासवदत्ता के साथ हँसा था, यहाँ पर उनके साथ बातचीत किया था, यहाँ पर उनके साथ वास किया था, यहाँ पर उनके साथ कोप किया था, यहाँ पर उनके साथ सोया था" इस प्रकार से प्रलाप करने वाले

तापसी--सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि । [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

अस्मिन् स्थले, तया = प्रियया, सह = साकं, पर्युषितं = सुखेनोपविष्टम् इह = अत्र स्थले, तया = प्रणयकुपितया, सह = साकं, कुपितं = कोपः प्रदर्शितः, इह = अमुष्मिन् स्थले, तया = रमण्या, सह = साकं, शयितं = शयनं कृतम्, इत्येवम् = इदमित्थम्प्रकारेण, तं = शोकविधुरं, विलपन्तं = रुदन्तं, प्रलपन्तमिति भावः, राजानं = वत्सराजोदयनम्, अमात्यैः = मन्त्रिभिः, "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः"–इत्यमरः, महता = अत्यधिकेन, यत्नेन = प्रयासेन, तस्मात् = भस्मीभूतात्, ग्रामात् = लावाणकाभिधेयात्, गृहीत्वा = आदाय, अपक्रान्तं = निर्गतम् । ततः = तस्मात् ग्रामात्, निष्क्रान्ते = निर्गते, राजनि = अधिपे उदयने इति भावः, प्रोषितनक्षत्रचन्द्रं—नक्षत्राणि चन्द्रश्च नक्षत्रचन्द्राः, प्रोषिताः नक्षत्रचन्द्रा यस्मात्तत् = व्यपगततारकचन्द्रमसं, नभः = अम्बरं "नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्"—इत्यमरः, इव = यथा, सः = पूर्वोक्तः, ग्रामः = लावाणकं, संवृत्तः = सञ्जातः । ततः = तस्मात् ग्रामात्, अहं = ब्रह्मचारी, अपि, निर्गतः = अपक्रान्तः, अस्मि = वर्ते । "प्रोषितनक्षत्रं नभः इव" इत्यत्रोपमाऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः" ।

तापसी—सः = उदयनो, खलु = निश्चयेन, गुणवान् = प्रशस्तगुणान्वितः, नामेति वाक्यालङ्कारे, राजा = अधिपः, यः = तत्रभवान् उदयनः, आगन्तुकेन = प्राघुणिकेन, अपि, एवम् = इत्थं, प्रशस्यते = संस्तूयते, प्रशंसा क्रियत इति भावः ।

राजा को मन्त्री लोग बड़े प्रयत्नों के बाद उस गाँव से ले गये । तब राजा के उस गाँव से जाने पर नक्षत्र और चन्द्रमा से रहित आकाश के समान वह लावाणक गाँव सौन्दर्यविहीन हो गया । तब मैं भी वहाँ से चल पड़ा हूँ ।

तापसी--वे राजा प्रशस्त गुणों से युक्त हैं जिनकी बटोही (पथिक) भी इस तरह प्रशंसा करते हैं ।

चेटी--भट्टिदारिए ! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि । [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती--(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम् । [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम् ।]

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।

उभौ —गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी—तथाऽस्तु ।

(निष्क्रान्तः)

चेटी—भर्तृदारिके !=राजकुमारि ! "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका" इत्यमरः । किं, नु इति वितर्के, खलु इति वाक्यालङ्कारे, अपरा=अन्या, स्त्री = योषित्, तस्य = उदयनस्य, हस्तं=करं, गमिष्यति = व्रजिष्यति । किं काचिदन्या नारी भूपतेरुदयनस्य हस्तगता भविष्यतीति भावः । त्वया वरणीयोऽयमुदात्तगुणान्वितो राजा कथमपीति व्यङ्ग्यार्थः ।

पद्मावती--(आत्मगतं = स्वगतम्) मम = पद्मावत्याः, हृदयेन=चेतसा, एव, सह = समं, मन्त्रितं = विमृष्टम् । मदीयहृदयसम्मतमेवेदं विचारितमिति ।

ब्रह्मचारी--भवन्तौ = काञ्चुकीययौगन्धरायणौ इति भावः, आ = स्मृतिद्योतकमव्ययं, पृच्छामि = आदेशं याचे गन्तुमिति शेषः । तावदिति वाक्यालङ्कारे, गच्छामः=यामः । गमनं मे भवन्तावनुमन्येतामिदानीमहं गच्छामीति भावः ।

उभौ —अर्थसिद्धये = प्रयोजनसाफल्याय, गम्यतां = व्रज्यताम् ।

ब्रह्मचारी--तथास्तु = तथा भवतु ।

(निष्क्रान्तः = रङ्गामञ्चाद् बहिर्गच्छति)

दासी--राजकुमार ! कौन-सी स्त्री उनके हाथ मे पड़ेगी ?

पद्मावती—(मन में) इसने मेरे मन के साथ सलाह की (मन की बात कही) ।

ब्रह्मचारी--मैं आप दोनों से (जाने के लिए पूछता हूँ) मैं जाता हूँ ।

दोनों—प्रयोजन की सफलता के लिए आप जाँय ।

ब्रह्मचारी--ऐसा ही हो ।

(जाता है)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल !

पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि । [आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति (**काञ्चुकीयमवलोक्य**) गच्छामस्तावत् ।

यौगन्धरायणः—साधु=समीचीनम्, अहमपि = यौगन्धरायणोऽपि, तत्र-भवत्या=परमादरणीयया, राजकुमार्येति भावः, अभ्यनुज्ञातः = आदिष्टः, गन्तुं= गमनार्थम्, इच्छामि = अभिलषामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्या = मान्यया राजकुमार्या, अभ्यनुज्ञातः =आदिष्ट, सन् इति शेषः, गन्तुं = गमनाय, इच्छति = वाञ्छति, आवन्तिकाभ्रातेति शेषः, किल = खलु ।

पद्मावती—आर्यस्य = महाशयस्य, परिव्राजकस्येति भावः, भगिनिका= अनुकम्पिता भगिनी, स्निग्धा स्वसा आवन्तिकेति भावः, आर्येण विना = पूज्येन ऋते, यौगन्धरायणं विनेति यावत्, उत्कण्ठिष्यते—उत्कण्ठिता = समुत्सुका भविष्यति ।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगता—साधुः चासौ जनः, तस्य हस्तं गता सज्जनकरस्थितेति भावः, एषा = मम स्वसा, न =नहि, उत्कण्ठिष्यति=उत्कण्ठा-मनुभविष्यति । (काञ्चुकीयमवलोक्य=काञ्चुकीयं वीक्ष्य) तावत् = इदानीमिति भावः, गच्छामः=यामः ।

यौगन्धरायण--अच्छा ! मैं भी माननीया राजकुमारी से आज्ञा पाकर जाना चाहता हूँ ।

काञ्चुकीय--पूजनीया राजकुमारी से आज्ञा पाकर ये जाना चाहते हैं ।

पद्मावती--आर्य की बहन (आवन्तिका) आर्य के बिना समुत्कण्ठित होंगी ।

यौगन्धरायण--सज्जन के हाथ में पड़ी हुई ये उत्कण्ठित नहीं होंगी । (काञ्चुकीय को देखकर) मैं जाता हूँ ।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

यौगन्धरायणः—तथाऽस्तु ।

(निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि । [जाते तव सदृशं भर्तारं लभस्व ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।]

काञ्चुकीयः—पुनर्दर्शनाय = मुहुरागमनाय, भवान् = त्वं परिव्राजकः, गच्छतु = व्रजतु ।

यौगन्धरायणः—तथा = तादृशम्, अस्तु = भवतु ।

(निष्क्रान्तः = रङ्गमञ्चाद्बहिर्गतः)

काञ्चुकीयः—समयः = कालः, इदानीं = साम्प्रतम्, अभ्यन्तरम् = अन्तरालं, "अभ्यन्तरन्त्वन्तरालमित्यमरः", मध्ये गृहमिति भावः, प्रवेष्टुं = प्रवेशं कर्तुम् ।

पद्मावती—आर्ये ! = पूज्ये !, तापसि ! इति भावः, वन्दे = प्रणौमि ।

तापसी--जाते ! =वत्से ! तव = भवत्याः, सदृशम् = अनुरूपं, रूपगुणान्वितमिति भावः, भर्तारं = धवं, "धवः प्रियः पतिः भर्ता"—इत्यमरः, लभस्व= आप्नुहि ।

वासवदत्ता - आर्ये ! = पूज्ये ! तापसि ! इति यावत्, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अहं = प्रोषितभर्तृका, वन्दे = प्रणौमि त्वामिति शेषः ।

काञ्चुकीय--फिर दर्शन देने के लिए आप जाँय ।

यौगन्धरायण--ऐसा ही हो ।

(चला जाता है)

काञ्चुकीय--अभी (कुटिया के) भीतर प्रवेश करने का समय हो गया है ।

पद्मावती--आर्ये ! मैं वन्दना करती हूँ ।

तापसी--पुत्रि ! आप अपने समान गुणवाले पति को प्राप्त करें ।]

वासवदत्ता--आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि। [त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय।]

वासवदत्ता—अणुग्गहीद म्हि। [अनुगृहीतास्मि।]

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम्। इत इतो भवति! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः

प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।

तापसी—त्वमपि = भवत्यपि, वासवदत्तेति भावः, अचिरेण = शीघ्रमेव, भर्तारं = स्वधवं, समासादय = अवाप्नुहि।

वासवदत्ता—अनुगृहीता = कृताऽनुग्रहा, अस्मि = वर्ते।

काञ्चुकीयः—तत्=तस्मात् कारणात्, सायङ्कालस्य सामीप्यादिति यावत्, आगम्यताम् = आव्रज्यताम्। भवति ! = माननीये। राजकुमारि !, इतः इतः= अत्र, अत्र। आगच्छन् भवती, अनेन मया प्रदर्श्यमानेन मार्गेण चलत्विति भावः। सम्प्रति = इदानीं, हि = यतः—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य प्रथमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। पद्येनानेन काञ्चुकीयः तपोवने सायङ्कालिकं मनोरमं दृश्यमुपस्थापयति।

अन्वयः—खगाः वासोपेताः। मुनिजनः सलिलम् अवगाढः। प्रदीप्तः अग्निः भाति, धूमो मुनिवनं प्रविचरति। दूरात् परिभ्रष्टः असौ रविः अपि संक्षिप्तकिरणः (सन्) रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥१६॥

पदार्थः—खगाः = पक्षी, वासोपेताः=(अपने) निवास स्थान (घोसलों) में चले गये। मुनिजनः = मुनि लोग, सलिलं=जल में (स्नान के लिए)

तापसी—तुम भी अपने पति को शीघ्र ही प्राप्त करो।

वासवदत्ता—मैं अनुगृहीत हूँ।

काञ्चुकीय—तो आइए राजकुमारि ! इधर से, इधर से, क्योंकि इस समय—

चिड़ियाँ घोंसलों में चली गईं। तपस्वी लोग स्नान करने के लिए जल में प्रवेश कर गये। प्रज्वलित यज्ञीय अग्नि शोभित हो रही है। मुनियों के इस

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो

अवगाढ़ः=प्रविष्ट हो गये। प्रदीप्तः = प्रज्वलित, अग्निः = (यज्ञ की) अग्नि, भाति=चमक (प्रकाशित हो) रही है। धूमः=धुआँ, मुनिवनं = तपस्वियों के वन में (तपोवन में) प्रविचरति = चारों ओर फैल रही है। असौ = यह, रविः = सूर्य, अपि = भी, दूरात् = दूर से (ऊँचे आकाश से), परिभ्रष्टः = गिरा हुआ, संक्षिप्तकिरणः = जिसकी किरणें सिमट गयी हैं (ऐसा सूर्य), रथं=रथ को, व्यावर्त्य = लौटाकर (मोड़कर) शनैः = धीरे-धीरे, अस्तशिखरं = अस्ताचल के शिखर में, प्रविशति = प्रवेश कर रहा है ॥ १६ ॥

लालमती व्याख्या—खगाः = पक्षिणः, वासोपेताः = नीडमधिगताः, स्ववासस्थलमुपगता इति भावः। मुनिजनः=तापसलोकः "लोकस्तु भुवने जने"—इत्यमरः, सलिलं = वारि, अवगाढः=प्रविष्टः, स्नानं करोतीति यावत्। प्रदीप्तः =प्रज्वलितः, अग्निः = पावकः, "अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्र"—इत्यमरः, भाति = शोभते। धूमः, हवनोद्भूत इतिशेषः, मुनिवनं—मुनीनां = ऋषीणां वनम्=अरण्यम्, "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं वनम्"—इत्यमरः, तपोवनमिति भावः, प्रविचरति = परिभ्रमति। दूरात् = विप्रकृष्टप्रदेशात्, उच्चाम्बरादिति भावः, परिभ्रष्टः = निपतितः सन् इति शेषः, असौ = अयं, रविः = सूर्यः, अपि, संक्षिप्तकिरणः=सक्षिप्ताः किरणाः येन स तथोक्तः = सङ्कुचितमरीचिः—"किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः"—इत्यमरः, सन् इति शेषः, रथं=स्यन्दनं, व्यावर्त्य=परावर्त्य, निरुध्येति भावः, शनैः = मन्दमन्दम्, अस्तशिखरम्—अस्तस्य शिखरं तत्, अस्ताचलचूडामितिभावः, प्रविशति, प्रवेशं करोति अवगाहत इति यावत् ॥ १६ ॥

तपोवन में धुआँ फैल रहा है। दूर आकाश से गिरे हुए ये सूर्य भी अपनी किरणों को समेट कर रथ को लौटाकर धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी में प्रवेश कर रहे हैं ॥१६ ॥

रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् शिखरिणीवृत्तम् । तद्यथा—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी" । अलङ्कारश्चात्र स्वभावोक्तिः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—"स्वभावोक्तिदुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्" ।

(सर्वे = अशेषाः, निष्क्रान्ताः = निर्गताः, रङ्गमञ्चादिति शेषः)

(इति प्रथमोऽङ्कः=समाप्तः प्रथमोऽङ्कः)

टिप्पणी—अङ्कः—जब सभी पात्र रङ्गमञ्च से निकल जाते हैं वहाँ अङ्क की समाप्ति होती है अर्थात् उसे ही अङ्क कहा जाता है । जैसे कि साहित्य-दर्पण में कहा है—

"अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः" ॥

अर्थात् जहाँ पर अन्त में सब पात्र निकल जाते हैं उसे "अङ्क" कहते हैं ।

(सभी निकल जाते हैं)

कृष्णा व्याख्या का प्रथम अङ्क समाप्त हुआ ।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी--कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणासि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअ भट्टिदारिआ उवकरिदकण्णचुलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्स । [**कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि ।**

(ततः=प्रथमाङ्कस्यान्ते द्वितीयाङ्कस्य प्रारम्भे च, चेटी=प्रधानदासी, रङ्गमञ्चमिति शेषः, प्रविशति = प्रवेशं करोति)

चेटी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके !=सहयोगिन्यां दास्यां सम्बुद्धिस्त्वरागर्भा सम्बुद्धिः। कुत्र कुत्र=कस्मिन् स्थाने, कस्मिन् स्थाने, त्वरायां वीप्सा, भर्तृदारिका= राजकुमारी, पद्मावती=एतन्नामिका ? 'राजा भट्टारको देवदत्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः। कस्मिन् स्थाने राजकुमारी पद्मावत्यस्तीति प्रधानचेटी सहयोगिनीं कुञ्जरिकां त्वरागर्भंप्रश्नं करोति । किं भणसि = किं कथयसि, त्वं कुञ्जरिकेति शेषः, माधवीलतामण्डपस्य– माधवीलताया मण्डपस्तस्य = वासन्ती-व्रततिनिकुञ्जस्य, "वासन्ती माधवीलता"--इत्यमरः, "वल्ली तु व्रततिर्लता"-- पार्श्वतः = समीपे, कन्दुकेन = गेन्दुकेन, क्रीडासाधनेनेति यावत्, क्रीडति = खेलति । यावत् = तर्हि इति भावः, भर्तृदारिकां = राजकुमारीम्, उपसर्पामि=

(तब दासी प्रवेश करती है)

दासी—कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके !! राजकुमारी पद्मावती कहाँ हैं ? क्या कहती हो ? ये राजकुमारी (पद्मावती) वासन्तीलताकुञ्ज के पास में गेंद खेल रही हैं । तो, राजकुमारी के पास चलती हूँ । (घूमकर और देखकर) अरे ! ये राजकुमारी कान के आभूषणों को ऊपर उठाकर कसरत (गेंद खेलने के व्यायाम) से उत्पन्न पसीने की बूँदों से विचित्र और थकने से सुन्दर दीख पड़ने वाले मुख से उपलक्षित होकर इधर ही आ रही हैं । तो, मैं इनके पास चलती हूँ ।

अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति । यावदुपसर्पामि ।]

(निष्क्रान्ता)

इति प्रवेशकः ।

आसादयामि । (परिक्रम्य = इतस्ततो गत्वा, अवलोक्य = वीक्ष्य) अम्मो ! =विस्मयबोधकमिदमव्ययपदम्, इयम्=एषा, समीपतरवर्तिनीति भावः, भर्तृदारिका=राजकुमारी पद्मावती, उत्कृतकर्णचूलिकेन—कर्णयोश्चूलिके कर्णचूलिके, उत्कृते कर्णचूलिके यस्मिस्तत् तेन=ऊर्ध्वंस्थापितश्रोत्रालङ्कारेण, व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन—व्यायामेन सञ्जाताः व्यायामसञ्जाताः, स्वेदस्य बिन्दवः स्वेदबिन्दवः "घर्मो निदाघः स्वेदः स्यात्"—इत्यमरः, "पृषन्ति बिन्दुपृषता"—इत्यमरश्च, व्यायामसञ्जाताश्च ते स्वेदबिन्दवस्तैः विचित्रन्तेन गेन्दुकक्रीडायासोद्भूतस्वेदलववैचित्र्याञ्चितेन इति भावः, परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन—परिश्रमणं परिश्रान्तं, रमणीयं दर्शनं यस्य तत् रमणीयदर्शनं, परिश्रान्तेन रमणीयदर्शनं तेन परिश्रमयुक्तमनोज्ञवीक्षितेन, मुखेन = वक्त्रेण, "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"—इत्यमरः उपलक्षिता सतीति शेषः, कन्दुकेन = गेन्दुकेन, क्रीडन्ती = खेलन्ती, इत एव = अस्मिन्नेव क्रीडोद्यानभागे, आगच्छति = आयाति । यावत् इति वाक्यालङ्कारे, उपसर्पामि = पार्श्वे गच्छामि ।

(निष्क्रान्ता = रङ्गमञ्चाद्बहिर्गता)

।। इति प्रवेशकः = समाप्तोऽयं प्रवेशकः ।।

टिप्पणी—आकाशभाषितम्—उपर्युक्त गद्यांश में "किं भणसि, एषा, भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति" इत्यादि चेटी का कथन आकाशभाषित का उदाहरण है । जब एक ही पात्र रङ्गमञ्च पर उपस्थित होकर दूसरे से कुछ बातचीत करता हुआ सा प्रतीत हो अर्थात् उसकी उक्ति को सुनकर प्रत्युक्ति करे तो इसे ही आकाशभाषित कहा जाता है । आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसका लक्षण किया है—

(निकलती है)

(प्रवेशक समाप्त हुआ)

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह ।)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ! [**हला । एष ते कन्दुकः ।**]

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणि एत्तअं । [**आर्ये ! भवत्विदानीमेदावत् ।**]

"किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥"

प्रवेशकः—दो अङ्कों के बीच में जब नीच पात्र (एक या अधिक) आकर निम्न प्राकृत भाषा में ही भूत और भावी घटना की सूचना देता है इसे ही प्रवेशक कहते हैं। इसका प्रयोग दो अङ्कों के बीच में ही होता है, प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में कभी नहीं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसका निम्नलिखित लक्षण है—

"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा" ॥

इसका तात्पर्य ऊपर दिखाया जा चुका है।

(ततः=तदनन्तरं, निष्क्रान्तायां चेट्यामिति भावः, कन्दुकेन, गेन्दुकेन, क्रीडन्ती=खेलन्ती, सपरिवारा=परिवारैः चेट्यादिभिः सहिता, वासवदत्तया=आवन्तिकावेषधारिण्या प्रियवयस्यया, सह=साकं, पद्मावती=एतन्नामिका मगधराजकुमारी, प्रविशति=प्रवेशं करोति ।)

वासवदत्ता—हला ! = सखि !, एषः=अयं, ते = तव, भवत्याः पद्मावत्या इति भावः, कन्दुकः = गेन्दुकः ।

पद्मावती—आर्ये !=मान्ये !, इदानीं = सम्प्रति, एतावत्=एतत्परिमाणं, भवतु=अस्तु । इदानीं कन्दुकक्रीडनं पर्याप्तं जातमिति भावः ।

(तब गेंद खेलती हुई पद्मावती परिवार और वासवदत्ता के साथ प्रवेश करती है ।)

वासवदत्ता—सखि ! यह तुम्हारी गेंद है ।

पद्मावती—आर्ये ! इस समय इतना ही हो (अब बस करो) ।

वासवदत्ता--हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता । [हला अतिचिर कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।]

चेटी--कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ । णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो । [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः कालः ।]

वासवदत्ता--हला ! = सखि !, अतिचिरं = बहुसमयं यावत्, कन्दुकेन= गेन्दुकेन; क्रीडित्वा = क्रीडनं विधाय, अधिकसञ्जातरागौ—सञ्जातो रागो ययोस्तौ सञ्जातरागौ, अधिकं यथा स्यात्तथा सञ्जातरागौ इति अधिकसञ्जातरागौ बहुलोद्भूतलौहित्याविति भावः, ते = तव, पद्मावत्या इति भावः, परकीयौ=अन्यदीयौ, इव = यथा, संवृत्तौ = सञ्जातौ । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः सम्भावनायाम् । तद्यथा साहित्यदर्पणे--"भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना" । अरुणिमातिशयशालिनौ ते पद्मावत्याः करौ इदानीं स्वकीयौ न स्तः, अपितु परकीयौ परस्य धवस्य हस्तं गतावन्यदीयौ इव स्तः इति भावः ।

चेटी—क्रीडतु क्रीडतु =भूयो भूयः खेलत्विति भावः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, भर्तृदारिका = राजकुमारी पद्मावती । निर्वर्त्यतां = समाप्यतां, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अयम् =एषः, कन्याभावरमणीयः—कन्यायाः भावः, तेन रमणीयः, किशोरीभावमनोज्ञः इति भावः, कालः = समयः । विवाहसम्बन्धानन्तरं क्रीडावसरस्याऽनुलप्स्यमानत्वान्नाधुना बाल्यकालोचितं खेलनवशेषणीयं भवत्यापद्मावत्येति भावः ।

वासवदत्ता--सखि ! बहुत देर से गेंद खेलने के कारण ज्यादा लाल वर्ण वाले तुम्हारे हाथ दूसरों के (पर पुरुष के) समान हो रहे हैं ।

दासी--राजकुमारी और खेलें और खेलें । कुमारी भाव से मनोहर इस काल को बितायें ।

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

वासवदत्ता—णहि णहि ! हला ! अधिअं अज्ज सोहदि । अभिदो विअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णिआ भविस्सम्महासेणबहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पद्मावती—आर्ये ! = पूज्ये ! आवन्तिके ! इति भावः, किं = कथम्, इदानीम् = अधुना, मां = पद्मावतीं, कन्दुकक्रीडारतामिति भावः, अपहसितुम् = उपहसितुम्, इव = यथा, निध्यायसि = अवलोकयसि ? "आलोकनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्"—इत्यमरः । मामित्थं साकूतं ते अवलोकनमुपहासार्थमिति तर्कयामि इति भावः ।

वासवदत्ता—नहि नहि = न, न, उपहासं कर्तुं न पश्यामीति भावः । अद्य = इदानीम्, अधिकं = प्रभूतं, शोभते = विराजते । अभित इव = सर्वत इव, ते = तव, पद्मावत्याः, वरमुखं—वरं श्रेष्ठं च तन्मुखं तत्, मनोज्ञवदनमिति भावः, पश्यामि = अवलोकयामि ।

पद्मावती—अपेहि = दूरं व्रज । इदानीं = सम्प्रति, मां = पद्मावतीं, मा = नहि, अपहस = उपहस, उपहासं मे मा कुरु इति भावः ।

वासवदत्ता—भविष्यन्महासेनवधु ! = अयि भाविमहासेनचण्डप्रद्योतस्नुषे ! "समाः स्नुषाजनीवध्वः"—इत्यमरः, एषा = इयमहं वासवदत्तेति भावः, तूष्णीका—तूष्णी मौनं शीलं यस्याः सा मौनमवलम्बितेति भावः, "तूष्णीशीलस्तु तूष्णीकः"—इत्यमरः, अस्मि = भवामि ।

पद्मावती—मान्ये ! (आवन्तिके !) क्यों इस समय आप मानों मेरी खिल्ली उड़ाने के लिए मुझे घूर रही हैं ।

वासवदत्ता—सखि ! नहीं नहीं (ऐसी बात नहीं है अपितु तुम्हारा मुख) आज बहुत शोभित हो रहा है । आज मैं सब तरह से तुम्हारा सुन्दर मुख देख रही हूँ ।

पद्मावती—हटिए, इस समय मेरी मजाक मत उड़ायें ।

वासवदत्ता—महासेन की होने वाली बहू ! यह मैं चुप हो गई ।

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम। तस्स परिमाण-णिव्वुत्तं णामहेअं महासेणोत्ति। [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य परिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति।]

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रण्णा सह सम्बन्धं णेच्छदि। [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।]

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

पद्मावती—एषः = अयं, त्वया भणित इति भावः, कः=कोऽस्ति, महासेनो नाम=महासेन इत्यभिधेयः ?

वासवदत्ता—उज्जयिनीयः=उज्जयिनीवास्तव्यः, राजा=अधिपः, प्रद्योतो नाम = प्रद्योत इति नामधेयः, अस्ति=वर्तते, तस्य = प्रद्योतस्य, परिमाणनिर्वृत्तं—परिमाणेन, निर्वृत्तं=परिमितिनिष्पन्नं, सैन्यस्येति शेषः, नामधेयं = अभिधानं, "अथाह्वयः आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च"—इत्यमरः, महासेन, इति = इत्थम्।

चेटी—भर्तृदारिका = राजकुमारी, पद्मावतीति यावत्, तेन=त्वदुक्तेन, राज्ञा = अधिपेन, महासेनचण्डप्रद्योतेनेति भावः, सह=समं, सम्बन्धं = स्वीकरणरूपं संयोगं, न=नहि, इच्छति=वाञ्छति।

वासवदत्ता—अथ प्रश्नेऽव्ययं, केन = अधिपेन, सहेति शेषः, खलु=निश्चयेन, इदानीं = सम्प्रति, सम्बन्धमिति शेषः, अभिलषति = कामयते ?

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत नामक हैं। उनकी सेना के परिणाम से ही "महासेन" यह नाम पड़ा है।

दासी—राजकुमारी उस राजा के साथ सम्बन्ध नहीं चाहती हैं।

वासवदत्ता—तब इस समय ये किस राजा से सम्बन्ध करना चाहती हैं ?

चेटी--अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि। [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिका-भिलषति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन ?]

चेटी -साणुक्कोसो त्ति। [सानुक्रोश इति।]

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि। अअं वि जण एव्वं उम्मादिदो। [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।]

चेटी—वत्सराजः - वत्सदेशानां राजा, वत्साधिप इति भावः, उदयनो नाम=एतदभिधेयः, अस्ति=वर्तते। तस्य=उदयनस्य, गुणान्=दयादाक्षिण्य-शौर्यादिगुणान्, "मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशौर्यसन्ध्यादिके गुणः"—इत्यमरः, भर्तृदारिका=राजकुमारी पद्मावतीति यावत्, अभिलषति=कामयते।

वासवदत्ता—(आत्मगतं=स्वगतम्) आर्यपुत्रं=मम प्रियतमं, भर्तारं=धवम्, अभिलषति=वाञ्छति। (प्रकाशं=सर्वश्राव्यम्) केन कारणेन ?=केन हेतुना, उदयनं कामयते इति भावः।

चेटी—सानुक्रोश इति=दयालुः इति कारणेन।

वासवदत्ता—जानामि जानामि=अवगच्छामि अवगच्छामि। अयमपि=एषः अपि, जनः=लोकः, अहमिति भावः, "लोकस्तु भुवने जने"—इत्यमरः, एवम्=इत्थम्, उदयनस्य दयादाक्षिण्यादिकारणेनैवेति भावः, उन्मादितः=उन्मादं प्रापितः।

दासी--वत्सदेश के राजा उदयन नाम के हैं। राजकुमारी उनके गुणों को चाहती हैं।

वासवदत्ता--(मन में) मेरे आर्यपुत्र (पति उदयन) को यह पति के रूप में चाहती है। (प्रकट) किस कारण से ?

दासी--वे दयालु हैं इसलिए (उन्हें चाहती हैं)।

वासवदत्ता--(मन में) जानती हूँ, जानती हूँ। यह जन (मैं) भी इसी कारण से उन्मत्त (दीवानी) बनायी गई थी।

चेटी--भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

वासवदत्ता--णहि णहि । दसणीओ एव्व । [नहि नहि । दर्शनीय एव ।]

पद्मावती--अय्ये ! कहं तुवं जाणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्) हला ! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि । [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।]

चेटी--भर्तृदारिके ! = राजकुमारि ! यदि = चेत्, सः = पूर्वोक्तः, राजा= अधिपो वत्सराज उदयन इति भावः, विरूपः = विगतं रूपं सौन्दर्यं यस्मात् स तथोक्तः, कुरूप इति भावः, भवेत् = स्यात् ?

वासवदत्ता—नहि नहि = न न, स उदयनः कुरूपो नास्तीति भावः । दर्शनीयः = दर्शनयोग्यः, मनोज्ञ इति भावः, एव, अस्तीति शेषः ।

पद्मावती--आर्ये ! = पूज्ये ! त्वं=भवती, कथं = केन प्रकारेण, जानासि= अवगच्छसि ? त्वया कुत्र दृष्टः स राजा इति भावः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतम्) आर्यपुत्रपक्षपातेन = आर्यपुत्रे पक्ष-पातस्तेन स्वभर्तुरासक्त्या, अतिक्रान्तः = विलङ्घितः, समुदाचारः = प्रोषितभर्तृ-काव्यवहारः । किम्, इदानीं = सम्प्रति, करिष्यामि = कथयिष्यामि, कथयामि इति भावः, भवतु = अस्तु, दृष्टं=ज्ञातम्, आकारगुप्तिसाधनमिति शेषः । [प्रकाशं= सर्वश्राव्यं ।] हला ! = सखि ! उज्जयिनीयः = उज्जयिनीसम्बन्धी, जनः = लोकः, एवम् = इत्थम्, मन्त्रयते=संस्तौति ।

दासी—राजकुमारि ! यदि वे राजा कुरूप हों तो ?

वासवदत्ता—नहीं नहीं, दर्शनीय ही हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! आप कैसे जानती हैं ?

वासवदत्ता--(मन में) आर्यपुत्र (पति उदयन) के पक्षपात से मैंने अपने आचार (प्रोषितभर्तृका स्त्री के नियम) को लाँघ दिया । तो इस समय क्या करूँ ? अच्छा, उपाय सूझ गया । (प्रकट) सखि ! उज्जयिनी के लोग ऐसा ही कहते हैं ।

पद्मावती--जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणोभिरामं खु सोभग्गं णाम । [युज्यते । न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः । सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।]

(ततः प्रविशति धात्री ।)

धात्री--जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! दिण्णासि । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! दत्तासि ।]

वासवदत्ता--अय्ये ! कस्स ? [आर्ये ! कस्मै ?]

पद्मावती—युज्यते = सम्भाव्यते । खलु=निश्चयेन, एषः = वत्सराजोदयनः, उज्जयिनीदुर्लभः—उज्जयिन्यां दुर्लभः विशालादुष्प्राप्यः, "विशालोज्जयिनी समे"--इत्यमरः, न=नहि, अस्तीति शेषः, वासवदत्तां वीणां शिक्षयितुमुज्जयिनीं गत आसीदुदयन इति सर्वे जानन्ति । अतः स निश्चितमेव उज्जयिनीवास्तव्यानां दृष्टिपथे आगतो भवेदिति भावः । सर्वजनमनोभिरामं =सर्वे च ते जनाः सर्वजनाः, तेषां मनः, सर्वजनमनसः अभिरामं, सकललोकचित्तापहारकमिति भावः, खलु = निश्चयेन, सौभाग्यं=शोभनं, भगं=श्रीः सौन्दर्यं वा यस्य सः सुभगस्तस्य भावः सौभाग्यं "भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नाऽर्ककीर्तिषु"--इत्यमरः, सौन्दर्यमिति भावः, नामेति वाक्यालङ्कारे, अस्तीति शेषः । (ततः = तदनन्तरं, धात्री = उपमाता, "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु"--इत्यमरः, पद्मावत्या इति शेषः, प्रविशति=प्रवेशं करोति ।)

धात्री —भर्तृदारिका = राजकुमारी, जयतु=विजयतु । भर्तृदारिके ! = राजकुमारि !, दत्तासि = वितीर्णासि त्वमिति शेषः ।

वासवदत्ता—आर्ये ! = पूज्ये !, कस्मै =किमभिधानायाधिपाय, इयम्पद्मावती प्रदत्तेति शेषः ।

पद्मावती—हो सकता है । ये (उदयन) उज्जयिनी के लिए दुर्लभ नहीं हैं । सौन्दर्य सभी के मन का आकर्षक होता ही है ।

(तब धाय प्रवेश करती है)

धाय—राजकुमारी की जय हो । राजकुमारि ! तू दे दी गयी है ।

वासवदत्ता—आर्ये ! किसे (दे दी गई) ।

धात्री – वच्छराअस्स उदअणस्स । [**वत्सराजायोदयनाय ।**]

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ? [**अथ कुशली स राजा ?**]

धात्री—कुसली सो आअदो । तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ । [**कुशली स आगतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।**]

वासवदत्ता—अच्चाहिदं । [**अत्याहितम् ।**]

धात्री – किं एत्थ अच्चाहिदं ? [**किमत्रात्याहितम् ?**]

वासवदत्ता–ण हु किञ्चि । तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि त्ति ।

धात्री—वत्सराजोदयनाय—वत्सदेशानां राजा वत्सराजः, स चासौ उदयनश्च तस्मै वत्साधिपोदयनायेति भावः ।

वासवदत्ता—अथेति प्रश्नेऽव्ययम् । सः=पूर्वोक्तः, राजा=अधिपः, वत्सराजोदयन इति भावः, कुशली=कुशलमस्यास्तीति कुशली कुशलसम्पन्न इति भावः, अस्तीति शेषः ?

धात्री—कुशली = कुशलसंयुक्तः, सः = वत्सराजोदयनः, आगतः = आसादितः, अत्रेति शेषः । तस्य=उदयनस्य, भर्तृदारिका = राजकुमारी, प्रतीष्टा = अङ्गीकृता, च = तथा । तेन वाण्या राजकुमारी पद्मावती अभीष्टा इति भावः ।

वासवदत्ता—अत्याहितम् = महाभीतिरस्तीतिभावः ।

धात्री—किम्, अत्र=अस्मिन् विषये, उदयनकर्तृकपद्मावत्यङ्गीकारे इति भावः, अत्याहितं = महाभीतिः ?

वासवदत्ता—खलु इति वाक्यालङ्कारे, न=नहि, किञ्चित् = किमपि अत्याहितमिति शेषः । तथा नाम = तेन प्रकारेण, ब्रह्मचारिवर्णितप्रथमाङ्कोक्त-

---

धाय—वत्सराज उदयन को (दे दी गई) ।

वासवदत्ता—अब वे राजा कुशली (सकुशल) हैं ।

धाय—वे सकुशल ही आये हैं । उन्होंने राजकुमारी को स्वीकार भी कर लिया है ।

वासवदत्ता – बड़ा भय है ।

धाय – इसमें क्या भय है ?

वासवदत्ता–कुछ भी नहीं । उस तरह से (ब्रह्मचारी के कथन के अनु-

[न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।]

धात्री-अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति । [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

वासवदत्ता-अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ? [आर्ये स्वयमेव तेन वरिता ?]

धात्री-णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणवओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा । [नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।]

प्रकारेणेति भावः, सन्तप्य = सन्तापं कृत्वा, उदासीनः = तटस्थः, वासवदत्ताम्प्रतीति भावः, भवति = वर्तते, इति = इत्थम् ।

धात्री—आर्ये ! = मान्ये ! आवन्तिके ! इति भावः, महापुरुषहृदयानि-महान्तश्च ते पुरुषाः, तेषां हृदयानि, श्रेष्ठजनचेतांसीति भावः, आगमप्रधानानि—आगमः प्रधानं येषान्तानि शास्त्रोपदेशप्रमुखानि इति भावः, अत एव सुलभपर्यवस्थानानि = सुलभं पर्यवस्थानं येषान्तानि सुप्राप्यसहजप्रकृतीनि इति यावत्, भवन्ति = वर्तन्ते ।

वासवदत्ता—आर्ये ! = मान्ये !, स्वयमेव = आत्मनैव, तेन = वत्सराजोदयनेन, वरिता = अङ्गीकृता, पद्मावतीति शेषः ।

धात्री —नहि नहि = मा मा । तेनोदयनेन स्वयमेव पद्मावती न स्वीकृताऽपितु अन्यप्रयोजनेन—अन्यच्च तत् प्रयोजनन्तेन = इतरहेतुना, इह = अत्र, मगधराजधानीभूतं राजगृहनामकं पुरम् इति भावः, आगतस्य = उपेतस्य, वत्सराजो-

---

सार) सन्ताप करके (फिर) उदासीन हो रहे हैं ।

धाय-आर्ये ! शास्त्रवचन को ही मुख्य रूप से मानने वाले महापुरुषों के हृदय सुलभ ढंग से ही प्रकृतिस्थ हो जाते हैं ।

वासवदत्ता-मान्ये ! क्या उन्होंने खुद ही पद्मावती का वरण किया ?

धाय —नहीं नहीं । (ऐसा नहीं है अपितु) दूसरे कारण से यहाँ आये हुए उनके वंश, कला-निपुणता, अवस्था तथा रूप को देखकर स्वयं महाराज ने उन्हें (पद्मावती को) दिया ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्वं ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ।
[एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कदाव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि । **[त्वरता त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभननक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।]**

दयनस्येति शेषः, अभिजनविज्ञानवयोरूपम्—अभिजनश्च विज्ञानञ्च वयश्च रूपञ्च तत्, कुलकलादिविशिष्टज्ञानावस्थासौन्दर्यं, दृष्ट्वा=वीक्ष्य, महाराजेन=श्रेष्ठाधिपेन, मगधराजदर्शकेनेति भावः, स्वयमेव=आत्मनैव, दत्ता=प्रदत्ता, पद्मावतीति शेषः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं=स्वगतं) एवम् ! = इत्थम् ! इदानीं=सम्प्रति, अत्र=अस्मिन् विषये पद्मावतीवरणविषये इति भावः, आर्यपुत्रः=भर्ता उदयनः, अनपराद्धः—न अपराद्धः=अनपराधी, निर्दोष इति भावः, मन्मरणात् स्वल्पकाल एव अन्यस्त्रीवरणेऽपि निर्दोषोऽस्ति आर्यपुत्रोदयन इति यावत् ।

(अपरा=अन्या चेटी, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय)

चेटी—त्वरतां त्वरतां=शीघ्रं कुर्यात्, अत्र सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, आर्या=मान्या । अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने, कौतुकमङ्गलं = वैवाहिकमङ्गलसूत्रम्, उत्सवमाङ्गलिकं कर्मेति भावः, कर्तव्यं=करणीयम् अस्तीति शेषः, इति=इत्थम्, अस्माकं भट्टिनी=नः महाराज्ञी, दर्शकभार्येति भावः, भणति=आदिशति ।

वासवदत्ता—(मन में) ऐसा ? तो इस विषय में इस समय आर्यपुत्र (मेरे पति) अपराधी नहीं हैं ।

(दूसरी दासी प्रवेश कर)

दासी–आर्या जल्दी करें, आर्या जल्दी करें। आज ही सुन्दर नक्षत्र (मुहूर्त्त) है । आज ही कौतुक-मङ्गल (विवाह का शुभ कार्य) करना है ऐसा महारानी आज्ञा देती हैं (कहती हैं) ।

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं। [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

वासवदत्ता—यथा यथा = येन येन प्रकारेण, त्वरते = त्वरां करोति, तथा तथा=तेन तेन प्रकारेण, मे = मम वासवदत्तायाः, हृदयं=हृत्, अन्धीकरोति—अनन्धम् अन्धं यथा सम्पद्यते तथा करोति=अन्धं करोतीति भावः ।

धात्री—एत्वेतु = आगच्छतु, आगच्छतु, भर्तृदारिका = राजकुमारी ।

(सर्वे = सकलाः, निष्क्रान्ताः = रङ्गमञ्चाद् बहिर्गताः)

।। इति द्वितीयोऽङ्कः ।।

वासवदत्ता-(मन में) यह जैसे-जैसे जल्दबाजी कर रही है, वैसे वैसे मेरे हृदय को अन्धा सा बना रही है ।

धाय-राजकुमारी चलें, चलें (पधारें, पधारें) ।

(सब निकलते हैं)

(दूसरा अङ्क समाप्त हुआ)

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं। जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि (**परिक्रम्य**) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । जाव उवविसामि। (**उपविश्य**) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ। ण खु अहं पाणाणि पदित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ। [**विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले**

(ततः तदनन्तरं, विचिन्तयन्ती = चिन्तयन्ती, वासवदत्ता = आवन्तिका, प्रविशति = प्रवेशं करोति)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले········जीवामि मन्दभागा ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तृतीयाङ्कात् समुद्धृतोऽयमस्ति गद्यांशः । अनेन गद्यांशेन वासवदत्ता पद्मावत्याः स्वधवेनोदयनेन सह परिणयसम्बन्धं सूचयन्ती स्वकीयां मनोदशामुपस्थापयति ।

लालमती व्याख्या—विवाहामोदसङ्कुले—विवाहस्य = पद्मावत्युदयनयोः परिणयस्य, आमोदः = आनन्दो येषां तादृशैः बान्धवजनैरिति भावः, "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रामोदामोदसम्मदाः"—इत्यमरः, सङ्कुले = परिपूर्णे, अथवा विवाहस्य = परिणयस्य, आमोदः = हर्षस्तेन सङ्कुलं = परिपूर्णं तस्मिन्, अन्तःपुरचतुःशाले—चतसृणां शालानां समाहारश्चतुःशालमन्तःपुरस्य चतुःशालन्तस्मिन् शुद्धान्तसञ्जवने "स्त्र्यगारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनं शुद्धान्तश्चावरोधश्च"—इत्यमरः, 'सञ्जवनं त्विदञ्चतुःशालम्'' = इत्यमरः, पद्मावतीम् = एतन्नामिकां राजकुमारीं, परित्यज्य = विहाय, इह = अत्र, प्रमदवनं = प्रमदानां वनं यद्वा प्रमदोत्पादकं वनम्, अवरोधोचितमुपवनमिति भावः, "स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तः-

---

(तब चिन्ता करती हुई वासवदत्ता प्रवेश करती है)

वासवदत्ता—विवाह की खुशी से भरी-पूरी अन्तःपुर की चौशाला में पद्मावती को छोड़कर यहाँ प्रमदवन (अन्तःपुर की उपवन) में आई हूँ। इस समय अपने दुर्भाग्य से उत्पन्न दुःख को बहलाती (हटाती) हूँ। (घूम-

परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावत् उपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।]

पुरोचितम्"–इत्यमरः, आगता=आसादिता, अस्मि=वर्ते। यावद् इति वाक्यालङ्कारे, इदानीं=सम्प्रति, भागधेयनिर्वृत्तं–भागधेयेन=भाग्येन, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"–इत्यमरः, निर्वृत्तं=निष्पन्नं, तत्, दुःखं=स्ववल्लभविरहजनितं कष्टं, विनोदयामि=अपनयामि। (परिक्रम्य=इतस्ततः विचरणं कृत्वा) अहो!=हन्त!, खेदेऽव्ययपदम्। अत्याहितं=महाभयमुत्पन्नमिति शेषः। आर्यपुत्रोऽपि=मम प्रियस्वामी अपि, नामेति वाक्यालङ्कारे, परकीयः=अन्यदीयः, पद्मावतीसम्बन्धीति भावः, संवृत्तः=सञ्जातः। यावदिति वाक्यालङ्कारे, उपविशामि=तिष्ठामि। (उपविश्य=उपवेशनं कृत्वा) खलु=निश्चयेन, चक्रवाकवधूः–चक्रवाकस्य=कोकपक्षिविशेषस्य, वधूः=जनी "कोकश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः"=इत्यमरः, "समाः स्नुषाजनीवध्वः"=इत्यमरः, धन्या=पुण्यवती, या=रथाङ्गस्नुषा, अन्योन्यविरहिता=परस्परविप्रयुक्ता, न=नहि, जीवति=जीवितं धारयति। खलु=निश्चयेन, अहं=वासवदत्ता, प्राणान्=असून्, न=नहि, परित्यजामि=परिहरामि। एकाकिनी चक्रवाकी जीवतुं नोत्सहमाना नूनमेव प्रशंसनीया, अहन्तु वल्लभवियुक्ताऽपि जीवन्ती निन्दनीयास्मीति भावः। अत्र कारणम्प्रस्तौति—आर्यपुत्रं=स्वधवमुदयनमिति भावः, पश्यामि=विलोकयामि, यद्वा विलोकयिष्यामि, इति=इत्थं, एतेन=अनेन, मनोरथेन=अभिलाषेन, मन्दभागा=मन्दभागिनी, अहं वासवदत्तेति भावः, जीवामि=जीवनं धारयामि।

कर) अहो! बहुत भय है। आर्यपुत्र (पतिदेव) भी दूसरी स्त्री के हो गये। अच्छा बैठती हूँ। (बैठकर) चकवी ही धन्य है जो परस्पर बिछुड़ कर नहीं जीती है। मैं प्राणों को नहीं छोड़ रही हूँ। आर्यपुत्र को देखती हूँ (देखूँगी) इसी अभिलाषा से मैं अभागिनी जीवित हूँ।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी ।)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इयं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेस धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये ! आवन्तिए ! को कालो, तुमं अण्णेसामि । [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ? अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गु-

---

(ततः = तदनन्तरं, पुष्पाणि = प्रसूनानि, गृहीत्वा = आदाय, चेटी = दासी, प्रविशति = प्रवेशं करोति)

चेटी—क्व नु खलु·········त्वामन्विष्यामि ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तृतीयाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशः । अनेन गद्यांशेन कविः वासवदत्तामन्विष्यन्त्याश्चेट्याश्चित्रमुपस्थापयति ।

लालमती व्याख्या—क्व नु = क्वचिन्नु, खलु इति वाक्यालङ्कारे, आर्यावन्तिका = आर्या चासावन्तिका पूज्या वासवदत्तेति भावः, गता = गतवती । (परिक्रम्य = परिभ्रमणं कृत्वा, अवलोक्य = वीक्ष्य च = तथा) अम्मो ! = अरे !, इयम् = एषा, चिन्ताशून्यहृदया—चिन्तया शून्यं हृदयं यस्याः सा तथोक्ता आध्याननिर्बोधमनस्केति भावः, नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा—नीहारेण प्रतिहता नीहारप्रतिहता, सा चाऽसौ चन्द्रस्य लेखा = तुहिनावृतेन्दुरेखा "तुषारस्तुहिनं हिमम्" = इत्यमरः, इव = यथा, अमण्डितभद्रकं = भद्र इव भद्रकः, अमण्डितश्चासौ भद्रकस्तम् अनलङ्कृतमनोज्ञमिति भावः, वेषं=नेपथ्यं, धारयन्ती = बिभ्रती, प्रियङ्गुशिलापट्टके—प्रियङ्गोः शिलापट्टकं, तस्मिन् फलिनीप्रस्तरखण्डे, "प्रियङ्गुः फलिनी फली"—इत्यमरः, "पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्"—

(तब फूलों को लेकर दासी प्रवेश करता है)

दासी—मान्या आवन्तिका कहाँ चली गयीं ? (घूमकर तथा देखकर) अरे ! ये चिन्ता से शून्य हृदय वाली कुहरे से घिरी हुई चन्द्रकला के समान अलङ्कृत न होने पर भी सुन्दर वेश को धारण करती हुई प्रियङ्गुलता के नीचे शिलापट्ट पर बैठी हैं । तो, मैं इनके पास चलती हूँ । (पास जाकर) आर्ये !

शिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । आर्ये ! आवन्तिके ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

वासवदत्ता-किं णिमित्तं ? [किं निमित्तम् ?]

चेटी-अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा दाव कोदुअमालिअं गुह्यादु अय्या । [अस्माकं भट्टिनी भणति-महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या ।]

इत्यमरश्च, उपविष्टा = स्थिता, वर्तत इति शेषः । यावदिति वाक्यालङ्कारे, उपसर्पामि = समीपं गच्छामि । आर्ये ! = मान्ये !, आवन्तिके !=एतन्नामिके !, वासवदत्ते ! इति भावः, कः कालः = कियान् समयः, हापित इति शेषः, त्वां= भवतीमावन्तिकामिति यावत्, अन्विषामि = अन्वेषणं करोमि । बहोः कालादन्विष्यन्त्यधुना त्वामत्र प्राप्तवत्यस्मीति भावः ।

वासवदत्ता - किं, निमित्तं = कारणमस्तीति शेषः । ममान्वेषणस्य किम्प्रयोजनमस्तीति यावत् ।

चेटी — अस्माकं=मगधवास्तव्यानामिति भावः, भट्टिनी=महाराज्ञी "भट्टिनी द्विजभार्यायां, नाट्योक्त्या राजयोषिति" इति विश्वः, भणति=आदिशति, महाकुलप्रसूता—महच्च तत् कुलं, तस्मिन् प्रसूता श्रेष्ठवंशसमुद्भूतेति भावः, स्निग्धा= स्नेहसंयुक्ता, निपुणा = तत्कार्यदक्षा, इति=इत्थम्, आर्या=पूज्या, आवन्तिका वासवदत्तेति भावः, इमाम् = एतां, तावदिति वाक्यालङ्कारे, कौतुकमालिकां— कौतुकस्य = माङ्गलिककार्यस्य, मालिकां = सौभाग्यसूचिकां, मङ्गलस्रजमिति भावः, गुम्फतु = ग्रथ्नातु ।

आवन्तिके !! कितना समय बीत गया मैं आपको ढूँढ रही हूँ (आप को ढूँढने में बहुत समय बीत गया) ।

वासवदत्ता —किसलिए ?

दासी--हमारी महारानी कहती हैं--आप महाकुल में उत्पन्न, स्नेह करने वाली और (इस कार्य में) निपुण हैं इसलिए आप इस विवाह की मंगल-माला को गूँथें।

वासवदत्ता–अह कस्स किल गुह्फिदव्वं ? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?]

चेटी–अम्हअं भट्टिदारिआए [अस्माकं भर्तृदारिकायै ।]

वासवदत्ता–(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो अकरुणा खु इस्सरा । [एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः ।]

चेटी–अय्ये ! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ । एसो जामादुओ मणिभूमिए ह्लाअदि । सिग्घं दाव गुह्फदु अय्या । [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति । शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।]

वासवदत्ता—अथेति प्रश्ने, कस्मै=जनाय, किल=निश्चयेन, गुम्फितव्यं=ग्रथनीयम् । कस्य कृते मालिकेयं ग्रथनीया मयेति यावत् ।

चेटी—अस्माकं=मगधवास्तव्यानामिति यावत्, भर्तृदारिकायै=राजकुमार्यै पद्मावत्यै इति भावः "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः । राजकुमार्यै पद्मावत्यै इयं मङ्गलस्रक् त्वया ग्रथनीयेति यावत् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं=मनसि) एतदपि=मालागुम्फनमपि, मया=सपत्न्या वासवदत्तयेति भावः कर्तव्यं=करणीयम्, आसीत्=अस्तीति भावः । अहो !=हन्त !, विषादेऽव्ययपदम् । खलु=निश्चयेन, ईश्वराः=देवाः, भाग्यविधातार इति भावः, अकरुणाः=निष्करुणाः, निर्दया इति भावः, भवन्तीति शेषः ।

चेटी—आर्ये=पूज्ये ! आवन्तिके ! इति भावः, इदानीम्=आसन्ने समुपस्थिते वा विवाहावसरे, अन्यत्, मा=नहि, चिन्तयित्वा=विचारणीयमिति भावः मङ्गलकार्यावसरे समुपस्थिते विचारान्तरमकृत्वैव तदेव निष्पादनीयमिदानीम्भवत्येत्यर्थः । एषः=अयं, समीपतरस्थ इति भावः, जामाता=वरः, मणिभूम्यां=रत्न-

---

वासवदत्ता—किसके लिए गूँथना है ?

दासी—हमारी राजकुमारी (पद्मावती) के लिए ।

वासवदत्ता—(मन में) यह भी मुझे ही करना रहा । अरे ! देवता लोग निर्दय हैं ।

दासी—पूज्ये ! आप इस समय और कुछ न सोचें । ये दामाद रत्न-भूमि में (रत्न-पीठिका पर) स्नान कर रहे हैं । आर्या शीघ्र गूँथें ।

वासवदत्ता-(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्ण चिन्तेदुं । (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी-आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ । [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।]

वासवदत्ता-कीदिसो जमादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी-अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्टपुरुवो । [आर्ये भणामि तावत्, नेदृशो दृष्टपूर्वः ।]

मयगृहे मणिमयवेदिकायां वा, स्नायति=स्नानं करोति, शीघ्रं=सपदि, तावदिति वाक्यालङ्कारे, आर्या=पूज्या आवन्तिकेति भावः, गुम्फतु=ग्रथ्नातु, मङ्गलस्रजमिति शेषः

वासवदत्ता -(आत्मगतं = स्वगतं) अन्यत् = इतरं, चिन्तयितुं = विचारयितुं, न = नहि, शक्नोमि = समर्थाऽस्मि । हला ! चेटीम्प्रति सम्बोधनमिदमव्ययं, "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति"—इत्यमरः, किं, जामाता = वरः, त्वयेति शेषः, दृष्टः=वीक्षितः ?

चेटी —आम् = ओम्, भर्तृदारिकायाः = राजकुमार्याः पद्मावत्याः, स्नेहेन= स्नेहकारणात्, अस्माकं=परिचारिकाणां, कौतूहलेन = कौतुककारणेन, च = तथा, दृष्टः=अवलोकितो, जामातेति शेषः ।

वासवदत्ता —कीदृशो = सुरूपः कुरूपो वेति भावः, जामाता=वरः ?

चेटी –आर्ये ! = मान्ये !, आवन्तिके ! इति भावः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, भणामि = कथयामि, ईदृशो न दृष्टपूर्वः = उदयनसदृशो जामाता अस्माभिः पूर्वं कदापि न वीक्षित इति भावः ।

वासवदत्ता —(मन में) और कुछ नहीं सोच सकती हूँ । (प्रकट) सखि ! तूने दामाद देखा ?

दासी —हाँ, राजकुमारी के स्नेह से और अपनी कौतूहल से (उन्हेंदेखा) ।

वासवदत्ता —दामाद कैसे हैं ?

दासी —मान्ये ! मैं कहती हूँ, ऐसे पुरुष को मैं ने कभी नहीं देखा है ।

वासवदत्ता-हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?]

चेटी-सक्कं भणिदुं सरचावहीणो खामदेवो त्ति । [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता-होदु एत्तअं । [भवत्वेतावत् ।]

चेटी-किण्णिमित्तं वारेसि ? [किंनिमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता-अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तं सोदुम् । [अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्तनं श्रोतुम् ।]

चेटी-तेण हि गुह्मदु अय्या सिग्घं । [तेन हिं गुम्फात्वार्या शीघ्रम् ।]

वासवदत्ता—हला ! = हञ्जे !, भण भण = कथय कथय, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, किं, दर्शनीयः = द्रष्टुं योग्यः ?

चेटी—शरचापहीनः—शराश्च चापश्च शरचापाः, तैः हीनः बाणकार्मुकरहितः, कामदेवः = मन्मथः, इति = इत्थं, भणितुं = कथयितुं, शक्यं=शक्नोमीति भावः ।

वासवदत्ता—एतावत् = एतत्परिमाणं, भवतु = अस्तु ।

चेटी—किं निमित्तं = कस्मात् कारणात्, वारयसि = निषेधसि ?

वासवदत्ता – परपुरुषसङ्कीर्तनं—परश्चासौ पुरुषः, तस्य सङ्कीर्तनं, तत् अन्यजनवर्णनं, श्रोतुम् = आकर्णयितुम्, अयुक्तम् = अनुचितमस्तीति शेषः । अहं प्रोषितभर्तृकाऽस्मि, मत्कृते अन्यपुरुषवर्णनं श्रोतुमनुचितमतएव वारयामीति भावः ।

चेटी—तेन = हेतुना, हि इति वाक्यालङ्कारे, आर्या = मान्या, शीघ्रं = सपदि, गुम्फतु = ग्रथ्नातु, मङ्गलस्रजमिति शेषः ।

वासवदत्ता—सखि ! कहो, कहो ! क्या दर्शनीय हैं ?

दासी—मैं यह कह सकती हूँ कि ये बाण और धनुष से रहित कामदेव हैं ।

वासवदत्ता—बस इतना ही रहने दो ।

दासी—आप मना क्यों कर रही हैं ?

वासवदत्ता—पर पुरुष का वर्णन सुनना उचित नहीं है ।

दासी—इस कारण से मान्या (आवन्तिका) शीघ्र माला गूँथें ।

वासवदत्ता--इअं गुह्यामि । आणहि दाव । [इयं गुम्फामि । आनय तावत् ।]
चेटी- गह्णदु अय्या । [गृह्णात्वार्या ।]

वासवदत्ता--(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुम्फिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च । इदं तावदौषधं किं नाम ?]

वासवदत्ता – इयं = एषाऽहं, गुम्फामि = ग्रथ्नामि । तावदिति वाक्यालङ्कारे, आनय = आनीयतां तदर्थं त्वया पुष्पाद्युपकरणमिति यावत् ।

चेटी—आर्या=मान्याऽऽवन्तिका, गृह्णातु =मालिकार्थं पुष्पाद्युपकरणानि ग्रहणं करोतु इति भावः ।

वासवदत्ता —(वर्जयित्वा = पृथक् कृत्वा, पुष्पातिरिक्तं वस्तु इति शेषः, विलोक्य = निरीक्ष्य) तावदिति वाक्यालङ्कारे, इदं = पुरोदृश्यमानम्, औषधं= भेषजं "भेषजौषधभैषज्यान्यगदो जायुरित्यपि"—इत्यमरः, किं नामः = किं नामधेयमस्तीति शेषः ?

चेटी—अविधवाकरणं—विगतो धवो यस्याः सा विधवा, "धवः प्रियः पतिर्भर्ता"—इत्यमरः, अविधवा क्रियते अनेनेति अविधवाकरणं, 'विश्वस्ताऽविधवे समे"—इत्यमरः, वैधव्याऽनुत्पादकं, सौभाग्यसम्पादकमिति भावः, नाम= नामकम् इदमौषधमस्तीति भावः ।

वासवदत्ता—(मनसि) इदम् = एतदौषधं, बहुशः = अत्यधिकं, गुम्फितव्यं= ग्रथनीय, मह्यं च=वासवदत्तायै च, पद्मावत्यै=एतन्नामिकायै सपत्न्यै च=तथा । (सर्वश्राव्यम्) इदं=एतत्पुरोदृश्यमानं, तावदिति वाक्यालङ्कारे, किं नाम= किमभिधेयम्, औषधं = भेषजमस्तीति शेषः ?

वासवदत्ता--यह मैं गूँथती हूँ । तो, लाओ ।
दासी –आर्या ले लें ।
वासवदत्ता —(कुछ छोड़कर और देखकर) इस जड़ी (औषध) का क्या नाम है ?
दासी—यह सौभाग्य (सुहाग) बढ़ाने वाली जड़ी है ।
वासवदत्ता—(मन में) इसे मेरे लिए तथा पद्मावती के लिए भी बहुशः गूँथनी चाहिए । (प्रकट रूप से) इस औषध का क्या नाम है ?

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम। [सपत्नीमर्दनं नाम।]
वासवदत्ता—इदं ण गुह्मिदव्वं। [इदं न गुम्फितव्यम्।]
चेटी—कीस ? [कस्मात् ?]
वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरतु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते।]

चेटी--सपत्नीमर्दनं--समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी, सपत्नी मर्द्यतेऽनेनेति सपत्नीमर्दनमेकपत्नीसञ्चूर्णनमिति भावः, नाम = अभिधानमौषधमस्तीति शेषः।

वासवदत्ता--इदं = सपत्नीमर्दनं नामौषधं, न = नहि, गुम्फितव्यं = ग्रथनीयम्।

चेटी--कस्मात् = कस्मात्कारणात् ?

वासवदत्ता--तस्य = जामातुरुदयनस्य, भार्या = पत्नी, वासवदत्तेति भावः, उपरता = दिवङ्गता। तत् = तस्मात् कारणात्, इदमौषधमिति शेषः—निष्प्रयोजनं = प्रयोजनेन रहितमस्तीति शेषः, इति = इत्थम्।

(प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, अपरा = अन्या चेटी)

चेटी--आर्या = मान्याऽऽवन्तिका, त्वरतां त्वरतां=शीघ्रतां विधेहि, शीघ्रतां विधेहि। एषः = अयं समीपतरस्थो, जामाता = वरः, अविधवाभिः न विधवास्ताभिः = सौभाग्यवतीभिरिति भावः, अभ्यन्तरचतुःशालं—चतसृणां शालानां समाहारः चतुःशालम्, अभ्यन्तरे चतुःशालन्तत्, मध्यस्थानसञ्जवनमिति भावः, "सञ्जवनं त्विदश्चतुःशालम्"--इत्यमरः, प्रवेश्यते = प्रविष्टः कार्यते।

दासी—सपत्नीमर्दन अर्थात् सौत के मान को मर्दन करने वाली यह जड़ी है।
वासवदत्ता--इसे नहीं गूँथना चाहिए।
दासी--क्यों ?
वासवदत्ता—उनकी पत्नी मर गई है, इसलिए इसे नहीं गूँथना चहिए।

(दूसरी दासी प्रवेश कर)

दासी—मान्या ! (आवन्तिका) जल्दी करें। ये दामाद (उदयन) सुहागिनी स्त्रियों के द्वारा भीतर की चौशाला में प्रविष्ट कराये जा रहे हैं।

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गह्ण एदं । [अयि ! वदामि, गृहाणैतत् ।]

चेटी—सोहणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [शोभनम् । आर्ये! गच्छामि तावदहम् ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

वासवदत्ता—गदा एसा । अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेराओ संवुत्तो । अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि । [गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।]

(निष्क्रान्ता ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

वासवदत्ता—अयि ! = अरे ! वदामि = कथयामि, एतत् = इदं स्वरूपमिति भावः, गृहाण = स्वीकुरु, नयेति भावः ।

चेटी—आर्ये ! = मान्ये ! शोभनं = सुन्दरं वर्तते इदं स्वरूपं वस्तु इति भावः । गच्छामि = उपसर्पामि । तावदिति वाक्यालङ्कारे, अहं = चेटी ।

(उभे = द्वे, चेट्यौ, निष्क्रान्ते = बहिर्गते)

वासवदत्ता—गता = निष्क्रान्ता, एता = इयञ्चेटी । अहो ! = हन्त ! विषादेऽव्ययम् अत्याहितं = महाभीतिरस्ति । आर्यपुत्रोऽपि = मम प्रियोऽपि, नामेति वाक्यालङ्कारे, परकीयः = अन्यदीयः, पद्मावतीसम्बन्धीति भावः, संवृत्तः= सञ्जातः । अविदा ! = विषादसूचकमव्ययम्, शय्यायां = स्रस्तरे, मम = वासवदत्तायाः, दुःखं = कष्टं, विनोदयामि = अपनयामि, यदि = चेत्, निद्रां =शयनं, लभे = प्राप्नोमीति भावः ।

(निष्क्रान्ता = बहिर्गता) ।

वासवदत्ता—अरी ! कह रही हूँ । इसे ले लो ।

दासी—सुन्दर (बढ़िया) है । आर्ये ! अब मैं जाती हूँ ।

(दोनों जाती हैं)

वासवदत्ता—यह (दासी) चली गई । अहो ! बहुत भय हुआ है । पतिदेव भी दूसरी स्त्री (पद्मावती) के हो गये । हाय ! शय्या में लेटकर भी नींद आ जाती तो मैं अपने दुःख को हटाती (बहलाती) ।

(निकल जाती है) ।

तीसरा अङ्क समाप्त हुआ ।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अहिप्पेदविवाह-मङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसण्णिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्णाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि । एक्को खु महन्तो दोसो मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि । जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तादि त्ति पेक्खामि । भो । सुहं णाम अपरिभूदं अकल्लवत्तं

(ततः=तदनन्तरं, विदूषकः=वत्सराजोदयनस्य ब्राह्मणमित्र, प्रविशति=प्रवेशं करोति)

टिप्पणी—विदूषक—प्राचीन नाटकों में परम्परा रही है एक हँसोड़ ब्राह्मण को विदूषक के रूप में अङ्कित करने की । यह विदूषक राजा का मित्र, कार्यकुशल तथा बुद्धिमान् होता है । यह राजा के गुप्त रहस्यों की जानकारी रखता है तथा राजा का मनोरञ्जन भी करता है, जैसे—साहित्यदर्पण में इसका लक्षण किया गया है—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरति विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥

अर्थात् कुसुम, वसन्त इत्यादि नामवाला, वेष और भाषा आदियों से कर्म-शील शरीर वाला, हँसोड़, कलह कराने में प्रेम करने वाला और भोजन आदि कर्म में तत्पर व्यक्ति को विदूषक कहते हैं ।

विदूषकः—(सहर्षं=समोदमानन्दपूर्वकमिति भावः) "भोः ! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्य········परिभूतमकल्यवर्तञ्च ।"

(तब विदूषक प्रवेश करता है) ।

विदूषक—(हर्षपूर्वक) अरे ! भाग्य से पूज्य वत्सराज (उदयन) के अभीप्सित विवाहमंगल से सुन्दर समय को देख लिया । अरे ! कौन व्यक्ति जानता था कि हमलोग वैसे संकट रूप जल की भँवर (वत्सदेश का अपहरण होना तथा वासवदत्ता का जल मरनारूप) में फेंके जाकर भी फिर उबरेंगे । इस समय (हम लोग) राजभवनों में रहते हैं, अन्तःपुर की पोखरियों में नहाते हैं, प्रकृति से ही मीठे और मुलायम लड्डू आदि भव्य पदार्थों को खाते हैं ।

च । [भोः ! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः । भोः ! को नामैतज्जानाति-तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति । इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य चतुर्थाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशः। अनेन गद्यांशेन हासप्रियो विदूषको वत्सराजोदयनस्य परिणयानन्तरं स्वीयानि राजान्तःपुरसुखानि सहर्षमुपस्थापयति ।

लालमती व्याख्या--भोः ! = अरे ! दिष्ट्या = भाग्येन, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"-इत्यमरः, तत्रभवतो=माननीयस्य, वत्सराजस्य=वत्सदेशाधिपस्योदयनस्येति भावः, अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः-अभिप्रेतं च तत् विवाहस्य मङ्गलं, तेन रमणीयः अभीष्टपरिणयशुभमनोज्ञः, "श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्"-इत्यमरः, कालः = समयः, दृष्टः = वीक्षितः । भोः ! = अरे ! को नाम = को जनः, एतत् = इदं, जानाति = वेत्ति, तादृशे = तथाभूते, वत्सदेशापहरणरूपे वासवदत्तादहनरूपे च, वयं = वत्सदेशीयाः, अनर्थसलिलावर्ते = सलिलस्य आवर्तः, "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः"—इत्यमरः, अनर्थं एव सलिलावर्तस्तस्मिन् सङ्कटरूपजलभ्रमे इति भावः, प्रक्षिप्ताः = निपातिताः; पुनः = मुहुः, उन्मङ्क्ष्यामः = उन्मुक्ता भविष्यामः, पद्मावत्युदयनपरिणयेन विस्रब्धा भविष्याम इति यावत्, इति = इत्थम् । इदानीं = सम्प्रति, प्रासादेषु = राजहर्म्येषु "प्रासादो देवभूभुजाम्"-इत्यमरः, उष्यते = वासः क्रियते, अन्तःपुरदीर्घिकासु-अन्तःपुरस्य दीर्घिकास्तासु 'स्त्र्यागारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनं शुद्धान्तश्चावरोधश्च"—इत्यमरः, "वापी तु दीर्घिका"—इत्यमरश्च, अवरोधवापीषु, स्नायते = स्नानं क्रियते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि-प्रकृत्या मधुराणि, प्रकृतिमधुराणि च तानि सुकुमाराणि स्वभावमिष्टमृदूनि, इति भावः, मोदकखाद्यानि- मोदकादीनि खाद्यानि = लड्डूकभक्ष्यवस्तूनि, खाद्यन्ते=भक्ष्यन्ते, इति=

अप्सराओं के सहवास से रहित स्वर्गलोक के निवास को अनुभव कर रहे हैं, (परन्तु) एक बहुत बड़ा दोष यही है कि मेरा आहार (भोजन) ठीक से पचता नहीं । बढ़िया (सुन्दर) आस्तरण से युक्त बिछौने पर भी मुझे नींद

मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

(ततः प्रविशति चेटी)

एवम्प्रकारेण, अनप्सरसंवासः–अप्सरसां=स्वर्वेश्यानां, संवासः=सहवासः, अविद्यमानः अप्सरसंवासो यस्मिन् स तथोक्तः, देवगणिकासहवासविरहित इति भावः, उत्तरकुरुवासः—उत्तराश्च ते कुरवः, तेषु वासो निवासः सुरभूमिनिवास इति भावः, अनुभूयते = अनुभवविषयीक्रियते उपभुज्यत इति यावत्, मया=विदूषकेन एकः = अन्यतमः, खलु = निश्चयेन, महान्, दोषः = अवगुणः, मम = विदूषकस्य, आहारः = भक्ष्यपदार्थः, सुष्ठु = सम्यक्रूपेण, न = नहि, परिणमति = परिपाकमाप्नोति। सुप्रच्छदनायां—शोभनं प्रच्छदनमास्तरणं यस्यां सा, तस्यां शोभनास्तरणाच्छादितायामिति भावः, शय्यायां = तल्पे, निद्रां = स्वापं, "स्यात् निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"—इत्यमरः, न = नहि, लभे = प्राप्नोमि। यथेति सम्भावनायाम्, अभितः = परितः, स्वस्थानमुभयत इति यावत्, वातशोणितम् =एतदभिधेयो रोगः, वर्तत = विद्यते, इव = यथा, सम्भावनायाम्, इति = इत्थम्, पश्यामि = विचारयामि। भोः = अरे !, आमयपरिभूतम्-आमयेन = रुजा, "स्त्री रुग्रुजा चोपतापरोगव्याधिगदामयाः"—इत्यमरः, रोगाक्रान्तम्, अकल्यवर्तं-कल्यवर्तस्य = प्रातर्भोजनस्याभावः अकल्यवर्तं, च = तथा, सुखं = शातं "शर्मशातसुखानि च"—इत्यमरः, न = नहि, अस्तीति शेषः, नामेति वाक्यालङ्कारे।

(ततः = तदनन्तरं, चेटी = दासी, प्रविशति = प्रवेशं करोति)

नहीं आती। (पेट में) चारों ओर वातरक्त नामक बीमारी की तरह सी मालूम पड़ती है। अरे! रोग से आक्रान्त होना और कलेवा न करना सुख ही नहीं है (दुःख है)।

(तब चेटी प्रवेश करती है।)

चेटी— कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्यो ! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य । वसन्तअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किन्निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति । [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

चेटी—कुत्र=क्व, नु=इति वितर्के, खलु=निश्चयेन, आर्यवसन्तकः—आर्यश्चासौ वसन्तकः, मान्यो विदूषकः, गतः=गतवान् ? (परिक्रम्य=भ्रमणं कृत्वा, अवलोक्य = वीक्ष्य) अहो इति आश्चर्ये । एषः = अयं समीपस्थः, आर्यवसन्तकः=पूज्यविदूषकोऽस्तीति शेषः । (उपगम्य=समीपे गत्वा) आर्य != पूज्य !, वसन्तक ! = विदूषक !, कः = कियान्, कालः=समयः, व्यपगत इति शेषः, त्वां = भवन्तम्, अन्विषामि = अन्वेषणं करोमि ।

विदूषकः—(दृष्ट्वा = अवलोक्य) किन्निमित्तं = केन प्रयोजनेन, भद्रे != कल्याणि !, मां = विदूषकम्, अन्विषसि = अन्वेषणं करोषि त्वमिति शेषः ?

चेटी—अस्माकं = मगधवास्तव्यानां, भट्टिनी=महाराज्ञी, "भट्टिनी द्विजभार्यायां नाट्योक्त्या राजयोषिति"—इति विश्वः, भणति=पृच्छति, अपि = किं, प्रश्नेऽव्ययं, जामाता = वरः, उदयन इति भावः, स्नातः=स्नानमकरोत्, इति = इत्थम् ।

दासी—आर्य वसन्तक कहाँ गये हैं ? (घूमकर और देखकर) ओ हो ! ये आर्य वसन्तक हैं । (पास जाकर) आर्य वसन्तक !, कितना समय हुआ (कितने समय से) मैं आपको खोज रही हूँ ।

विदूषक—(देखकर) भद्रे ! मुझे किस लिए ढूँढ रही हो ?

दासी—हमारी स्वामिनी (महारानी) पूछती हैं—क्या दामाद ने स्नान कर लिया ?

विदूषकः—किंणिमित्तं भोदि पुच्छदि । [किन्निमित्तं भवती ? पृच्छति]

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति । [किमन्यत् सुमनोवर्णक-आनयामीति ।]

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं । सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं । [स्नात-स्तत्रभवान् । सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम् ।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किंनिमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो

विदूषकः—भवती = श्रीमती, महाराज्ञीति यावत्, किन्निमित्तं = कस्मात् प्रयोजनात्, पृच्छति = जिज्ञासते ?

चेटी—अन्यत् = इतरं, किं, नान्यं प्रयोजनमिति भावः । सुमनोवर्णकं—सुमनश्च वर्णकं च "स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्"—इत्यमरः, "गात्रऽनुलेपनी वर्तिर्वर्णकं स्याद्विलेपनम्"—इत्यमरः, पुष्पचन्दनादिविलेपनद्रव्यमिति भावः, आनयामि = आहरामि, इति = इत्यस्मात् कारणात् पृच्छतीति शेषः ।

विदूषकः—स्नातः = स्नानमकरोत्, तत्रभवान् = माननीयोदयनः । भवती = श्रीमती, भोजनम् = अशनं, वर्जयित्वा = विहाय, सर्वं = सकलम्, द्रव्यम्, आनयतु = आहरतु ।

चेटी—किन्निमित्तं = केन कारणेन, भोजनं = भोज्यपदार्थं, वारयसि = निवारयसि ?

विदूषकः—अधन्यस्य = भाग्यविरहितस्य, मम = विदूषकस्य, कोकिलानां = पिकानाम्, अक्षिपरिवर्तः—अक्ष्णोः परिवर्तः नयनपरिवर्तनम्, इव = यथा, कुक्षि-

---

विदूषक—किसलिए माननीया पूछ रही हैं ?

दासी—और किसलिए ? फूलों की माला तथा चन्दन आदि विलेपन द्रव्य लाऊँ इसलिए।

विदूषक—महाराज ने स्नान कर लिया । आप भक्ष्यपदार्थों को छोड़कर सब कुछ लाइए ।

दासी—आप भोज्यपदार्थ लाने को क्यों मना करते हैं ?

विदूषक—कोयलों की आँखों के परिवर्तन के समान ही मुझ अभागे का पेट-

संवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो एव्व होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ।)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च।]

परिवर्त्तः—कुक्षेः परिवर्तः, जठरपरिवर्तनमुदररोग इति यावत् "पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्"—इत्यमरः, संवृत्तः = सञ्जातः।

चेटी—ईदृश एव=एतादृश एव, भव कुक्षिपरिवर्त एव ते भवत्विति भावः।

विदूषकः—गच्छतु=व्रजतु, भवती=श्रीमती। यावत्=यथाकालम्, अहमपि=विदूषकोऽपि, तत्रभवतः=माननीयोदयनस्य, सकाशं=पार्श्वं, गच्छामि = व्रजामि।

(निष्क्रान्तौ = बहिर्गतौ)

इति प्रवेशकः

(ततः=तदनन्तरं, सपरिवारा-परिवारैः=परिजनैः सहिता, पद्मावती= उदयननवोढा, आवन्तिकावेषधारिणी=आवन्तिकानेपथ्यविभ्राणा, वासवदत्ता= उदयनमहादेवी, च =तथा, प्रविशति=प्रवेशं करोति)

परिवर्तन (पेट में मरोड़) हो गया है।

दासी--आप ऐसे ही बने रहें।

विदूषक—आप जाइए। अब मैं भी महाराज के पास जाता हूँ।

(दोनों निकलते हैं।)

प्रवेशक समाप्त हुआ।

(तब परिवार के साथ पद्मावती और आवन्तिका के वेष को धारण करने वाली वासवदत्ता प्रवेश करती हैं)।

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ? [किं निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिआलम्बआएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

चेटी—किन्निमित्तं = कस्मात् कारणात्, भर्तृदारिका = राजकुमारी, "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः, प्रमदवनम् = अन्तःपुरोपवनम्, आगता = आगवती ?

पद्मावती—हला ! = हञ्जे ! "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति"—इत्यमरः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, ते = दृष्टपूर्वाः, शेफालिकागुल्मकाः—गुल्मा एव गुल्मकाः, शेफालिकाया गुल्मकाः "शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा"—इत्यमरः, सुवहास्तबका इति यावत्, कुसुमिताः=पुष्पिताः, वा, न = नहि, वा = अथवा, इति = एवं, पश्यामि = अवलोकयामि ।

चेटी—भर्तृदारिके !=राजकुमारि ! पद्मावति ! इति भावः, ते=निर्गुण्डीस्तबकाः, कुसुमिताः = सञ्जातपुष्पाः, नामेति वाक्यालङ्कारे, प्रवालान्तरितैः—प्रवालैः अन्तरितानि, तैः विद्रुमव्यवहितैः, यद्वा पल्लवव्यवहितैः, विद्रुमसंयुक्तैः पल्लवसंयुक्तैर्वा इति भावः, मौक्तिकलम्बकैः—मुक्ता एव मौक्तिकानि तेषां लम्बकानि=ललन्तिकाभिधाः कण्ठभूषणविशेषाः तैः, मुक्ताकण्ठभूषणविशेषैः; "लम्बकं तु ललन्तिका"—इत्यमरः, इव = यथा, कुसुमैः=पुष्पैः, आचिताः = परिव्याप्ताः

दासी—राजकुमारी अन्तःपुर के उपवन में किसलिए आई हैं ?

पद्मावती—सखि ! वे हरसिंगार के गुच्छे खिले हैं या नहीं यह देख रही हूँ ।

दासी—वे (हरसिंगार के गुच्छे) खिल गये हैं, बीच-बीच में मूँगों से गूँथी गयी मोतियों की मालाओं के समान फूलों से परिव्याप्त हैं ।

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणि विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी—तेण हि इमस्सि सिलावट्ठए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि । [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहुर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि ।]

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उवविसामो ? [आर्ये । किमत्रोपविशावः ?]

दृश्यन्ते इति शेषः । मूलेऽरुणानि तदूर्ध्वञ्च धवलान्येतानि पुष्पाणि प्रवालमिश्रमुक्तामणिनिर्मितकण्ठभूषणसदृशाणि लक्ष्यन्त इति भावः ।

पद्मावती—हला !=हञ्जे !, यद्येवं=यदि शेफालिकाः पुष्पिता इति भावः, तर्हि, किं=कथम्, इदानीं=सम्प्रति, विलम्बसे=चिरायसे, कुसुमावचये इति शेषः । शीघ्रमेव कुसुमावचयं विधेहीति भावः ।

चेटी—तेन=तेन हेतुना, कुसुमावचयहेतुनेति भावः, हि इति वाक्यालङ्कारे, भवती=माननीया, राजकुमारीति भावः, अस्मिन्=पुरोदृश्यमाने, शिलापट्टके—शिलायाः पट्टके प्रस्तरफलके इति यावत् "पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्"—इत्यमरः, मुहूर्त्तकं=कञ्चित्क्षणम्, उपविशतु=तिष्ठतु, तावदिति शेषः तावत्कालपर्यन्तं, यावत्=यावत्समयपर्यन्तमहमपि=चेटी अपि, कुसुमावचयं—कुसुमानामवचयं पुष्पावचयनं, करोमि=विदधामि ।

पद्मावती—आर्ये !=श्रेष्ठे ! आवन्तिके ! इति शेषः, किम्, अत्र=अस्मिन् शिलाफलके, उपविशावः=तिष्ठावः ?

पद्मावती—सखि ! यदि ऐसा है तो इस समय (अब) विलम्ब क्यों करती हो ?

दासी—तो राजकुमारी इस पत्थर की चट्टान पर कुछ क्षण तक बैठें, जब तक मैं भी फूलों को चुनती हूँ ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या हम दोनों यहाँ बैठें ?

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे उपविशतः ।)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेः पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिला पट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो । विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या । [अहो । विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या ।]

वासवदत्ता—एवम् = इत्थं, भवतु = अस्तु । अस्मिन् शिलापट्टके आवाभ्या-मुपविश्यतामिति यावत् ।

(उभे = वासवदत्तापद्मवत्यौ उपविशतः = तिष्ठतः)

चेटी—(तथा = पुष्पावचयं, कृत्वा = विधाय) भर्तृदारिका = राजकुमारी, पद्मावतीति भावः, पश्यतु = अवलोकयतु, अर्धमनःशिलापट्टकैः—मनःशिलानां पट्टकाः मनःशिलापट्टकाः, "मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका"— इत्यमरः, अर्द्धे मनःशिलापट्टकारतैः, अर्धनागजिह्विकाफलकैः, इव = यथा, शेफा-लिकाकुसुमैः—शेफालिकायाः कुसुमानि तैः सुवहाप्रसूनैरिति यावत् "शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा"—इत्यमरः, पूरितं = परिपूर्णं, मे = मम चेट्या इति भावः, अञ्जलिं = संयुतहस्तपुटम् ।

पद्मावती—(दृष्ट्वा = विलोक्य) अहो ! आश्चर्येऽव्ययम् । विचित्रता = विविधवर्णता, कुसुमानां = प्रसूनानाम् । एतानि पुष्पाणि शुक्लरक्तवर्णसौन्दर्य-सम्पन्नानि सन्तीति भावः । आर्या = मान्या, पश्यतु पश्यतु = विलोकयतु विलोक-यतु, अत्र सम्भ्रमे द्विरुक्तिः ।

वासवदत्ता—ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठती हैं)

दासी—(फूलों को चुनकर) आधे भाग में मैनसिल के टुकड़ों के समान हरसिंगार के फूलों से भरी हुई मेरी अञ्जलि को राजकुमारी देखें ।

पद्मावती—अहा ! फूलों की विचित्रता है । आर्या ! देखिए देखिए ।

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाण [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्स ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि?]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किंनिमित्तं वारयसि ?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—अहो !=आश्चर्यम् !, दर्शनीयता=सुन्दरता, कुसुमानां=पुष्पाणामस्तीति शेषः । अयि ! अमूनि पुष्पाणि नूनं विचित्रं सौन्दर्यमुपस्थापयन्तीति भावः ।

चेटी—भर्तृदारिके !=राजकुमारि !, किमिति प्रश्ने, भूयः=पुनः, अवचेष्यामि=कुसुमानामवचयं करिष्यामि इति भावः ।

पद्मावती—हला !=सखि !, मा=नहि, मा=नहि, भूयो=मुहुः, अवचित्य=अवचयं कृत्वा । त्वम्पुनोऽवचयं मा कुरु इति भावः ।

वासवदत्ता—हला=सखि ! पद्मावति ! इति भावः, किन्निमित्तं=कस्माद्धेतोः, वारयसि=निवारयसि कुसुमावचयादिति शेषः ।

पद्मावती—आर्यपुत्रः=अत्रार्यपुत्रेणेति युक्तः पाठः, पतिदेवेनोदयनेनेति भावः, इह=अस्मिन् प्रमदवने, आगत्य=आव्रज्य, इमां=पुरोदृश्यमानां, कुसुमसमृद्धि—कुसुमानां समृद्धिस्तां=शेफालिकापुष्पप्रचुरतां, दृष्ट्वा=वीक्ष्य, सम्मा-

---

वासवदत्ता—अहा ! फूलों की दर्शनीयता है ।

दासी—राजकुमारि ! क्या फूलों को पुनः चुनूँ ?

पद्मावती—सखि ! नहीं नहीं, फिर मत चुनो ।

वासवदत्ता—सखि ! क्यों रोकती हो ।

पद्मावती—यहाँ आकर और फूलों की इस समृद्धि को देखकर आर्यपुत्र से मैं सम्मानित होना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला ! प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि ।
[आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खर खु अहं करेमि । इअं वि णाम एवं मन्तेदि । [दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि नामैव मन्त्रयते ।]

निता = समाहृता, भवेयं = भविष्यामीति भावः । सम्भावयेऽहं मम पतिदेव उदयनः अत्रागतः सर्वतः पुष्पितं प्रमदवनमवलोकयन् प्रसन्नो ममादरं कुर्यादिति यावत् ।

वासवदत्ता—हला ! = सखि !, ते = तुभ्यं, भर्ता = धवः, "धवः प्रियः पतिर्भर्ता"—इत्यमरः, प्रियः = स्निग्धः ?

पद्मावती—आर्ये ! = मान्ये !, न = नहि, जानामि = अवधारयामि । परन्त्विति शेषः, आर्यपुत्रेण = पतिदेवेन, विरहिता = विप्रयुक्ता, उत्कण्ठिता = समुत्सुका, भवामि = वर्ते । आर्यपुत्रो मे प्रियोऽस्ति न वेति न जानामि परन्तु तेन विनाऽहं सदैव उत्कण्ठामनुभवामीति नवोढायाः पद्मावत्याः सहजलज्जासंयुक्तमिदमुत्तरम् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतम्) अहं = वासवदत्ता, खलु = निश्चयेन, दुष्करं = दुर्विधेयं कर्मेति शेषः, करोमि = सम्पादयामि । इयमपि = पद्मावत्यपि, नामेति वाक्यालङ्कारे, एव = तथैवेति भावः, मन्त्रयसे = परिभाषते । यथाऽहमार्यपुत्रे स्निह्यामि तथैवेयं पद्मावती नवोढाऽपि स्निह्यति । अतः आवयोर्द्वयोराश्रयभूतस्य पतिदेवस्य उभयाकृष्टचलहृदये नैकत्रविशिष्टं स्थिरं प्रेम स्थातुं शक्यते । तर्हि कतमा प्रिया भविष्यतीति न जानामीति भावः ।

वासवदत्ता—सखि ! क्या आपको पति (उदयन) प्रिय हैं ?

पद्मावती—आर्ये ! यह मैं नहीं जानती हूँ, परन्तु आर्यपुत्र के (पतिदेव के) विना उत्कण्ठित हो जाती हूँ ।

वासवदत्ता—(मन में) मैं दुष्कर काम कर रही हूँ । यह (नव परिणीता वधू) भी ऐसा ही कहती है ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति। [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं-प्रियो मे भर्तेति।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो। [एकः खलु मे सन्देहः।]

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए। [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति।]

चेटी—भर्तृदारिकया = राजकुमार्या, खलु = निश्चयेन, अभिजात = कुलीनताऽनुरूपं, मन्त्रितं = कथितम्—प्रियः = स्निग्धः, मे = मह्यं, पद्मावत्यै इति भावः, भर्त्ता = धवः उदयन इति भावः, इति = इत्थम्। आत्मनः प्रेम पत्यौ यत्प्रकाशितं वचसा राजकुमार्या पद्मावत्या, तत्तु कुलीनतासदृशमेव कृतम्। युज्यत एव कुलीनायाः प्रेम धवे इति भावः।

पद्मावती—एकः = अन्यतमः, खलु = निश्चयेन, मे = मम, नवोढायाः पद्मावत्या इति भावः, सन्देहः = संशयो वर्तत इति शेषः।

वासवदत्ता—किं किम् ? कोऽस्ति सन्देहः इति शीघ्रं कथयेति भावः। अत्रोत्सुकतायां वीप्सा।

पद्मावती—यथा = यादृशः, मम = पद्मावत्याः, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, प्रियोऽस्तीति शेषः, तथैव = तादृश एव, आर्यायाः = पूज्यायाः, वासवदत्तायाः = एतन्नामिकायाः प्रथमायाः भार्याया अपीति = इत्थम्।

दासी—राजकुमारी ने कुलीनता के अनुसार ही कहा है—मुझे पति प्यारे हैं।

पद्मावती—मुझे एक सन्देह है।

वासवदत्ता—क्या ? क्या ?

पद्मावती—जैसे पतिदेव मुझे प्यारे हैं वैसे ही आर्या वासवदत्ता को भी प्रिय होंगे।

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं। [अतोऽप्यधिकम् ।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणामि ? [कथं त्वं जानासि ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो एव्वं दाव भणिस्सं (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं न परित्यजति।]

वासवदत्ता—अतः = इतः त्वदपेक्षयेति भावः, अपि, अधिकतम् = अतिशयम्। यावत्प्रेम ते पत्यौ वर्तते, ततोऽप्यधिकतररूपेण तस्याः वासवदत्तायाः प्रेमासीदिति यावत्।

पद्मावती—कथं = केनप्रकारेण, त्वं = भवती, जानासि = अवधारयसि। वासवदत्ताया मदपेक्षयाऽपि प्रियतरः आसीदार्यपुत्र इति भवती आवन्तिका कथं जानासीति प्रश्नः पद्मावत्या आवन्तिकाम्प्रति।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगत) हं = शङ्काद्योतकमिदमव्ययम्। आर्यपुत्रपक्षपातेन आर्यपुत्रस्य = पतिदेवोदयनस्य, पक्षपातेन = आसक्त्या, धवासक्त्येति यावत्, समुदाचारः=प्रोषितभर्तृकाऽऽचारः अतिक्रान्तः = उलङ्घितः, मयेति शेषः। एवम्=इत्थं तावदिति वाक्यालङ्कारे, भणिष्यामि = कथयिष्यामि। (प्रकाशं = सर्वश्राव्यं) यदि=चेत्, अल्पः =न्यूनः, स्नेहः=प्रेम, अस्ति इति शेषः, सा = वासवदत्ता, उदयनायेति शेषः, स्वजनं = बन्धुवर्गं, मातापित्रादिकमिति भावः, न = नहि, परित्यजति= विजहाति। यदि तस्याः प्रेमोदयने नाभविष्यत्तर्हि सा वासवदत्ता स्वमात्रापित्रादीनाम त्मीयजनानां परित्यागं तस्योदयनस्य कृते कदापि नाकरिष्यदिति भावः।

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—आप कैसे जानती हैं ?

वाससदत्ता—(मन में) ओह ! आर्यपुत्र (पतिदेव उदयन) के पक्षपात ने मैं ने (प्रोषित भर्तृका के) समुदाचार को लाँघ दिया। अच्छा, ऐसा कहती हूँ (प्रकाश में=प्रकट रूप से) अगर उनका पति पर थोड़ा प्रेम होता तो अपने आत्मीय जनों (माता पिता आदि) को नहीं छोड़तीं।

पद्मावती—होदव्वं [भवितव्यम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति । [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो मयार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णिओ संवुत्तो । [अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

पद्मावती—भवितव्यं = सम्भाव्यमिदमिति शेषः ।

चेटी—भर्तृदारिके ! = राजकुमारि !, भर्तारं = धवमुदयनमिति यावत् "धवः प्रियः पतिर्भर्ता"—इत्यमरः, साधु = समीचीनं यथा स्यात्तथा, भण = कथय, अहमपि = पद्मावती अपीति भावः, वीणां = वल्लकीं, वल्लकीवादनमिति भावः, "वीणा तु वल्लकी विपञ्ची"—इत्यमरः, शिक्षिष्ये = ग्रहीष्यामि, भवतेति शेषः, इति इत्थम् । वासवदत्ता यथा भवता वीणावादने शिक्षिता, तथैवाहमपि तदिदं शिक्षणीयास्मीति भवत्या पद्मावत्या सादरं त्वद्भर्ता उदयनः प्रार्थनीय इति भावः ।

पद्मावती—मम = पद्मावत्या, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, उदयन इति भावः, उक्तः = कथितः, प्रार्थितो वीणाशिक्षणार्थमिति भावः ।

वासवदत्ता—ततः = तदनन्तरं, किमिति प्रश्ने, भणितं = कथितं, तेनोदयनेनेति शेषः ।

पद्मावती—अभणित्वा = अकथयित्वा, किञ्चित् = किमपि, दीर्घं = दीर्घं यथा स्यात्तथा, निःश्वस्य = श्वासं गृहीत्वा, तूष्णीकः = तूष्णीशीलः, संवृत्तः =

पद्मावती—हो सकता है ।

दासी—राजकुमारि ! पति से अच्छी तरह से कहिए—मैं भी वीणा (बजाना सीखूँगी ।

पद्मावती—मैं ने आर्यपुत्र से कहा था ।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—कुछ भी न कहकर लम्बी स्वांस लेकर आर्यपुत्र (पतिदेव) चुप हो गए ।

वासवदत्ता – तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती–तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता – (आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

सञ्जातः । आर्यपुत्रोदयनस्तु मदीयं तत्प्रार्थनावचनमाकर्ण्य तदुत्तरं किमप्यनुक्त्वैव दीर्घं निःश्वस्य केवलं मौनमेवावलम्बितवानिति भावः ।

वासवदत्ता—ततः = तस्मात् कारणात्, उदयनमौनाश्रयणादिति भावः । किमिति प्रश्ने, इवेति वाक्यालङ्कारे, तर्कयसि = अनुमानं करोषि, त्वं = पद्मावती । उदयनमौनधारणे त्वं किं कारणं सम्भावयसि इति भावः ।

पद्मावती—तर्कयामि = सम्भावयामि, अहं पद्मावतीति शेषः, आर्यायाः = पूज्यायाः, वासवदत्तायाः = एतन्नामिकायाः प्रद्योतपुत्र्याः, गुणान् = शीलमाधुर्यादिगुणसङ्घान्, स्मृत्वा = विचार्य, दक्षिणतया = उदारतया, मम = नवोढायाः पद्मावत्याः, अग्रतः = समक्षं, न = नहि, रोदति = विलपति, रुदनं करोतीति भावः, इति = इत्थम् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतं) यदि = चेत्, एवम् = इत्थं, सत्यं = तथ्यं, भवेत् = स्यात्, तर्ह्यहं वासवदत्तेति शेषः, धन्या = पुण्यभागा, खलु = निश्चयेन, अस्मि = भवामि । यदि मम गुणगणं स्मृत्वा मे पतिरुदयनो रोदितीति तर्हि अहं सौभाग्यवती वर्ते इति भावः । (ततः = तदनन्तरं, राजा = अधिपः, उदयन इति भावः, प्रविशति = प्रवेशं करोति, विदूषकश्च = वसन्तकश्च, प्रविशतीति शेषः) ।

वासवदत्ता—तो इससे आप क्या सोचती हैं ?

पद्मावती—आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद कर उदारता के कारण (वे) मेरे सामने नहीं रोते हैं ऐसा मैं सोचती हूँ ।

वासवदत्ता—अगर यह सत्य है तो मैं धन्य हूँ ।

(तदनन्तर राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)

विदूषकः—ही ! ही ! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं। इदो दाव भवं। [ही ही ! प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

विदूषकः—ही ही ! इति आनन्दसूचको ध्वनिविशेषः, प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं—प्रचितानि = अपचितानि, पतितानि = भ्रष्टानि च यानि बन्धुजीवस्य = प्रियकस्य "पीतसारके सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः" —इत्यमरः, "दुपहरिया" इत्यस्य भाषायामिति भावः, कुसुमानि = पुष्पाणि, तेषां विरलपातेन = इतस्ततः पातेन हेतुना, रमणीयं = मनोज्ञं, प्रमदवनम् = अन्तःपुरोपवनम्, अस्तीति शेषः । इतः = अनेन मार्गेण, तावदिति वाक्यालङ्कारे, भवान् = राजोदयनः, व्रजत्विति शेषः ।

राजा—वयस्य != मित्र !, वसन्तक ! = विदूषक !!, अयम् = एषः अहम् = उदयनः, आगच्छामि = आगच्छामि ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताववनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य चतुर्थाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् पद्येनानेन पद्मावतीपरिणयमुपस्थापयन्नुदयनः वासवदत्ताविरहव्यथितस्य स्वचित्तस्य चित्रणमुपस्थापयति ।

अन्वयः—तदा उज्जयिनीं गते अवन्तिराजतनयां स्वैरं दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः, अद्य अपि तैः हृदयं सशल्यम् एव । भूयश्च वयं बिद्धाः । मदनः पञ्चेषुः यदा, (तदा) अयं षष्ठः शरः कथं पातितः ?

पदार्थः-तदा = उस समय, उज्जयिनीं गते = उज्जयिनी जाने पर, अवन्तिराजतनयां = अवन्ति की राजकुमारी (वासवदत्ता) को, स्वैरं = स्वेच्छापूर्वक (जी भरकर) दृष्ट्वा = देखकर, कामपि = किसी भी (अवर्णनीय), अवस्थां =

विदूषक—वाह ! वाह ! परिव्याप्त और गिरे हुए दुपहरिया के फूलों से सुन्दर यह अन्तःपुर का उपवन है। इधर से पधारें।

राजा—मित्र ! वसन्तक ! यह मैं आ रहा हूँ।

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥ १ ॥

दशा को, गते = प्राप्त हुए, मयि = मुझपर, कामेन = कामदेव के द्वारा, पञ्च = पाँचों, इषवः = बाण, पातिताः = गिराये गए (मारे गये)। तैः = उन बाणों से, अद्य = आज, अपि = भी, हृदय = (मेरा) हृदय, सशल्यम् = घाव से युक्त, एव = ही (है)। भूयश्च = पुनः, वयं = हम, विद्धाः = वेध डाले गये (घायल कर दिये गये)। यदा = जब, मदनः = कामदेव, पञ्चेषुः = पाँच ही बाणों वाला, (है, तदा = तब) अयं = यह, षष्ठः = छठा, शरः = बाण, कथं = कैसे, पातितः = गिराया (मारा) गया ॥ १ ॥

लालमती व्याख्या-तदा = वीणां शिक्षणार्थं प्रद्योतनृपस्य मन्त्रिणा मम निग्रहकाले, उज्जयिनीं = विशालां, "विशालोज्जयिनी समे"-इत्यमरः, गते = प्रयाते, अवन्तिराजतनयाम्—आवन्तीनां राजा अवन्तिराजः, तस्य तनया ताम्अवन्तिराजकुमारीं वासवदत्तामिति भावः, स्वैरं = यथेच्छं, दृष्ट्वा = वीक्ष्य, कामपि = अवर्णनीयाम्, अवस्थां = दशां, मोहमयीं दशामिति यावत्, गते = आसादिते, मयि = उदयने, कामेन = मदनेन, "मदनो मन्मथो...कामः पञ्चशरः"-इत्यमरः, पञ्च = पञ्चसंख्याकाः, इषवो = बाणाः, पातिताः = निखाताः, युगपदेवेति शेषः। तैः = कामप्रयुक्तैः घातकैः पञ्चभिर्बाणैः, अद्यापि = इदानीमपि, हृदयं = चित्तं "चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसम्मनः"-इत्यमरः, सशल्यं-शल्येन = कीलेन, सहितं = संयुक्तम्, कीलितमिति भावः, अस्तीति शेषः। भूयश्च = मुहुरपि, पद्मावतीपरिणयं सम्पाद्य, वयम् = अहं, विद्धाः = ताडितोऽस्मीति भावः। यदा = यदि, मदनः = मन्मथः, पञ्चेषुः-पञ्च = पञ्चसंख्याकाः, इषवः = बाणाः, यस्य स एतादृशः प्रथितः, तदा = तर्हि इति शेषः, षष्ठः = पञ्चातिरिक्तः,

---

उस समय उज्जयिनी से आने पर और अवन्ति (देश) की राजकुमारी (वासवदत्ता) को इच्छा के अनुसार देखकर अकथनीय अवस्था (मोह की अवस्था) को प्राप्त करने पर मेरे ऊपर कामदेव ने अपने पाँचों ही बाणों का प्रहार किया था। (बहुत समय बीतने पर) आज भी उन

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामण्डवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्टा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुलं दारुपव्वदअं गदा भवे ! (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छति पेक्खदु दाव भव । [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम

षष्ठसंख्याकः, अयं = पद्मावतीसम्बन्धी इति भावः, शरः = बाणः, कथं = कुतः, पातितः = निखातः, मयोति शेषः ॥ १ ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च---पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तद्यथा--"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" । अलङ्कारश्चात्र विभावना । तद् यथा साहित्यदर्पणे--"विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत्" ॥ १ ॥

विदूषकः--कुत्र नु खलु गता......तावद् भवान् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशो वर्तते । अनेन गद्यांशेन पद्मावत्याः अन्वेषणं प्रस्तूय विदूषकः राजानमुदयनं सारसपङ्क्तिं द्रष्टुं प्रेरयति ।

लालमती व्याख्या--तत्रभवती = माननीया, पद्मावती=उदयनभार्या, कुत्र= क्व, नु इति वितर्के, खलु=निश्चयेन, गता=गतवती । लतामण्डपं—लतानां=वल्लीनां मण्डपो=गृहं निकुञ्जमितिभावः ' निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीवे लतादिपिहितोदरे"-इत्यमरः, गता=गतवती, भवेत्=स्यात्, उताहो=आहोस्वित् ''अहो विमुत"-इत्यमरः, असनकुसुमसञ्चितं--असनानां कुसुमानि "सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियजीविकाः"--इत्यमरः,

---

(बाणों) से मेरा चित्त बींधा ही हुआ है । फिर यह (पद्मावती) से विवाह होने पर) मै बिद्ध गया हूँ । यदि कामदेव पाँच ही बाणों वाला है तो यह छठे बाण को उसने कहाँ से फेंका ?

विदूषक--माननीया पद्मावती कहाँ गईं ? लता मण्डप में गई होंगी या बन्धूक (दुपहरिया) के फूलों से आच्छादित बाघ के चमड़े से मढे हुए के

शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही! ही! शरत्काल-

तैः सञ्चितस्तं बन्धूकपुष्पान्वितमिति भावः, व्याघ्रचर्मावगुण्ठितं—व्याघ्रस्य चर्म "अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री"—इत्यमरः, तेन अवगुण्ठितः द्वीपिकृत्याच्छादितमिति भावः, "शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे"—इत्यमरः, इव = यथा, पर्वततिलकं नाम = एतदभिधेयं, शिलापट्टकं-शिलायाः पट्टकस्तं, "पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मनः शिला दृषत्"—इत्यमरः, गता = गतवती, भवेत् = स्यात्, अथवा = यद्वा, अधिक-कटुकगन्धसप्तच्छदवनम्—अधिकः कटुको गन्धो येषान्ते अधिककटुकगन्धाः, सप्त छदा येषान्ते सप्तच्छदा, "सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः"—इत्यमरः, अधिककटुकगन्धाश्च ते सप्तच्छदाः, तेषां वनं, तत् तीक्ष्णकटुसुरभिसंयुक्तसप्तपर्णा-रण्यमिति भावः, प्रविष्टा = प्राप्ता, भवेत् = स्यात्, अथवा = आहोस्वित्, आलि-खितमृगपक्षिसङ्कुलम्-मृगाश्च पक्षिणश्च मृगपक्षिणः, आलिखिताश्च ते मृग-पक्षिणः, तैः सङ्कुलस्तम् अङ्कितपशुखगपरिव्याप्तं, दारुपर्वतकं-दारुपर्वत इव दारु-पर्वतकस्तं काष्ठनिर्मिताद्रिं, गता = याता, भवेत् = स्यात्। एतादृशान् विकल्पा-नुद्भाव्य सुहृन्मनोविनोदाय विषयान्तरमाश्रयन् दत्तोर्ध्वदृष्टिः सन् वदति विदू-षकः—ही ही! = प्रसन्नतासूचको ध्वनिविशेषः, शरत्कालनिर्मले—शरच्चासौ कालः, तेन निर्मलं तस्मिन् शरदृतुविशदे, अन्तरिक्षे = गगने, "नभोऽन्तरिक्षं गगन-मनन्तं सुरवर्त्म खम्"—इत्यमरः, प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां—प्रसारितौ बल-देवस्य बाहू इव दर्शनीया, तां विस्तारितबलभद्रभुजमनोज्ञामिति भावः, समाहितं= सावधानमेकाग्रतापूर्वकमिति भावः, गच्छन्तीं = व्रजन्तीं, उड्डीयमानामिति भावः, सारसपङ्क्तिम्-सारसानां पङ्क्तिस्तां "पुष्कराह्वस्तु सारसः"—इत्यमरः, सारस-खगराजिं, यावत्तावदिति वाक्यालङ्कारे, भवान् = माननीयोदयन इति भावः, पश्यतु = अवलोकयतु।

समान पर्वततिलक नामक पत्थर की चट्टान पर गई होंगी अथवा तीव्र (तेज कड़वी) कटु गन्ध वाले सप्तपर्ण (छितवन) वृक्षों के वन में प्रविष्ट होंगी या चित्राङ्कित पशु और चिड़ियों से परिव्याप्त दारुपर्वत (लकड़ी) से से बनाये गए कृत्रिम पर्वत) पर गई होंगी। (ऊपर देखकर) अहा! शरद्ऋतु

निर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान् !]

राजा – वयस्य ! पश्याम्येनाम् !

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।

राजा—वयस्य ! = मित्र ! विदूषकेति भावः, पश्यामि = अवलोकयामि, एनाम् = अम्बरमुड्डीयमानां सारसङ्क्तिमिति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताववनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन वत्सराजोदयनः अम्बरगतानां सारसखगानां पङ्क्तिशोभामुपस्थापयति ।

अन्वयः—ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च निवर्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिलां च निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमाम् इव (एनां सारसपङ्क्तिं पश्यामि) ॥२॥

पदार्थः—ऋज्वायतां = सीधी और विस्तृत, विरलां = पतली, नतोन्नतां = ऊँची नीची, निवर्तनेषु = मुड़ने पर, सप्तर्षिवंशकुटिलां = सप्तर्षि समूह के समान टेढ़ी आकृतिवाली, निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य = केंचुल छोड़े हुए सर्प के पेट की भाँति स्वच्छ, अम्बरतलस्य = आकाश मण्डल की, विभाज्यमानां = बाँटने वाली, सीमां = सीमा रेखा, इव = की तरह, (इस सारस पंक्ति को देखता हूँ) ॥ २ ॥

लालमती व्याख्या—अत्र पूर्वार्धे चकारचतुष्टयं चत्वारि विशेषणानि समुच्चिनोति । ऋज्वायताम्–ऋज्वी = सरला, आयता = विस्तृता चेति तां घनामिति यावत्, विरलां = क्वचित् मध्ये मध्ये विद्यमानां, नतोन्नतां–नता

से स्वच्छ आकाश में बलराम जी की फैलाई गई बाँहु के समान सुन्दर तथा एकाग्रता पूर्वक जाती हुई सारस पक्षियों की पंक्ति को आप देखें ।

राजा—मित्र ! (मैं) सरसों की पंक्ति देखता हूँ ।

सीधी और फैली हुई विरल, ऊँची और नीची तथा दोनों भागों में सप्तर्षि मण्डल के समान टेढ़ी, अतः केचुली छोड़ने वाले साँप के पेट

निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥२॥

चेटी--पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारस-

---

च्चाऽसौ उन्नता तां बन्धुरामिति भावः "बन्धुरं तु नतोन्नतम्"—इत्यमरः, नीचोच्चप्रदेशेषु विद्यमानाम् इति यावत्, निवर्तनेषु = वाददक्षिणयोस्तिर्यग्विवलनेष्विति यावत्, सप्तर्षिवंशकुटिलां—सप्तर्षिवंशस्तदाख्यतारकचक्रस्तद्वत्कुटिलां = वक्राकारेणाम्बरव्याप्तामिति भावः, निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य—निर्मुच्यमानः =मुच्यमानकञ्चुकः, कञ्चुकहीन इति भावः, यो भुजगः = अहिः, "सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः"—इत्यमरः, तदुदरवन्निर्मलस्य = स्वच्छस्य, अम्बरतलस्य—अम्बरस्य = गगनस्य तलं तस्याकाशतलस्येतिभावः, "अधःस्वरूपयोरस्त्री" —इत्यमरः, विभज्यमानां—विभज्यत इति विभज्यमाना तां = विधीयमानविभागामिति यावत्, सीमां = विभाजकरेखां, मर्यादालेखामिति यावत्, इव = यथा, 'सीमसीमे स्त्रियामुभे"—इत्यमरः, (एनां = पूर्वोक्ताम्, अम्बरस्थामिति भावः, सारसपङ्क्तिं = पुष्कराह्वखगराजिं, पश्यामि = विलोकयामीति पूर्वेण सह सम्बन्धः) ॥ २ ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" । अलङ्कारश्चात्र सम्भावनायामुत्प्रेक्षा" । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—"भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना" ॥ २ ॥

चेटी—भर्तृदारिका = राजकुमारी, "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः, पश्यतु पश्यतु=विलोकयतु, अत्रौत्सुक्ये द्विरुक्तिः, कोकनदमालापाण्डररमणीयां—कोकनदानां = श्वेतकमलानां, यद्यपि "रक्तोत्पलं कोकनदमिति" अमरवचनन्तदपि औचित्यरक्षणार्थं श्वेतकमलार्थे प्रयोग एव समीचीनः, माला=पङ्क्तिः स्रग्वा, सा इव पाण्डरा=श्वेता, रमणीया=मनोज्ञा च तां "विशदश्वेतपाण्डराः"—इत्यमरः, श्वेतकमलस्रग्विशदमनोज्ञामिति यावत्, समाहितम्=एकाग्रतापूर्वकं, गच्छन्तीं=व्रजन्तीमुड्डीयमानामितिभावः, एताम्—

की तरह स्वच्छ आकाशमण्डल को विभाजित करने वाली सीमा रेखा के समान (इस सारस पंक्ति को देख रहा हूँ ।)

दासी—राजकुमारी एकनिष्ठ होकर जाती हुई श्वेतकमलों की पीति की

पन्ति जाव समाहिदं गच्छन्तिं । अम्भो । भट्टा । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारस पङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम् । अहो ! भर्ता ।]

पद्मावती--हं ! अय्यउत्तो । अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तादंसणं परिहरामि । ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो । [हम् ! आर्यपुत्रः । आर्ये ! तव कारणाद् यपुत्रदर्शनं परिहरामि । तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः ।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु [एवं भवेत् ।]

(तथा कुर्वन्ति)

अम्बरस्थां, सारसपङ्क्ति—सारसानां=पुष्करा ह्व पक्षिविशेषाणां, पङ्क्तिः=राजिम्, यावदिति वाक्यालङ्कारे । अहो ! इति आश्चर्ये सम्भ्रमे चाव्ययं, भर्ता = स्वामी, उदयन आगच्छतीति शेषः ।

पद्मावती—हं = हन्त !, सम्भ्रमेऽव्ययपदम्, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, आगच्छतीति शेषः । आर्ये ! = मान्ये ! आवन्तिके ! इति भावः, तव = भवत्याः, प्रोषितभर्तृकाया इति यावत्, कारणात् = हेतोः, परपुरुषदर्शनपरिहारादिति भावः, आर्यपुत्रदर्शनम्—आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्य, दर्शनम् = अवलोकनं, वारयामि=परिहरामि । तत् = तस्मात् कारणात्, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, इमं = पुरोदृश्यमानं, माधवीलतामण्डपं—माधवीलतानां=वासन्तीवल्लीनां, मण्डपं = कुञ्जं, "निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे"—इत्यमरः, प्रविशामः=अधिगच्छामः ।

वासवदत्ता—एवं=त्वत्कथनानुसारं, भवेत्=स्यात् । (तथा = माधवीलतामण्डपप्रवेशं, कुर्वन्ति=विदधति) ।

तरह सफेद और सुन्दर इस बार सारसों की इस पाँति को देख देखें । अरे ! पति (स्वामी आ गये) ।

पद्मावती--ओह ! आर्यपुत्र ! आप के कारण से (मैं) पतिदेव के दर्शन का परित्याग करती हूँ । इस कारण से वासन्तीलता के मण्डप में प्रवेश करें (हमलोग) ।

वासवदत्ता--ऐसा ही हो ।

(वैसा करती हैं=माधवीलता मण्डप में प्रवेश करती हैं ।)

विदूषकः--तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा--कथं भवान् जानाति।

विदूषकः--इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

राजा--अहो! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक!

विदूषकः--तत्रभवती = माननीया महाराज्ञी, पद्मावती = एतन्नामिका, इह = अस्मिन् स्थले, आगत्य = आव्रज्य, निर्गता = निष्क्रान्ता, भवेत् = स्यात्। मन्येऽहं विदूषको माननीया पद्मावती अदः स्थलमासाद्य पुनः एतस्माद्बहिर्गता स्यात् इति भावः।

राजा--कथं = केन प्रकारेण, भवान् = त्वं, विदूषक इति भावः, जानाति = वेत्ति।

विदूषकः--इमान्=पुरोदृश्यमानान्, अपचितकुसुमान्--अपचितानि=त्रोटितानि, कुसुमानि = पुष्पाणि येभ्यस्ते तान् लूनपुष्पान् इतिभावः, शेफालिकागुच्छान्--शेफालिकानां = सुवहानां, "शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा।"--इत्यमरः, गुच्छकाः = स्तबकाः, "स्याद् गुच्छकस्तु स्तबकः"--इत्यमरः, तान्, निर्गुण्डीस्तबकान् इति यावत्, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, भवान् = माननीयोदयन इति भावः, प्रेक्षतां = पश्य। एभ्यः शेफालिकाप्रसूनस्तबकेभ्यः प्रसूनानि अवचितानि सन्ति। अतः ज्ञायते यत् श्रीमत्या पद्मावत्यैवैतानि पुष्पाणि गृहीतानि इति भावः।

राजा--अहो! आश्चर्येऽव्ययम्। वसन्तक! = विदूषक! कुसुमस्य = पुष्पस्य, पदमिदं जातौ प्रयुक्तं, अतः पुष्पाणामिति भावः, विचित्रता = नैकवर्णता मनोज्ञताऽस्तीति शेषः।

विदूषक--आदरणीया पद्मावती यहाँ आकर निकल गयी होंगी।

राजा--आप कैसे जानते हैं?

विदूषक--तो आप इन चुनेगये फूलों वाले हरसिंगार के गुच्छों को देखें।

राजा--अहो! वसन्तक! फूल की विचित्रता है।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण आणामि उज्ज इणीए वत्तामि त्ति। [वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्ते इति।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे।

विदूषकः—भो ! तह। (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सहो आदवो। ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो। [भोस्तथा। ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः। तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतं) वसन्तकसङ्कीर्तनेन—वसन्तकेति नामोच्चारेण, अहं = वासवदत्ता, पुनः = मुहुः, उज्जयिन्यां=विशालायां, "विशालोज्जयिनी समे"—इत्यमरः, वर्ते = अस्मि, इति = इत्थं, जानामि = तर्कयामि।

राजा—वसन्तक ! = विदूषक ! अस्मिन् = समीपतरस्थे, शिलातले = प्रस्तरफलके, आसीनौ=विराजमानौ, सन्तौ आवामिति शेषः, पद्मावतीं = महाराज्ञीं, प्रतीक्षिष्यावहे = प्रतीक्षां करिष्यावः।

विदूषकः—भोः = राजन् !, तथा = एवमेव करोतु इति भावः। (उपविश्य = आसीनीभूय, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा) ही ! ही ! विषादे ध्वनिविशेषः शरत्कालतीक्ष्णः—शरच्चासौ कालः शरत्कालस्तेन तीक्ष्णः, शरत्समयतीव्र इति भावः, दुस्सहः = दुर्मर्षणः, आतपः = प्रकाशः, "प्रकाशो द्योत आतपः"—इत्यमरः सूर्यस्येति शेषः। तत् = तस्मात् करणात्, इयं = पुरोदृश्यमानं, वासवदत्ताद्यासादितमिति यावत्, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, माधवीमण्डपं—माधवीनां = वासन्तीनां, मण्डपं = निकुञ्जं, प्रविशावः = प्रवेशं कुर्वः।

वासवदत्ता—(मन में) वसन्तक का नाम लेने से लगता है मैं पुनः उज्जयिनी में हूँ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिलातल (चट्टान) पर बैठे हुए हम दोनों पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

विदूषक—राजन् ! ऐसा ही करें। (बैठकर और फिर उठकर) ओह ! ओह ! यह धूप शरद् ऋतु से तीव्र और असह्य है। इसलिए इस माधवीनिकुञ्ज में प्रवेश करें।

राजा—वाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्य ? [एवमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमिदानीं कुर्मः ?]

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीणं ओलम्बलदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं । [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

राजा—वाढं=समीचीनम् । अग्रतः=पुरतः, अग्रे अग्रे इति भावः, गच्छ=चल ।

विदूषकः—एवम्=इत्थं मदनुगमनमिति यावत् भवतु=स्यात् ।

(उभौ = राजविदूषकौ, परिक्रामतः=अटतः)

पद्मावती—आर्यवसन्तकः—आर्यः = श्रेष्ठश्चासौ वसन्तकः = विदूषकः, एवम्=अनेन प्रकारेण, माधवीलतानिकुञ्जप्रवेशनप्रकारेणेति भावः, आकुलं=व्याकुलं, कर्तुकामः—कर्तुं कामोऽभिलाषो यस्य स तथोक्तः "कामोऽभिलाष-स्तर्षश्च"—इत्यमरः, अस्तीति शेषः, आर्यवसन्तकः अस्मान् व्याकुलीकर्तुम् इच्छतीति भावः । किमिति वितर्के, इदानीं=सम्प्रति, कुर्मः=सम्पादयामः ।

चेटी—भर्तृदारिके ! = राजकुमारि !, एतां=पुरःस्थां, मधुकरपरिनिलीनाम्—मधुकरैः=भ्रमरैः, परिनिलीना=सङ्कुला, तां भ्रमराश्लिष्टामिति यावत्, अवलम्बलताम्—अवलम्बाय=आश्रयाय लता=वल्ली ताम्, अस्माकमालम्बभूतां माधवीवल्लीमितिभावः, "वल्ली तु व्रततिर्लता"—इत्यमरः, अवधूय = कम्पयित्वा, भर्तारं=धवं स्वामिनमुदयनमिति यावत्, वारयिष्यामि=निरवायिष्यामि, माधवीनिकुञ्जप्रवेशनादिति शेषः ।

राजा—अच्छा । आगे चलो ।

विदूषक—ऐसा ही हो । (दोनों घूमते हैं) ।

पद्मावती—आर्य वसन्तक (हमलोगों को) आकुल करना चाहते हैं । अब (हमलोग) क्या करें ?

दासी—राजकुमारि ! भ्रमरों से परिव्याप्त तथा आश्रय ली गयी इस लता को हिलाकर राजा (स्वामी) को (आने से) रोकती हूँ ।

पद्मावती—एवं करेहि। [एवं कुरु।] (चेटी तथा करोति।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [अविह अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि। [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि।]

राजा—मा मा भवानेवम् ! मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः। पश्य—

पद्मावती—एवं=पूर्वोक्तप्रकारेणैव, कुरु=विधेहि। (चेटी=दासी, तथा =तादृशमेव, लतावधूननमिति भावः, करोति=विदधाति)।

विदूषकः—अविह ! अविह !—विषादबोधकमव्ययमिदम्। तिष्ठतु=विरमतु, तिष्ठतु = विरमतु, अत्र सम्भ्रमे द्विरुक्तिः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, भवान् = त्वम्, उदयन इति भावः।

राजा—किमर्थं =कस्मात् कारणात् इति भावः।

विदूषकः—दास्याः पुत्रैः = चेट्यास्तनयैः, नीचैरिति भावः, मधुकरैः = भ्रमरैः, पीडितः = व्यथितः, अस्मि = वर्ते। अहमेतान् मधुकरान् निवारयामीति शेषः।

राजा—भवान्=त्वं विदूषक इति भावः, एवम् = इत्थं, मधुकरोत्पीडनमिति यावत्, मा मा=नहि नहि, करोत्विति शेषः। मधुकरसन्त्रासः—मधुकराणां = भ्रमराणां, सन्त्रासः=भीतिः, भ्रमरभीतिरिति यावत्, परिहार्यः= परिहर्तुं त्यक्तुं योग्योऽर्हः सन्त्याज्य इति भावः। पश्य = अवलोकय—

पद्मावती—ऐसा ही करो। (दासी वैसा ही करती है)।

विदूषक—हाय ! हाय ! तबतक आप ठहरिए, ठहरिए।

राजा—किसलिए ?

विदूषक—दासीपुत्र (नीच) भौरों से पीडित किया गया हूँ।

राजा—आप ऐसा न करें, न करें। भौरों को डराना नहीं चाहिए देखिए—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन कामार्तानां मधुकराणां विदूषकभयोत्पादनन्निषेधयति राजोदयनः ।

अन्वयः—मधुमदकलाः मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढा मधुकराः पादन्यासविषण्णाः वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ।

पदार्थः—मधुमदकलाः=पुष्परस के मद से गुञ्जारने वाले, मदनार्ताभिः= कामदेव के द्वारा व्याकुल बनायी गयी अर्थात् कामातुर, प्रियाभिः = प्रियाओं (भ्रमरियों) से, उपगूढ़ाः=आलिङ्गन किये गये अर्थात् आलिङ्गित, मधुकराः = भौंरे, पादन्यासविषण्णाः = पैर रखने से दुःखी (खिन्न) होकर, वयमिव = हमलोगों की तरह, कान्तावियुक्ताः = प्रियाओं (भ्रमरियों) से विरहित, स्युः = हो जायेंगे ।

लालमती व्याख्या—मधुमदकलाः—मधुनः = पुष्परसस्य, "मधुमद्ये पुष्परसे"—इत्यमरः, मदः=पुष्परसपानजनितो मानसो विकारविशेषस्तेन कलाः = अव्यक्तमधुरशब्दाः, "ध्वनौ तु मधुराऽस्फुटे कलः"—इत्यमरः, कलः अस्ति येषान्ते कलाः, पुष्परसमदाव्यक्तमधुरशब्दा इति भावः, मदनार्ताभिः—मदनेन = कामेन, आर्ताः = पीडितास्ताभिः कामातुराभिरिति यावत्, प्रियाभिः = कान्ताभिः, भ्रमरीभिरिति यावत्, उपगूढा = आलिङ्गिता, मधुकरा = भ्रमराः, पादन्यासविषण्णाः—पादयोः = चरणयोः, न्यासः = आक्षेपस्तेन विषण्णाः = खिन्नाः, त्वच्चरणनिक्षेपखिन्ना इति यावत्, सन्त इति शेषः, वयमिव = उदयन इवेति भावः, कान्तावियुक्ताः—कान्तया = वल्लभया, वियुक्ताः = विरहिताः, कान्ताभ्रमरीवियुक्ताः इति भावः, स्युः = भवेयुः । अत्र सम्भावनायां लिङ् ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् आर्यावृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—"यस्याः पादे

पुष्परस के मद से मधुर शब्द करने वाले और कामपीडित प्रियाओं (भ्रमरियों) से आश्लिष्ट (आलिङ्गनबद्ध) भौंरे पैर रखने से खिन्न होकर हमलोगों की तरह ही (अपनी-अपनी) प्रियाओं (भ्रमरियों) से अलग हो जायेंगे ।

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभावुपविशतः ।)

चेटी--भट्टिदारिए ! रुद्धा खु ह्म वयं । [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् ।]

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो ! [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्यसरीरो अय्यउत्तो !

प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या" । अलङ्कारश्चात्र सम्भावनायामुत्प्रेक्षा । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना" ।

तस्मात्=एतस्मात् कारणात्, इह=अस्मिन् शिलापट्टके, एव, आसिष्यावहे = उपवेक्ष्यावः ।

विदूषकः—एवम् =इत्थं, भवत्कथनानुसारं, भवतु=स्यात्, आवां शिलाफलके एव उपवेक्ष्याव इति भावः । (उभौ=उदयनविदूषकौ, उपविशतः= उपवेशनं कुरुतः) ।

चेटी—भर्तृदारिके ! = राजकुमारि !, खलु = निश्चयेन, वयं = आवन्तिकाप्रभृतयः, रुद्धाः = प्रतिरुद्धाः, बहिर्गमनाऽसमर्था इति भावः, स्मः=वर्तामहे ।

पद्मावती – दिष्ट्या = भाग्येन, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"–इत्यमरः, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, उपविष्टः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतं) दिष्ट्या = विधिना, आर्यपुत्रः = पतिदेवः उदयनः, प्रकृतिस्यशरीरः—प्रकृतौ तिष्ठतीति प्रकृतिस्थं, प्रकृतिस्थं शरीरं

इसकारण से (हमदोनों) यही बैठें ।

विदूषक—ऐसा ही हो । (दोनों बैठते हैं) ।

दासी—राजकुमारि ! हमलोग रोक ली गयी हैं ।

पद्मावती—भाग्य से आर्यपुत्र (पतिदेव) बैठ गए ।

वासवदत्ता—(आत्मगत) भाग्य से पतिदेव स्वस्थ शरीरवाले हैं ।

[दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी । [भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः ।]

वासवदत्ता—एसा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी । [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः ।]

पद्मावती—जुज्जइ । [युज्यते ।]

यस्य स तथोक्तः = स्वस्थकाय इति भावः, अस्तीति शेषः ।

चेटी—भर्तृदारिके ! = राजकुमारि ! पद्मावति ! इति भावः, खलु= निश्चयेन, आर्यायाः = पूज्यायाः आवन्तिकाया इति भावः, दृष्टिः=नेत्रं, "लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी दृग्दृष्टी"-इत्यमरः, साश्रुपाता-अश्रुणः पातः, तेन सहिता बाष्पपतनसंयुक्तेति भावः ।

वासवदत्ता—मधुकराणां = षट्पदानाम्, अविनयात् = विनयाभावात् इतस्ततः परिभ्रमणादिति यावत्, काशकुसुमरेणुना—काशस्य = पोटगलस्य, कुसुमं = प्रसूनं, "अथो काशमस्त्रियाम् । इक्षुगन्धा पोटगलः पुंसि"-इत्यमरः, तस्य रेणुः=रजस्तेन, पतितेन = च्युतेन, कारणेनेति शेषः, मे =मम वासवदत्ताया इति भावः, एषा=इयं, दृष्टिः=नयनं, सोदका—उदकेन =नेत्रवारिणा, सहिता =संयुक्ता, नेत्राम्बुसंयुक्तेति भावः, खलु=निश्चयेन, जातेति शेषः ।

पद्मावती —युज्यते = सम्भाव्यते ।

दासी राजकुमारि ! आर्या (आवन्तिका) की आँखों से आँसू गिर रहे हैं ।

वासवदत्ता—भौरों की उद्दण्डता से काशपुष्प का पराग गिरने से मेरी आँखों में आँसू आ गये हैं । (मेरी आँखें आसूओं से पूर्ण हो गयी हैं) ।

पद्मावती—सम्भव है ।

विदूषकः--भो ! सुण्णं खु इदं पमदवणं। पुच्छिदव्वं किञ्चि अत्थि। पुच्छामि भवन्तं। [भोः। शून्यं खल्विदं प्रमदवनम्। प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।]

राजा--छन्दतः।

विदूषकः--का भवदो पिआ। तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा। [का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्र भवती वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा।]

राजा--किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

विदूषकः--भोः ! = हे राजन् !, खलु = निश्चयेन, इदम् = एतत्, प्रमदवनम् = अन्तःपुरोपवनं, शून्यं = विविक्तम् अस्तीति शेषः। किञ्चित् = स्तोकं, प्रष्टव्यं = प्रष्टुं योग्यम्, अस्ति = वर्तते। भवन्तं = श्रीमन्तमुदयनमिति भावः, पृच्छामि = जिज्ञासां विदधामीति यावत्।

राजा--छन्दतः = अभिप्रायतः, "अभिप्रायश्छन्द आशयः"--इत्यमरः, अभिप्रायानुसारमिति यावत्, पृच्छतु इति शेषः।

विदूषकः--का = कतरा; भवतः = मान्यस्योदयनस्य, प्रिया = वल्लभा, प्रियतरेति भावः ? तदानीं = व्यपगते समये, तत्रभवती = मान्या महाराज्ञी, वासवदत्ता = प्रद्योतपुत्री, इदानीम् = अधुना, नवोढेति शेषः, पद्मावती = एतन्नामिका मगधराजदर्शकभगिनी, वा = अथवा।

राजा--किं = किमर्थम्, इदानीं = सम्प्रति, भवान् = विदूषकः, माम् = उदयनं, महति = विशाले, बहुमानसङ्कटे--बहुमानेन = अत्यधिकसम्मानेन, सङ्कटः = विपत्, तस्मिन्, न्यस्यति = स्थापयति। वासवदत्तापद्मावत्योः कतरा मे वल्लभतरेति प्रकाशयितुमहमसमर्थोऽस्मि इति भावः।

विदूषक--महाराज ! यह प्रमदवन (अन्तःपुर का उपवन) निश्चित ही शून्य (लोगों से रहित) है। कुछ पूछना है। आप से पूछता हूँ।

राजा--इच्छा से (पूछिए)।

विदूषक--आप को कौन प्यारी है। ? उस समय महारानी वासवदत्ता या इस समय पद्मावती।

राजा--आप क्यों अत्यधिक सम्मान रूप विपत्ति में मुझे डालते हैं ?

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कटे णिक्खित्तो अय्यउत्तो । [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता —(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ । [अहं च मन्दभागा ।]

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भवं । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा [स्वैरं स्वैरं भवतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

राजा—वयस्य ! न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

पद्मावती – हला = सखि !, तत्तु स एव जानातीतिशेषः, यादृशे = यथाभूते, सङ्कटे = विपदि, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, निक्षितः = स्थापितः ।

वासवदत्ता --(आत्मगतं = स्वगतम्) अहं = वासवदत्ता, मन्दभागा—मन्दोऽल्पो भागो = भाग्यं यस्याः सा, अल्पभागिनी जीविताऽपि पतिवियुक्तेति भावः, च = तथा । यादृशे सङ्कटे आर्यपुत्रो निक्षिप्तस्तत्तु अहमपि जानामीति भावः ।

विदूषकः— स्वैरं स्वैरं = यथेच्छं, भवान् = त्वं, भणतु = कथयतु, रहस्यभेदनं करोत्विति भावः । एका = अन्यतमा, उपरता = दिवङ्गता, वासवदत्ता दग्धेति भावः, अपरा = अन्या पद्मावतीति भावः, असन्निहिता—न सन्निहिता असन्निहिता दूरस्थेति भावः अस्तीति शेषः । अत एव यथार्थरहस्यप्रकाशने त्वयाभीतिर्न कार्येति भावः ।

राजा - वयस्य ! = मित्र ! "वयस्यः स्निग्धः सवयाः"—इत्यमरः; खलु = निश्चयेन, न = नहि, ब्रूयाम् = वदेयम्, भवान् = त्वं विदूषकस्तु, मुखरः = आबद्धमुखः "दुर्मुखे मुखराऽऽबद्धमुखौ"—इत्यमरः, रहस्यगोपनाक्षम इति भावः ।

पद्मावती—पतिदेव जैसे संकट में डाले गये हैं (उसे वे ही जानते हैं) ।

वासवदत्ता—(मन में) मैं अभागिनी भी (जैसे संकट में डाली गयी) ।

विदूषक—आप यथेच्छ कहें, आप यथेच्छ कहें । (क्योंकि) एक (वासवदत्ता) तो मर गई और दूसरी (पद्मावती) भी पास में नहीं है ।

राजा—मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । तुम तो मुखर (छिछले) हो ।

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण । [एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।]

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं । एसा सन्दट्ठा मे जीहा । [भोः ! सत्येन शपे, कस्मा अपि नाख्यास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम् ।

पद्मावती--अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्ताएण हिअअं ण जाणादि । [अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति ।]

पद्मावती—एतावता = एतत्प्रमाणेन वचनेनेति शेषः, आर्यपुत्रेण = पतिदेवेनोदयनेन, भणितं = कथितं स्वप्रेमेति शेषः ।

विदूषकः—भोः ! = वयस्य !, सत्येन = ऋतेन, शपे = शपामि, आक्रोशामीति यावत्, कस्मै, अपि = कस्मैचिदपि जनाय, न = नहि, आख्यास्ये = कथयिष्यामि । सशपथं = सत्यं कथयामि यत् कस्मिन्नपि जने रहस्योद्भेदनं न करिष्यामीति भावः ।

राजा—सखे ! = मित्र !, वक्तुं = कथयितुं, न = नहि, उत्सहे = उत्साहं न विदधामि, ते विश्वासाऽभावादिति यावत् ।

पद्मावती--अहो ! = अरे !, अस्य = पुरस्थस्य, विदूषकस्येति यावत्, पुरोभागिता–पुरो भजत इति पुरोभागी "दोषैकदृक् पुरोभागी"–इत्यमरः, तस्य भावः पुरोभागिता दोषैकदर्शितेति भावः । एतावता = एतत्परिमाणेन, वचनेनेति शेषः, हृदयं = चित्तम् अभिप्रायमिति यावत्, न = नहि, जानाति = अवधारयति । एतेन वाक्यविन्यासेनापि सः पतिदेवस्य महादेवीं वासवदत्तांप्रति स्नेहाधिक्यम् निर्णेतुं न शक्नोतीति भावः ।

पद्मावती—पतिदेव ने इतने से ही कह दिया ।

विदूषक--राजन् ! मैं सत्य की सौगन्ध (कसम) खाता हूँ । किसी से भी न कहूँगा । यह मैंने अपनी जीभ काट ली ।

राजा--मित्र ! मैं नहीं कह सकता । (कहने के लिए उत्साह नहीं करता हूँ) ।

पद्मावती—अरे ! इनकी दोषमात्र देखने की आदत ! इतने से भी ये हृदय की बात नहीं जानते हैं ।

विदूषकः--किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं ! एसो रुद्धो अत्त भवं। [किं न भणति मम ? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्र भवान् ।]

राजा--किं बलात्कारेण ?

विदूषकः--आम, बलक्कारेण । [आम्, बलात्कारेण ।]

राजा--तेन हि पश्यामस्तावत् ।

विदूषकः—मम = मत्समक्षमिति भावः, किं=किमर्थं, न = नहि, भणसि= कथयसि ? का प्रियेति शेषः। अनाख्याय = अकथयित्वा, वासवदत्तापद्मावत्योः कतरा प्रियतरेति अप्रतिपाद्येति यावत्, अस्मात् = अध्यासितात्, शिलापट्टकात्–शिलायाः = प्रस्तरस्य, "पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिला दृषत्"–इत्यमरः; पट्टकात् = फलकात्, एकम् = अन्यतमम्, पदं = पादम्, अपि, गन्तु = यातुं, न = नहि, शक्यम् । कतरा प्रियतरेति अप्रकाशिते प्रश्नोत्तरे पदमेकमप्यन्यत्र गन्तुं न शक्यते भवतेति भावः। एषः = अयं, भवान् = राजोदयनः, अत्र = अस्मिन् शिलाफलके, रुद्धः =प्रतिरुद्धो मयेति शेषः।

राजा—किमिति प्रश्ने, बलात्कारेण=हठेन ?

विदूषकः—आम्=ओम् । बलात्कारेण=बलकरणेन ।

राजा—तेन=तेन कारणेन, बलात्कारेण हेतुनेति भावः, हि=निश्चयेन, पश्यामः=विलोकयामः, कथनीयमकथनीयं वेति विचारयामीति भावः, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये ।

विदूषक—आप मुझसे क्यों नहीं कहते हैं ? बिना कहे (आप) इस शिलापट्ट से एक पग भी नहीं जा सकते । यह आप रोके गये ।

राजा—क्या जबर्दस्ती से ?

विदूषक—जी हाँ, जबर्दस्ती से ।

राजा--तब देखते हैं ।

विदूषकः--पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो सि, जइ सच्चं ण भणासि। [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।]

राजा—का गतिः। श्रूयताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।

विदूषकः—भवान् = त्वं, राजोदयन इति भावः, प्रसीदतु = प्रसन्नो भवतु, प्रसीदतु = प्रसादं करोतु, अत्र सम्भ्रमे वीप्सा। वयस्यभावेन—वयस्यस्य=मित्रस्य-भावस्तेन, शापितोऽसि = मित्रतायाः शपथं ते दापयिष्यामीति भावः। यदि = चेत्, सत्यं = तथ्यं, न = नहि, भणसि = कथयसि, कथयिष्यसीति भावः।

राजा – का अन्येति शेषः, गतिः=उपाय इति भावः, विवशेन कथयामीति यावत्। श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। पद्येनानेन पद्मावत्यपेक्षया वासवदत्ता मे प्रियतरेति प्रकाशयति वत्सराजोदयनः।

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः यद्यपि पद्मावती मम बहुमता, तु वासवदत्ताबद्धं मे मनो न हरति तावत्।

पदार्थः—रूपशीलमाधुर्यैः=रूप (सौन्दर्य) शील (उत्तम चरित्र) और माधुर्य (प्रीति विशेष) से, यद्यपि = यद्यपि, पद्मावती=पद्मावती, मम=मुझे, बहुमता = अत्यन्त प्रिय है, तु=तो भी, वासवदत्ताबद्धं=वासव-दत्ता में बँधे (लगे) हुए, मे=मेरे, मनः = मन को, न=नहीं, हरति = हरण कर पाती है (अधीन कर पाती है)।

विदूषक--आप प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए। सत्य नहीं कहते हैं तो मैं मित्र भाव से कसम खाता हूँ (मित्र की कसम है आपको)।

राजा—क्या उपाय है ? तो सुनिए—

यद्यपि पद्मावती अपने स्वरूप (सौन्दर्य) उत्तम चरित्र और

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ ४ ॥

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) भोदु भोदु। दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स। अहो ! अण्णादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ। [भवतु भवतु। दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।]

लालमती व्याख्या --रूपं = स्वरूपं, सौन्दर्यमिति यावत्, शीलं = सच्चरितं, माधुर्यं = प्रियवादिता, चेत्येतैः कारणीभूतगुणैरिति यावत्, यद्यपि = चेत्, पद्मावती = एतदभिधेया मे उदयनस्य महाराज्ञीतिभावः, मम = उदयनस्य, बहुमता = बहुमानास्पदभूता वर्तते इति शेषः तथापीति शेषः, वासवदत्ताबद्धं-- वासवदत्ताया = अतीतया प्रणयिन्या, बद्धं = स्वगुणैराकृष्टं, मे = उदयनस्य, मनः = चित्तं, "चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः-इत्यमरः, न = नहि, तावदिति वाक्याऽलङ्कारे, हरति = आकर्षति, स्वोन्मुखं न करोतीति भावः।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् आर्यावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या"। अङ्कारश्चात्र विशेषोक्तिः। तल्लक्षणं यथा-"सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्ततो द्विधा"।

वासवदत्ता - (अत्मगतं = स्वगतं) भवतु = अस्तु ! अस्य = विरहजनितस्य, परिखेदस्य = कष्टस्य; वेतनं = पारिश्रमिकं, दत्तं = प्रदत्तं मह्यं वासव दत्तायै इति शेषः। अहो ! अहो ! = अहा !, अत्र = पद्मावतीसमीपे, अज्ञातवासः- अज्ञातः = निभृतः, वासः = निवासः, अपि बहुगुणः—प्रचुरः गुणो यस्य सः अधिकगुणसम्पन्न इति भावः, सम्पद्यते = सिद्ध्यति।

प्रीति विशेष से मुझे बहुत अच्छी लगती (बहुत पसन्द) हैं फिर भी वे वासवदत्ता में बँधे हुए मेरे मन को आकृष्ट नहीं करती है।

वासवदत्ता—(मन में) बस बस। इस (विरह के) कष्ट का वेतन (पारिश्रमिक मुझे) दे दिया (पतिदेव ने)। अरे ! यहाँ छिपकर रहना भी अधिक गुणवाला है।

चेटी—भट्टिदारिए ! अदाक्खिण्णो खु भट्टा । [भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्त्ता ।]

पद्मावती—हला ! मा मा एव्वं ! सदाक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि । [हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।]

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

चेटी—भर्तृदारिके ! = राजकुमारि ! खलु = निश्चयेन, भर्ता = स्वामी, राजोदयन इति भावः, अदाक्षिण्यः–दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यमविद्यमानं दाक्षिण्यं यस्य स तथोक्तः समभावरहित इति भावः, अस्तीतिशेषः ।

पद्मावती—हला ! = सखि !, मा = नहि, मा = नहि, एवम् = इत्थम् । अनेन प्रकारेण न कथनीयमिति भावः । आर्यपुत्रः = पतिदेवः, सदाक्षिण्य–दाक्षिण्येन = समभावेन, सहितः औदार्यसंयुक्त इति यावत्, एव, अस्तीति शेषः । यः = आर्यपुत्रः, इदानीमपि = सम्प्रति अपि, बहुकालानन्तरमपीति शेषः आर्यायाः = पूज्यायाः महादेव्याः, वासवदत्तायाः = प्रद्योतात्मजायाः, गुणान् = वीणावादनसौन्दर्यमाधुर्यादिगुणान्, स्मरति = ध्यायते ।

वासवदत्ता—भद्रे ! = कल्याणि ! अभिजनस्य = स्वश्रेष्ठकुलस्य, सदृशम् = अनुरूपं !, मन्त्रितं = कथितं त्वया पद्मावत्येति शेषः ।

राजा—मया = उदयनेन, उक्तं = कथितं, वासवदत्ता प्रियेति भावः । भवान् = त्वं, विदूषक इति भावः, इदानीं = सम्प्रति, कथयतु = वदतु । का =

दासी—राजकुमारि ! राजा उदार नहीं हैं ।

पद्मावती—सखि ! नहीं, ऐसा नहीं है (ऐसा मत कहो) । पतिदेव उदार ही हैं, इस समय भी आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद कर रहे हैं ।

वासवदत्ता—भद्रे ! आपने अपने कुल के अनुसार ही कहा ।

राजा—मैंने कहा । इस समय आप कहें । उस समय वासवदत्ता या इस

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो। [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः।]

विदूषकः--किं मे विप्पलविदेण। उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ। [किं मे विप्रलपितेन। उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते।]

राजा--वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः--किं मं पि बलक्कारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

कतरा, भवतः = उदयनस्य, प्रिया = वल्लभा, प्रियतरेति भावः ? तदा = तस्मिन् काले, वासवदत्ता = एतदभिधेया, इदानीं = सम्प्रति, पद्मावती = एतन्नामिका, वा = अथवा।

पद्मावती—आर्यपुत्रः = पतिदेव, अपि, वसन्तकः = एतन्नामकः, वसन्तकसदृश इति भावः, संवृत्तः = सञ्जातः।

विदूषकः—मे = मम विदूषकस्येति यावत्, विप्रलपिते = निरर्थककथनेन, "प्रलापोऽनर्थकं वचः"—इत्यमरः, किं = को लाभः, किम्प्रयोजनमिति यावत्। उभे = द्वे, तत्रभवत्यौ = माननीयौ, वासवदत्तापद्मावत्यौ अपि, मे = मम, विदूषकस्येति भावः, बहुमते = अधिकसम्मते, स्त इति शेषः।

राजा—वैधेय ! = रे मूर्ख !, एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण, बलात् = बलात्कारेण, श्रुत्वा = निशम्य, किं = कथम्, इदानीं = सम्प्रति, मां = मे उदयनमिति यावत्, न = नहि, अभिभाषसे = वदसि ?

विदूषकः—किम् इति प्रश्ने, मामपि = विदूषकमपि, बलात्कारेण = बलात्करेण, हठेनेति भावः।

समय पद्मावती—इन दोनों में कौन आपको अच्छी लगती है।

पद्मावती—आर्यपुत्र (पतिदेव) भी वसन्तक हो गए।

विदूषक—मेरे विप्रलाप (निरर्थक कथन) से क्या लाभ ? मुझे तो दोनों ही रानियाँ पसन्द हैं।

राजा—मूर्ख ! मुझसे जबर्दस्ती से सुनकर अब मुझसे क्यों नहीं कहते हो ?

विदूषक—क्या मुझसे भी बलात् सुनना चाहते हैं ?

राजा--अथ किम्, बलात्कारेण ।

विदूषकः--तेण हि ण सक्कं सोदुं । [तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।]

राजा--प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम् ।

विदूषकः--इदाणिं सुणादु भवं । तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा । तत्तहोदी पदुमावती तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ सदक्खिणा । अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता-कहिं णु

राजा-अथ किम् इति स्वीकरणे आमिति भावः, बलात्कारेण=हठेनैवेति भावः।

विदूषकः-तेन=अनेन प्रकारेणेति भावः, हि=निश्चयेन, श्रोतुं= निशमितुं, न=नहि, शक्यम् = शक्यत इति भावः।

राजा--प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, महाब्राह्मणः, -महांश्चासौ ब्राह्मणः, महाविप्र इति भावः, स्वैरं स्वैरं=स्वेच्छापूर्वकम्, अभिधीयताम्=कथ्यताम् ।

विदूषक-इदानीं श्रृणोतु भवान् !............आर्यवसन्तक इति ।

लालमती व्याख्या-कवितावनिताहासेन महाकविनाभासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशः। गद्येनानेन विदूषको वासवदत्तापद्मावत्यौ उभे प्रिये इति प्रतिपादयति ।

लालमती व्याख्या--इदानीं=सम्प्रति, भवान्=राजोदयनः, श्रृणोतु= आकर्णयतु तत्रभवती=माननीया, वासवदत्ता=एतन्नामिका महादेवीति भावः, मे = मम विदूषकस्येति यावत्, बहुमता=अधिकसम्मता । तत्रभवती=माननीया, पद्मावती=एतदभिधेया, नवोढा महाराज्ञीति भावः,तरुणी=युवती, दर्शनीया=

राजा-और क्या ? बलात् ही ।

विदूषक-तब तो नहीं सुन सकते ।

राजा-महाब्राह्मण प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए, इच्छानुसार ही आप कहिए ।

विदूषक-(तो) इस समय आप सुनिए । आदरणीया वासवदत्ता मुझे बहुत अच्छी लगती हैं । आदरणीया पद्मावती भी तरुणी, सुन्दरी; कोप और

खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति । [इदानीं शृणोतु भवान् । तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता । तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या । अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति ।]

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ ! सुमरेहि दाणिं एदं । [भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेतत् ।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

दर्शनयोग्या, सुन्दरीति यावत्, अकोपना—न कोपना अकोपना अमर्षरहितेति भावः, "कोपक्रोधामर्षरषोप्रतिघा रुट्क्रुधौस्त्रियाम्"—इत्यमरः, अनहङ्कारा—अविद्यमानः अहङ्कारो यस्याः सा अहङ्काररहितेति यावत्, मधुरवाक् यस्याः सा तथोक्ता, प्रियवादिनीति भावः, सदाक्षिण्या—दाक्षिण्येन = समभावेन सहिता = युक्ता या सा तथोक्ता औदार्यसहितेति यावत्, अस्तीति शेषः । अयम् = एषः, च = तथा, अपरः = अन्यः, महान् = अधिकः, गुणः, वासवदत्ता = महादेवी, स्निग्धेन = घृतादिस्नेहसम्बद्धेन, भोजननेन = भोज्यपदार्थेन, मां = विदूषकं, प्रत्युद्गच्छति = प्रत्युद्व्रजति—कुत्र = क्वचित्, नु इति वितर्के, खलु = निश्चयेन, गतः = गतवान्, आर्यवसन्तकः = पूज्य विदूषकः, इति = इत्थम् ।

वासवदत्ता—भवतु = अस्तु, भवतु = अस्तु, वसन्तक ! = विदूषक !, स्मर = स्मरणं कुरु, ध्यायस्वेति यावत्, इदानीं = सम्प्रति, एतत् = भक्षणमिति यावत् । मत्प्रदत्तभोजनविषयोऽयमिदानीं स्मृतिविषयीभूत इति भावः ।

राजा—भवतु भवतु = अस्तु अस्तु, वसन्तक ! = विदूषक !, एतत् = इदं, सर्व = सकलं, देव्यै = महाराज्ञ्यै, वासवदत्तायै = प्रद्योतपुत्र्यै, कथयिष्ये = निश्चयेन कथयिष्यामीति भावः ।

अहङ्कार से रहित, मृदुभाषी और उदार है । यह भी दूसरा महान् गुण है । वासवदत्ता "आर्य वसन्तक कहाँ गये"—इस प्रकार कहती हुई अच्छे अच्छे भोज्य (खाद्य) पदार्थों से मुझे खोजती थीं ।

वासवदत्ता—अच्छा अच्छा, वसन्तक ! इस समय आप इसको (पद्मावती को) याद करें ।

राजा—अच्छा अच्छा, वसन्तक ! यह सब कुछ मैं देवी (महादेवी = महारानी) वासवदत्ता से कहूँगा । (शिकायत करूँगा) ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता। [अविहा वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

राजा—(सविषादम्) एवम् ? उपरता।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया।

विदूषकः—अविहा = खेदद्योतकमव्ययपदं, वासवदत्ता ? कुत्र = क्व, वासवदत्ता ? चिरात् = बहोः कालात्, खलु = निश्चयेन, उपरता = दिवङ्गता, वासवदत्ता = एतन्नामिका महाराज्ञी।

राजा—(सविषादं—विषादेन सहितमिति भावः), एवम् = इत्थम्, अत्र प्रश्ने इदम्पदम्। उपरता = दिवङ्गता।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। अनेन पद्येन "सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै"—इति वचनस्य कारणमुपस्थापयति राजोदयनः।

अन्वयः—अनेन परिहासेन मे मनः त्वया व्याक्षिप्तम्। ततः इयं वाणी पूर्वाभ्यासेन तथा एव निःसृता।

पदार्थ अनेन = इस, परिहासेन = परिहास से, मे = मेरा, मनः = मन, त्वया = तुम्हारे द्वारा, व्याक्षिप्तम् = व्यग्र कर दिया गया है। ततः + इसलिए, इयं = यह, वाणी = वाणी, पूर्वाभ्यासेन = पूर्वाभ्यास के कारण, तथैव = उसी प्रकार, निःसृता = निकल गई।

लालमती व्याख्या—अनेन = पूर्वोक्तेन, परिहासेन = केलियुक्तवाक्येनेति भावः, "द्रवकेलिपरीहासाः क्रीडा लीला च नर्म च"—इत्यमरः, मे = ममोदयनस्य, मनः = चित्तं, चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तंहृन्मानसं मनः"—इत्यमरः, त्वया = भवता विदूषकेनेति यावत्, व्याक्षिप्तं = दूरं प्रेरितं, वासवदत्ता-संयोगकाले प्रेरितम् इति भावः, ततः = तस्मात् कारणात्, इयम् = एषा,

---

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ? कहाँ (है) वासवदत्ता ? वासवदत्ता बहुत दिनों से दिवङ्गता हो गयी (वासवदत्ता बहुत दिन पहले ही जल मरी)।

राजा—(दुःख के साथ) ऐसा ? चल बसीं (वासवदत्ता)।

ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ । [रमणीया खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि । अदो ! पिअं णाम ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि । [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।]

वाणी = वचनं "सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै" इत्याकारिकेति यावत्, पूर्वाभ्यासेन—पूर्वश्चासौ अभ्यासस्तेन, पुरातनसंस्कारेणेति भावः, तथा एव = वासवदत्तासंयोगसमयतुल्या एव, निःसृता = निर्गता ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ! अलङ्कारश्चात्र काव्यलिङ्गम् । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गन्निगद्यते" ।

पद्मावती--खलु = निश्चयेन; रमणीयः = मनोज्ञः, कथायोगः-कथाया = कथनस्य, योगः = सम्बन्धः, नृशंसेन = क्रूरेण, "नृशंसो घातुकः क्रूरः"—इत्यमरः, विसंवादितः = विनाशितः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतं = स्वगतं) भवतु भवतु = अस्तु अस्तु इति विश्वासे द्विरुक्तिः, विश्वस्ताऽस्मि = विस्रब्धाऽस्मि । अहो ! = अहा !, प्रियं = मनोहरं, निमेति निश्चये, वचनमस्तीति शेषः । ईदृशं = इत्थं, वचनं प्रियं कथनम्, अप्रत्यक्षं = परोक्षरूपं यथा स्यात्तथा, श्रूयते = आकर्ण्यते ।

इस परिहास (मजाक) से तुमने मेरे मन को बहुत दूर (आगे) खींच दिया, इसी कारण से पहले के अभ्यास से मेरी वाणी उसी प्रकार निकल गई ॥५॥

पद्मावती—दुष्ट विदूषक ने सुन्दर कथा-प्रसङ्ग को बिगाड़ डाला ।

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा अच्छा, मैं विश्वस्ता हूँ । अहा ! ऐसा वचन अप्रत्यक्ष (परोक्ष) रूप से सुना जा रहा है (यह सौभाग्य की बात है ।

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः। ईदृशमिदानीमेतत्।]

राजा—वयस्य ! जानाति भवानवस्थाम् ! कुतः।

दुखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।

विषदूकः—भवान् = त्वं, राजोदयन इति भावः, धारयतु = आत्मानं प्रकृतिस्थं कारयतु कारयत्विति यावत्, सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। अनतिक्रमणीयो—न अतिक्रमणीयःउल्लङ्घनीयः, अनुलङ्घनीय इति भावः, हि = निश्चयेन, विधिः = भाग्यं, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधि"—इत्यमरः। एतत् = भाग्यम्, इदानीं = सम्प्रति, ईदृशम् = एतादृशमस्तीति शेषः।

राजा— वयस्य ! = मित्र ! भवान् = त्वं, विदूषकः अवस्थां = मदीयां दशां, जानाति = वेत्ति। कुतः = यतो हि।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताववनिताहासेन महाकविनाभासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्यमस्ति : पद्येनानेन राजा वासवदत्तायां बद्धमूलानुरागस्य स्वचेतसः विभ्रमुास्थापयति।

अन्वयः—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्। स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति। तु एषा यात्रा यत् इह वाष्पं विमुच्य बुद्धिः प्राप्तानृण्या (सती) प्रसादं याति।

लालमती व्याख्या—बद्धमूलः—मूलं यस्य स तथोक्तः, दृढमूल इति यावत्, अनुरागः = प्रेम, त्यक्तुं = विमोक्तुं, दुःखं = कष्टं, दुस्त्यज इति यावत्, स्मृत्वा = अनुरागस्य स्मरणेन, दुःखं = कष्टम्ममोदयनस्येति शेषः, नवत्वं याति = नवमिव

विदूषक—(आप धैर्य) धारण करें, धारण करें। भाग्य को लांघा नहीं जा सकता। अभी यह ऐसा ही है।

राजा—मित्र ! आप मेरी दशा (चित्तस्थिति) को नहीं जानते हो। क्योंकि—

दृढ़ मूल वाले प्रेम को छोड़ना अत्यन्त कठिन (कष्ट कर) है; बार-बार याद करने से दुःख नया ही होता जाता है। परन्तु यह संसार का नियम है कि

यात्रा त्वेषा विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि! (निष्क्रान्तः।) [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्र भवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

पद्मावती—अय्ये! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं। जाव णिक्कमह्म। [आर्ये! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्। यावन्निष्क्रामामः।]

सम्पद्यते। अनुभूतं कष्टं मुहुः स्मरणेन नूतनं भवतीति भावः। तु=परन्तु; एषा = इयं, यात्रा = जनस्थितिः, यत् इति शेषः, इह = अस्मिन्, कष्टानुभूताविति शेषः, बाष्पं=नेत्राम्बु, विमुच्य = परित्यज्य, बुद्धिः = धीः, "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः"—इत्यमरः, प्राप्तानृण्या=प्राप्तं = लब्धम्, आनृण्यं=तत्प्रेम्णो निष्कृतिर्यया सा सतीतिशेषः, प्रसादं=नैर्मल्यं, याति= प्राप्नोति। अश्रुपातेन निर्यातिताऽनुरागऋणमिव चित्तं किञ्चिदुच्छ्वसितं भवतीति भावः।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् शालिनीवृत्तम्। तद्यथा—"शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः"।

विदूषकः—खलु=निश्चयेन, तत्रभवतो=माननीयस्य, राजोदयनस्येति भावः, मुखं=वक्त्रम्, अश्रुपातक्लिन्नम्—अश्रूणां=नयनबाष्पाणां, पातः = पतनं, तेन क्लिन्नम् = आर्द्रमस्तीतिशेषः। यावदिति वाक्यसौन्दर्ये, मुखोदकं = वक्त्रप्रक्षालनाय जलम्, आनयामि = आनेतुं गच्छामि इति भावः।

पद्मावती—आर्ये! = पूज्ये! आवन्तिके। इति भावः, आर्यपुत्रस्य= पतिदेवस्य, मुखं=वदनं, बाष्पाकुलपटान्तरितं—बाष्पेण आकुलः, स चासौ पटः, तेन अन्तरितम्=अश्रुव्याप्तवस्त्राच्छादितम् अस्तीति शेषः। यावदिति वाक्यालङ्कारे, निष्क्रामामः = निर्गच्छामः, वयमितिशेषः।

यहाँ पर (इस संसार में) आँसू बहाकर चित्त (बुद्धि) प्रियजन के ऋण से उऋण (उन्मुक्त) होकर स्वच्छता (विकारहीनता) को प्राप्त होता है।

विदूषक—आप का मुख आँसुओं के गिरने से गीला हो गया है। मुँह धोने के लिए पानी लाता हूँ। (निकलता है)

पद्मावती—आर्ये! (आवन्तिके!) आर्यपुत्र (पतिदेव) का मुँह आँसुओं से पूर्ण वस्त्र से ढक लिया गया है। अब हम यहाँ से निकलें।

वासवदत्ता-एव्वं होदु। अहव चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।]

चेटी-सुट्ठु अय्या भणादि। उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ। [सुष्ठ्वार्या भणति। उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका।]

पद्मावती-किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस। (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता।) [हला प्रविश।]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा।) एसा तत्तहोदी पदुमावती ! [एषा तत्रभवती पद्मावती !]

वासवदत्ता—एवम् = इत्थम्, भवतु = अस्तु। अथवा = उताहो, त्वं = भवती, पद्मावतीति भावः, तिष्ठ = त्वया अत्रैव स्थीयतामिति यावत्। उत्कण्ठितं = समुत्सुकं, भर्तारं = पतिदेवं, "धवः प्रियः पतिर्भर्ता"-इत्यमरः, उज्झित्वा = परित्यज्य, तवेति शेषः, निर्गमनं = निष्क्रमणम्, अयुक्तम् = असमीचीनमस्तीति शेषः। अहमेव = आवन्तिकैव, गमिष्यामि = व्रजिष्यामि।

चेटी—आर्या = मान्याऽऽवन्तिका, सुष्ठु = शोभनमुचितमिति यावत्, भणति = कथयति। तावदिति वाक्यालङ्कारे, भर्तृदारिका = राजकुमारी, उपसर्पतु = समीपं गच्छतु स्वधवमुदयनमिति शेषः।

पद्मावती—किन्नु वितर्केऽव्ययं, खलु = निश्चयेऽव्ययं, प्रविशामि = प्रवेशं करोमि ?

वासवदत्ता—हला ! = सखि !, प्रविश = प्रवेशं कुरु। (इति = इत्थम्, उक्त्वा = आदिश्य कथयित्वा वा, निष्क्रान्ता = निर्गता)

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण-नलिन्याः, पत्रेण = पलाशेन, जलं = वारि, गृहीत्वा = आदाय) एषा = पुरस्थेयं, तत्रभवती = माननीया, पद्मावती = एतन्नामिका नवोढा महाराज्ञी। इदं वचनं साश्चर्यं विदूषकः कथयति।

वासवदत्ता—ऐसा ही हो। या आप रुक जाइए। समुत्कण्ठित पति को छोड़कर (आप का) बाहर जाना ठीक नहीं है। मैं ही जाती हूँ।

दासी—आर्या (आवन्तिका) उचित कहती हैं। राजकुमारी पति के पास जाँय।

पद्मावती—क्या मैं पतिदेव के पास जाऊँ ?

वासवदत्ता—सखि ! जाइए (ऐसा कहकर निकल जाती है)।

विदूषक—(कमल के पत्ते से जल लेकर) ये आदरणीया पद्मावती (आईं)।

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ?]

विदूषकः-एदं इदं । इदं एदं [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती-भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्यो भणतु ।]

विदूषकः-भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।]

पद्मावती—आर्य ! = मान्य !, वसन्तक ! = विदूषक ! किमि प्रश्ने, एतत् = इदम् । तव हस्तयोः किमस्ति, किमस्ति तस्य प्रयोजनञ्चेति पद्मावती विदूषकं पृच्छति ।

विदूषकः--एतदिदम् = इदमेतद्, इदमेतद् = एतदिदमिति रहस्यगोपनमपश्यतः किंकर्तव्यविमूढस्य विदूषकस्य जलमुद्दिश्य अर्धवाक्यमिति ।

पद्मावती—भणतु = कथयतु, भणतु = कथयतु, आर्यो = मान्यो विदूषक इतिभावः, भणतु = कथयतु ।

विदूषकः--भवति ! = माननीये, वातनीतेन--वातेन = वायुना, नीतेन = प्रापितेन, काशकुसुमरेणुना—काशकुसुमस्य =पोटलप्रसूनस्य "अथो काशमस्त्रियाम् । इक्षुगन्धा पोटगलः, पुंसि"-इत्यमरः, रेणुना = रजसा, अक्षिनिपतितेन-अक्ष्णोः= नयनयोः, निपतितेन = पतितेन, साश्रुपातं-अश्रुपातेन = वाष्पपातेन, सहितं = संयुक्तं, खलु = निश्चयेन, तवभवतो = माननीयस्योदयनस्य, मुखं = वदनम् अस्तीति शेषः । तद्=तस्मात् कारणात्, गृह्णातु = धारयतु, भवती = मान्या पद्मावतीति भावः इदम्=एतत्, मुखोदकं=मुखप्रक्षालनार्थमुदकम् ।

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक--यह वह । वह यह (है) ।

पद्मावती--कहें कहें आर्य कहें ।

विदूषक--माननीये ! हवा से उड़ाये गये काश-पुष्प के पराग के आंख में पड़ने से राजा (उदयन) का मुँह आंसुओं से पूर्ण है । इसलिए आप मुँह धोने के इस पानी को लें ।

पद्मावती–(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिणो एव्व होदि । (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो । इदं मुहोदअं । [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।]

राजा—अये ! पद्मावती ? (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषकः–(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

पद्मावती—(आत्मगतं = स्वगतं) अहो ! = अहा !, आश्चर्येऽव्ययम् । सदाक्षिण्यस्य—दाक्षिण्येन = औदार्येण, सहितः = संयुक्तः तस्य, समभावनासंयुक्तस्येति भावः, जनस्य = लोकस्य, "लोकस्तु भुवने जने"–इत्यमरः, परिजनः = सेवकः, अपि, सदाक्षिण्यः = औदार्यसंयुक्तः, एव, भवति = वर्तते । (उपेत्य = समीपं गत्वा) आर्यपुत्रः = पतिदेवो, जयतात् = विजयतात् । इदम् = एतत्, मुखोदकम् = वक्त्रप्रक्षालनार्थंजलम् ।

राजा—अये ! = अरे, पद्मावती ? = एतन्नामिका नवोढा भार्या ? (अपवार्य) वसन्तक ! = विदूषक !, किमिति प्रश्ने, इदम् = एतत् ? किं महाराज्ञ्या विदितः समाचारः ? इति भावः ।

टिप्पणी—अपवारितम्–जब कोई पात्र दूसरी ओर मुँह करके किसी दूसरे पात्र से किसी गुप्त मन्त्रणा को करता है उसे ही "अपवारित" कहा जाता है । दश रूपक में आचार्य धनञ्जय ने इसका निम्न लक्षण दिया है–

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम्" ।

विदूषकः—(कर्णे = श्रोत्रे) एवम् = इत्थम्, इव, सर्ववृत्तान्तं कर्णे श्रावयतीति भावः ।

पद्मावती—(मन में) अहा ! उदार पुरुष का सेवक भी उदार ही होता है । (पास जाकर) आर्यपुत्र (पतिदेव) की जय हो । यह मुँह धोने के लिए जल है ।

राजा—ऐं ! पद्मावती ? (केवल विदूषक को सुनाकर) वसन्तक यह क्या ?

विदूषक—(कान में) यह ऐसा ?

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावति ! आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण　वाताविद्धेन　भामिनि ! ।

राजा—वसन्तक ! = विदूषक ! साधु = शोभनं, साधु = शोभनम्, उक्तं त्वयेति शेषः । (आचम्य = मुखप्रक्षालनं कृत्वा) पद्मावति ! = भार्ये ! इति भावः, आस्यताम् = उपविश्यताम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्रः = पतिदेवः, यत् = यादृशम्, आज्ञापयति = आदिशति । (उपविशति = तिष्ठति) ।

राजा—पद्मावति ! = मगधराजकुमारि ! इति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन राजोदयनः अश्रुपातकारणं पद्मावतीं श्रावयति ।

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साश्रुपातम् (अस्ति) ।

पदार्थः—हे भामिनि ! = हे सुन्दरि !, शरच्छशाङ्कगौरेण = शरद् कालीन चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, वाताविद्धेन = हवा से उड़ाये गये, काशपुष्पलवेन = काश पुष्प के पराग से, इदं = यह, मम = मेरा, मुखं = मुख, साश्रुपातं = अश्रुपात से युक्त है ।

लालमती व्याख्या—हे भामिनि ! = अयि सुन्दरि !, शरच्छशाङ्कगौरेण—शशः अङ्को यस्य सः, शरदि शशाङ्कः, स इव गौरस्तेज शरच्चन्द्रविशदेनेति भावः,

---

राजा—शाबास वसन्तक ! शाबास ! (मुँह धोकर) पद्मावती ! बैठो ।

पद्मावती—पतिदेव जैसी आज्ञा देते हैं (बैठती है) ।

राजा—पद्मावति !

शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, हवा से उड़ाये गये काश

काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

(आत्मगतम्)

वाताबिद्धेन—वातेन=पवनेन, बिद्धेन = प्रेरितेन, वायुप्रेरितेनेति यावत्, काशपुष्पलवेन–काशपुष्पस्य = पोटगलप्रसूनस्य, "अथो काशमस्त्रियाम् इक्षुगन्धा-पोटगलः पुंसि"–इत्यमरः, लवेन=कणेन "स्त्रियां मात्रा त्रुटी पुंसि लवलेश-कणाऽणवः"–इत्यमरः, इक्षुगन्धकुसुमरजसेति भावः, इदमेतत्, मे=ममोदयन-स्येति भावः, मुखं = वक्त्रं, वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"–इत्यमरः; साश्रुपातम्–अश्रुणः पातः अश्रुपातः, तेन सहितमिति साश्रुपातम् अश्रुपतनयुक्त-मिति भावः, अस्तीति शेषः। इतः अन्यत् किमपि मेऽश्रुपातस्य कारणं नास्तीति यावत् ॥७॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम्। तद्यथा–"श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः"।

(आत्मगतम्=स्वगतं)

सन्दर्भप्रसङ्गौ––कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतोऽयं श्लोकः। श्लोके-नानेन महाकविः उदयनमुखेन स्त्रीणां सहजाबलात्वमुपस्थापयति।

अन्वयः––नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्। इयं कामं धीरस्वभावा, तु स्त्रीस्वभावः कातरः (भवति)।

पदार्थः–नवोद्वाहा = नवविवाहिता, इयं = यह, बाला=युवती, सत्यं = सत्य को, श्रुत्वा=सुनकर, व्यथां=कष्ट को (पीड़ा को) व्रजेत्=प्राप्त होगी, इयं = यह, कामं = अत्यन्त ही, धीरस्वभावा = गम्भीर स्वभाव वाली है, तु=परन्तु (तो भी) स्त्रीस्वभावः = स्त्रियों का स्वभाव, कातरः = अधीर (भीरु, डरपोक, कायर ही होता है)।

पुष्प के पराग से मुँह पर अश्रुपात हुआ। (मेरा मुख आसुँओं के गिरने से भर गया है)।

(मन में)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

विदूषकः—उइदं सत्तहोदी मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता

लालमती व्याख्या—नवोद्वाहा—नव उद्वाहो यस्याः सा नवोद्वाहा नूतनपरिणीतेति भावः, इयम् = एषा, पद्मावतीति भावः, बाला = मुग्धा, सत्यं = तथ्यं, वासवदत्ताविरहजनितरूदनमिति भावः, श्रुत्वा = आकर्ण्य, व्यथां = पीडां, व्रजेत् = अधिगच्छेत् । यद्यपीति शेषः, इयम् = एषा, धीरस्वभावा—धीरः=गम्भीरः, स्वभावः = प्रकृतिः, यस्याः सा तथोक्ता, धृतिमतीति भावः, कामं = बाढमस्तीति शेषः, तु = तदपि, परन्तु इति भावः, स्त्रीस्वभावः-स्त्रीणाम् = अबलानां, स्वभावः = प्रकृतिः, नारीप्रकृतिरिति यावत्, कातरः = अधीरः भवतीति शेषः । उपरतां पत्नीं वासवदत्ताम्प्रति मे प्रणयातिशयात् रूदनं श्रुत्वा इयम्पद्मावती गम्भीराऽपि अबलास्वभावात् च्युतधैर्या भविष्यतीति भावः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । लक्षणन्तु पूर्वमुक्तम् ।

विदूषकः—तत्रभवतः = माननीयस्य, मगधराजस्य = मगधाधिपस्य दर्शकस्येति भावः, अपराह्णकाले—अह्नः अपरमपराह्णः, स चासौ कालस्तस्मिन् दिनतृतीययामे इति भावः, भवन्तं त्वामुदयनमिति भावः, अग्रतः = पुरतः, कृत्वा = विधाय सुहृज्जनदर्शनं—शोभनं हृदयं येषान्ते, सुहृदस्ते च जनास्तेषां दर्शनं

नव-विवाहिता यह बाला सच्ची बात को सुनकर दुःखी होगी । यद्यपि यह (बाला) पूर्ण रूप से गम्भीर (धैर्यपूर्ण स्वभाव वाली) प्रकृति वाली है, फिर भी स्त्रियों का स्वभाव कातर (कायर) ही होता है ।

विदूषक—आदरणीय मगधराज (दर्शक) का अपराह्ण में आप को आगे

उट्ठदुदाव भवं [उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्लकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदु-त्तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।

मित्रलोकविलोकनम्, उचितं = समीचीनम् इदमेवार्थान्तरेण द्रढयति—सत्कारः = सम्मानः, हि = निश्चयेन, नामेति वाक्यालङ्कारे, सत्कारेण = आदरेण, प्रतीष्टः = स्वीकृतः, प्रीतिं = हर्षं, "मुत्प्रीति प्रमदो हर्षः"—इत्यमरः, उत्पा-दयति = जनयति । तत् = तस्मात् कारणात्, उत्तिष्ठतु = उत्थानं करोतु । मगधराजदर्शककर्तृकं पुरस्कारं भवतः सत्कार एव । अतस्तेन करिष्यमाणमादरं स्वीकर्तुं भवान् चलतु इति भावः ।

राजा—बाढम् = वरम् । प्रथमः = मुख्यः, कल्पः = विधिः "मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पः"—इत्यमरः । (उत्थाय = उत्थानं कृत्वा)

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य तुरीयाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम । पद्येनानेन वत्सराजोदयनः सत्कारविज्ञातृणां लोके दुर्लभत्वम्प्रस्तौति ।

अन्वयः—लोके विशालानां गुणानां सत्काराणां च कर्तारो नित्यशः सुलभाः (भवन्ति) तु विज्ञातारो दुर्लभाः (भवन्ति) ॥ ९ ॥

पदार्थः—लोके = संसार में, विशालानां = अत्यन्त महान्, गुणानां = गुणों के, च = तथा, सत्काराणां = सत्कारों के, कर्ता = करने वाले, नित्यशः = नित्य, (सदा ही) सुलभाः = सुलभ हैं । तु = परन्तु, विज्ञातारः = (उन गुणों के और सत्कारों के) जानकार (जानने वाले अर्थात् आदरपूर्वक स्वीकार करनेवाले) दुर्लभाः = दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥

रखकर मित्रों का सत्कार करना उचित है । सत्कार से स्वीकृत सत्कार प्रीति (प्रेम) को पैदा करता है । इसलिए आप उठें ।

राजा—अच्छी बात है । मुख्य विधि है । (उठकर) महान् गुणों को

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

लालमती व्याख्या—लोके=भुवने, "लोकस्तु भुवने जने"—इत्यमरः, विशालानां=महतां, गुणानां=दयादाक्षिण्यप्रभृतीनां, सत्काराणाम्=सम्मानानां, च=तथा, कर्तारः = अनुष्ठातारः, नित्यशः=सदा, सुलभाः-सुखेन लब्धुं शक्याः सुप्राप्या इति भावः, भवन्तीति शेषः। तु = परन्तु, विज्ञातारः=ज्ञातारः, दयादाक्षिण्यादिगुणानां सत्काराणाञ्चेति शेषः, दुर्लभाः=दुष्प्राप्या इति भावः ॥९॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

(निष्क्रान्ताः=निर्गताः, सर्वे = पात्राः)

साधने वाले तथा सत्कारों को करने वाले लोग इस संसार में हमेशा ही सुलभ होते हैं परन्तु उन गुणों एवं सत्कारों को जानने वाले (कदर करने वाले) लोग दुर्लभ ही होते हैं ।

(सभी पात्र निकल गये)

(चतुर्थ अंक समाप्त हुआ)

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका।)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्धं। [मधुकरिके ? आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअह्मि। किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि। किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीर्षवेदणाए दुक्खाविदेत्ति। [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।]

(ततः=तदनन्तरं, पद्मिनिका = एतन्नामिका दासी, प्रविशति=प्रवेशं करोति)

पद्मिनिका—मधुकरिके !=एतन्नामिकायां दास्यां सम्बोधनमिदम्पदम्। आगच्छ=आव्रज, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, शीघ्रं=सत्वरम्।

(प्रविश्य=प्रवेशं विधाय)

मधुकरिका--हला !=हञ्जे ! "हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीम्प्रति"-इत्यमरः, इयम् = एषा, अहमिति शेषः, अस्मि = वर्ते। किमिति प्रश्नेऽव्ययं, क्रियतां = विधीयताम्।

पद्मिनिका--हला ! = सखि !, किमिति प्रश्ने, न = नहि, जानासि = कथयसि, त्वं = भवती, यदिति शेषः, भर्तृदारिका-राजकुमारी, "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"-इत्यमरः, पद्मावती=एतदभिधेया, शीर्षवेदनया-शीर्षस्य=उत्तमाङ्गस्य, "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्"-इत्यमरः, वेदना=पीडा तया, मस्तकव्यथयेति यावत्, दुःखिता=पीडिता, अस्तीति शेषः इति=इत्यम्।

(उसके बाद पद्मिनिका प्रवेश करती है।)

पद्मिनिका—मधुकरिके ! मधुकरिके ! जल्दी आओ।

(प्रवेश कर)

मधुकरिका—सखि ! यह मै हूँ (यह मैं आ गई) क्या किया जाय ?

पद्मिनिका—सखि ! तुम क्या नहीं जानती हो कि राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से दुःखित हैं।

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं । एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।]

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि । [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

मधुकरिका--हा !=हन्त !, धिक् = धिक्कारोऽस्ति, पदमिदं विषादबोधकम् ।

पद्मिनिका — हला !=सखि !, शीघ्रं=सत्वरं, गच्छ=व्रज । आर्यां=मान्याम्, आवन्तिकाम् = एतदभिधेयां, वासवदत्तामिति भावः, शब्दायस्व = शब्दं कुरु । केवल = मात्रं, भर्तृदारिकायाः = राजकुमार्याः, शीर्षवेदनां-शीर्षस्य = मस्तकस्य, वेदनां = पीडामेव, निवेदय=श्रावय । ततः=तदनन्तरं, स्वयमेव=आत्मनैव, आगमिष्यति=आव्रजिष्यति, साऽऽर्याऽऽवन्तिकेति शेषः ।

मधुकरिका—हला = सखि, सा = आवन्तिका, किं=कार्यं, करिष्यसि=सम्पादयिष्यसि ?

पद्मिनिका—सा = आवन्तिका, वासवदत्तेति शेषः, खलु = निश्चयेन, इदानीं = सम्प्रति, मधुराभिः = मनोज्ञाभिः, कथाभिः = प्रबन्धकल्पनाभिः, "प्रबन्धकल्पना कथा"-इत्यमरः, भर्तृदारिकायाः = राजकुमार्याः पद्मावत्या इति भावः, शीर्षवेदनां = मस्तकसन्तापं, विनोदयति = अपनयति ।

मधुकरिका—हाय ! धिक्कार है ।

पद्मिनिका—सखि । शीघ्र आओ । आर्या आवन्तिका को बुला लाओ । राजकुमारी की सिर की पीड़ा को ही केवल बताओ । तब वे स्वयं ही आयेंगी ।

मधुकरिका—सखि ! वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—इस समय वे सुन्दर कहानियों से राजकुमारी की सिर-पीड़ा को दूर करेंगी ।

मधुकरिका—जुज्जइ । कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहिके किल सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअं अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

मधुकरिका—एव्वं होदु (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ?]

मधुकरिका—युज्यते = सम्भाव्यते इति भावः । कुत्र = कस्मिन् स्थले, शयनीयं = शय्या, रचितं = सज्जितं, भर्तृदारिकायाः = राजकुमार्याः पद्मावत्या इति भावः ?

पद्मिनिका—समुद्रगृहके = एतदभिधेये गृहे, किल = निश्चयेन, शय्या = शयनीयम्, आस्तीर्णा = कल्पिता । त्वं = भवती मधुरिकेति यावत्, इदानीं = सम्प्रति, गच्छ = व्रज । अहमपि = पद्मिनिकाऽपि, भर्तुः = स्वामिनः, उदयनस्येति भावः, निवेदनार्थं = विज्ञापनाय, आर्यवसन्तकम्-आर्यश्च = पूज्यश्चासौ वसन्तकः = विदूषकः, तम्, अन्विष्यामि = गवेषयामि इति भावः ।

मधुकरिका—एवम् = इत्थम्, भवतु = अस्तु । (निष्क्रान्ता = निर्गता, रङ्गमञ्चादिति शेषः ।

पद्मिनिका—कुत्र = कस्मिन् स्थाने, इदानीं = साम्प्रतम्, आर्यवसन्तकः = पूज्यविदूषकः, अस्तीति शेषः । पश्यामि = विलोकयामि ।

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी का विस्तर कहाँ लगाया गया है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह नामक भवन में बिछावन लगाया गया है । अब तुम जाओ । मैं भी राजा को निवेदन करने के लिए आर्य वसन्तक को ढूँढती हूँ ।

मधुकरिका—ऐसा ही हो । (निकल जाती है) ।

पद्मिनिका—इस समय आर्य वसन्तक को कहाँ देखूँ ?

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि ! पद्मिनिका ? पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं—भट्टिदारिआ पदुमावती

(ततः=तदनन्तरं, विदूषकः = वसन्तकः, प्रविशति = प्रवेशं करोति ।)

विदूषकः—अद्य = अस्मिन् दिवसे, खलु—निश्चयेन, देवीवियोगविधुरहृदयस्य-देव्याः वियोगः, तेन विधुरं हृदयं यस्य स तथोक्तः, महादेवीवासवदत्ताविरहव्यथितचेतसः, तत्रभवतः = माननीयस्य, वत्सराजस्य = वत्सदेशाधिपस्योदयनस्येति यावत्, पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य—पाणेः ग्रहणं पाणिग्रहणं, पद्मावत्याः पाणिग्रहणं तेन समीरितस्य, पद्मावत्युद्वाहप्रेरितस्येति यावत्, अत्यन्तसुखावहे = अत्यधिकानन्दप्रदे, मङ्गलोत्सवे = मङ्गलमये समये, मदनाग्निदाहः = कामाग्निज्वाला, अधिकतरम् = अत्यधिकं, वर्धते = परिवर्धते । (पद्मिनिकां = एतन्नामिकां दासीं, विलोक्य = अवलोक्य) अयि ! सम्बोधनेऽव्ययं, पद्मिनिका ? = एतदभिधेया दासी ? पद्मिनिके !, इह = अस्मिन् स्थाने, किमिति प्रश्ने, वर्तते = क्रियते ?

पद्मिनिका—आर्य ! = मान्य !, वसन्तक ! = विदूषक !, किमिति प्रश्ने। न = नहि, जानासि = वेत्सि, त्वं = भवान्, यदिति शेषः, भर्तृदारिका = राज,

---

(तब विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक—आज महादेवी वासवदत्ता के विरह से व्यथित मन वाले तथा पद्मावती के विवाह से विषय सुख में प्रेरित आदरणीय वत्सराज के अत्यन्त सुखद मङ्गल उत्सव में कामाग्नि का सन्ताप अत्यधिक बढ़ रहा है । (पद्मिनिका को देखकर) पद्मिनिके ! यहाँ क्या हो रहा है ? (यहाँ क्या कर रही हो ?)

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! "राजकुमारी पद्मावती सिर की पीड़ा से

सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति। [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि । [भवति ! सत्यं ? न जानामि ।]

पद्मिनिका--तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

विदूषकः--कहि सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

कुमारी, पद्मावती=एतदभिधेया, मगधराजभगिनी, शीर्षवेदनया-शीर्षस्य, मस्तकस्य वेदनया=पीडया, दुःखिता = पीडिता अस्तीति शेषः, इति=इत्थम् ।

विदूषकः—भवति !=माननीये !, सत्यम् ?=तथ्यम् ? न=नहि; जानामि=वेद्मि।

पद्मिनिका—तेन = अनेन कारणेन, हि = निश्चयेन, भर्त्रे = स्वामिने, उदयनायेति भावः, एनां = पद्मावतीदशां, निवेदय = विज्ञापय । यावदिति वाक्यालङ्कारे, अहं = पद्मिनिकाऽपि, शीर्षानुलेपनं=मस्तकविलेपनौषधमिति यावत्, तत्प्रसादनार्थमिति शेषः, त्वरयामि = त्वरां करोमि ।

विदूषकः—कुत्र = कस्मिन् स्थले, पद्मावत्याः = उदयनभार्यायाः, शयनीयं = शय्या, रचितं = सज्जितमस्तीति ?

दुःखित हैं'' क्या आप इसे नहीं जानते हैं ?

विदूषक--माननीये ! क्या सचमुच ? मैं नहीं जानता हूँ ।

पद्मिनिका--तब आप इसकी सूचना शीघ्र ही महाराज (उदयन) को दे दें। तब तक मैं भी सिर-दर्द को हटाने वाले लेप (विलेपन औषधों) को बुलाने के लिए शीघ्रता करती हूँ ।

विदूषक--पद्मावती की शय्या कहाँ लगाई गयी है ?

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

विदूषकः--गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं । [गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां

पद्मिनिका—समुद्रगृहके = एतदभिधेये भवने, किल = निश्चयेन, शय्या = शयनीयम्; आस्तीर्णा = सज्जिता, वर्तते इति शेषः ।

विदूषकः—भवती = त्वं, दासीति भावः, गच्छतु = व्रजतु । यावदिति वाक्यसौन्दर्ये, अहमपि = विदूषकोऽपि, तत्रभवते = माननीयायोदयनायेति भावः, निवेदयिष्यामि = विज्ञापयिष्यामि ।

(निष्क्रान्तौ = निर्गतौ, रङ्गमञ्चादिति शेषः)

इति प्रवेशकः

(ततः = तदनन्तरं, राजा = उदयनः, प्रविशति = प्रवेशं करोति)

राजा--श्लाघ्यामवन्तिनृपते·········चिन्तयामि ॥१॥

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कविताव निताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कसमुद्धृतमिदमाद्यम् । पद्येनानेन राजोदयनः दग्धां वासवदत्तां स्मरन् खेदं प्रकटयति ।

अन्वयः--कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहं) लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां तां हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ॥१॥

पद्मिनिका--समुद्रगृह नामक भवन में ही (उनकी) शय्या लगाई गयी है।

विदूषक--आप जांय । तब तक मैं भी महाराज को सूचना दूँगा ।

(दोनों निकल गये)

प्रवेशक समाप्त

(तब राजा उदयन प्रवेश करते हैं ।)

राजा--समय के चक्र (क्रम) से फिर विवाह के भार से युक्त मैं, लावा-

कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

पदार्थः--कालक्रमेण=समय चक्र से (परिस्थिति वश), पुनरागतदारभारः= फिर से पत्नी के भार से संयुक्त, (अहं = मैं उदयन) लावाणके=लावाणक नामक गाँव में, हुतवहेन=आग से, हृताङ्गयष्टिं=जली हुई अङ्गयष्टि वाली, श्लाघ्यां = प्रशंसनीय, अवन्तिनृपतेः = अवन्ति के राजा की, (महासेन चण्ड प्रद्योत की) सदृशीं=अपने अनुरूप, तां=उस, तनूजां=कन्या (वासवदत्ता) को, हिमहतां = बर्फ से मारी हुई, पद्मिनीं = कमलिनी की, इव=तरह, चिन्तयामि=स्मरण कर रहा हूँ ॥१॥

लालमती व्याख्या—कालक्रमेण-कालस्य क्रमेण समयचक्रेणेति यावत्, पुनरागतदारभारः-दाराणां भारः "भार्या जायाऽथ पुम्भूम्नि दाराः"-इत्यमरः, पुनः आगतो दारभारो यस्य स तथोक्तः=मुहुरुपस्थितकलत्रभरः, परिणीतपद्मावतीक इति यावत्, अहमिति शेषः, लावाणके = एतदभिधेये ग्रामे, हुतवहेन= पावकेन, "अग्निर्वैश्वानरो······हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः"—इत्यमरः, हृताङ्गयष्टिं अङ्गमेव यष्टिस्तां, दग्धदेहलतामिति यावत्, श्लाघ्यां=प्रशंसनीयाम्; अवन्तिनृपतेः-अवन्तीनां नृपतिस्तस्यावन्तिराजस्येति भावः, सदृशीं=स्वानुरूपां, योग्यामिति यावत्, तनूजाम् = आत्मजां, तां=वासवदत्तां, हिमहतां-हिमेन=तुषारेण, हतां = नाशितां, तुहिननाशितामिति भावः, पद्मिनीम् = कमलिनीम्; इव= यथा, चिन्तयामि स्मरामि ॥१॥

छन्दोऽलङ्कारश्च--पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" । अलङ्कारश्चात्रोपमा । तद्यथा साहित्यदर्पणे— "साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः" ॥१॥

णक गाँव में आग से जली हुई, प्रशंसनीया अवन्ति के राजा की योग्य (अपने अनुरूप) उस पुत्री (वासवदत्ता) को बर्फ से ताडित कमलिनी के समान याद कर रहा हूँ ॥१॥

विदूषकः--तुवरदु तुवरदु दाव भवं [त्वरेतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

राजा--किमर्थम् ?

विदूषकः--तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः--पदमिणिआए कहिदं । [पद्मिनिकया कथितम् ।]

राजा—भोः ! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां

विदूषकः--तावदिति वाक्यालङ्कारे, भवान्=त्वमुदयनः इति भावः, त्वरतां=त्वरां विधेहि, त्वरतां = त्वरां विधेहि ।

राजा--किमर्थं = कस्मात् कारणादिति भावः ।

विदूषकः--तत्रभवती = माननीया; पद्मावती = उदयनभार्या, शीर्ष-वेदनया = शिरोव्यथया, दुःखिता = पीडिताऽस्ति ।

राजा--का, एवम् = इत्थं, आह = जगाद ?

विदूषकः--पद्मिनिकया=एतदभिधेयया पद्मावतीचेट्येति भावः, कथितं= सूचितम् ।

राजा--भोः = अरे !, कष्टं = दुःखमस्तीति शेषः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमस्ति पद्यमिदम् । अनेन पद्येन पद्मावतीशिरोव्यथां श्रुत्वा राजोदयनस्तामपि वासवदत्तामिव चिन्तयति ।

विदूषक--आप जल्दी करें, जल्दी करें ।

राजा—क्यों ?

विदूषक--माननीया पद्मावती सिर की पीड़ा से व्याकुल हैं ।

राजा--किसने ऐसा कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा ।

राजा—ओह ! कष्ट है ।

सौन्दर्य—सम्पत्ति और गुणों से युक्त प्रिया (पद्मावती) को पाकर मेरा आज शोक कुछ कम सा हुआ था । पहले के (भाग्य के) आघात

लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः

अन्वयः--रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां प्रियां लब्ध्वा अद्य मम शोकः मन्द इव (सञ्जातः) । पूर्वाभिघातसरुजः अनुभूतदुःखः (अहम्) अपि पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि ॥२॥

पदार्थः--रूपश्रिया = रूप सम्पत्ति से, समुदिता = समुन्नत (संयुक्त), गुणतः = गुणों से, युक्तां = युक्त, प्रियां = प्रिया (पद्मावती) को, लब्ध्वा = प्राप्त कर, अद्य = आज, मम = मेरा (उदयन का) शोकः = शोक, मन्द इव = मन्द (कम) सा, (सञ्जातः = हो गया था) । पूर्वाभिघातसरुजः = प्रथम आघात (चोट) से पीड़ित, अनुभूतदुःखः = दुःख का अनुभव करने वाला, अहं = मैं, पद्मावतीं = पद्मावती को, अपि = भी, तथैव = उसी तरह होने की, समर्थयामि = सम्भावना कर रहा हूँ ॥२॥

लालमती व्याख्या—रूपश्रिया—रूपमेव श्रीः रूपश्रीः तया, "सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च"—इत्यमरः, सौन्दर्यसम्पत्त्येति भावः, समुदितां = समुन्नतां संयुक्तामिति भावः, गुणतः = दयादाक्षिण्यादिगुणैः, च = तथा, युक्तां = सम्पन्नां, प्रियां = वल्लभां, पद्मावतीमिति भावः, लब्ध्वा = प्राप्य, अद्य = अधुनेति भावः, मम = मे उदयनस्येतिभावः, वासवदत्ताविरहितस्येति तात्पर्यं, शोकः = मन्युः, "मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्"—इत्यमरः, वासवदत्ताविषयक इति भावः, मन्द = मन्थर, इव = यथा, सञ्जात इति शेषः । पूर्वाऽभिघातसरुजः —पूर्वश्चासौ अभिघातः पूर्वाभिघातः, रुजया सहितः सरुजः, पूर्वाभिघातेन सरुजः पूर्वाभिघातसरुजः, प्रथमदैवप्रहारपीडित इति भावः, अनुभूतदुःखः— अनुभूतं = निर्विष्टं, दुःखं = कष्टं येन स तथोक्तः, निर्विष्टकष्टः, पद्मावतीं = एतन्नामिकां नवोढाम्, अपि, मगधराजकुमारीमपीति भावः, तथा एव = तेनैव प्रकारेण, वासवदत्तामिव विनाशं प्राप्यन्तीमिति यावत् समर्थयामि=सम्भावयामि ।

से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव करके पद्मावती को भी उसी (वासवदत्ता) की तरह होने वाली सम्भावना कर रहा हूँ । तो पद्मावती किस स्थान में है ?

पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः--समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]

राजा--तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

विदूषकः-एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषकः-इदं समुद्दगिहकं । पविसदु भवं । [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशतु भवान् ।]

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा--"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" । अलङ्कारश्चात्रोत्प्रेक्षा सम्भावनायाम् । तद्यथा साहित्यदर्पणे--"भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना" ।

अथेति प्रश्नेऽव्ययम् । कस्मिन् प्रदेशे = कस्मिन् स्थले, पद्मावती = एतन्नामिका ममोदयनस्य भार्येति भावः, वर्तते = अस्ति ?

विदूषकः—समुद्रगृहके = एतदभिधेये भवने, किल = निश्चयेन, शय्या = शयनीयम्, आस्तीर्णा = सज्जिता । पद्मावत्याः शय्या मनोज्ञे समुद्रगृहके रचिता वर्तते इति भावः ।

राजा—तेन = अनेन कारणेन, हि = निश्चयेन, तस्य = समुद्रगृहकस्य, मार्गं = पन्थानम्, आदेशय = दर्शयेति भावः ।

विदूषकः—एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, भवान् = माननीयो राजोदयन इति भावः ।

(उभौ = उदयनवसन्तकौ, परिक्रामतः = परिभ्रमतः)

विदूषकः—इदम् = एतत्, पुरोदृश्यमानमिति भावः, समुद्रगृहकम् = एतदभिधेयं भवनम् । भवान् = माननीयोदयनः, प्र विशतु = प्रवेशं विधेहि ।

विदूषक—समुद्रगृह नामक भवन में ही उनका बिस्तर लगाया गया है ।

राजा--तो उसका रास्ता दिखलाइए ।

विदूषक—आइए आइए, आप ।

(दोनों घूमते हैं)

विदूषक--यह समुद्रगृह है । आप प्रवेश करें ।

राजा—पूर्वं प्रविश ।

विदूषकः—भो ! तह (प्रविश्य) अविहा ! चिठ्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [भोः ! तथा । अविहा ! तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दीपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो । [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः ।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य ।

राजा—पूर्वं=प्रथमं, प्रविश=प्रवेशं कुरु, त्वं विदूषक इति शेषः ।

विदूषकः—भोः !=हे श्रीमन् !, तथा=त्वदाज्ञानुरूपं करोमीति भावः । (प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा) अविहा ! इति आश्चर्येऽव्ययपदम् । तिष्ठतु तिष्ठतु = त्वया निरूप्यतामिति यावत्ः, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये ।

राजा—किमर्थम्=किमस्ति कारणमत्रेति भावः ।

विदूषकः—खलु=निश्चयेन, एषः=अयम्पुरोदृश्यमान इति भावः, दीप॰ प्रभावसूचितरूपः—दीपस्य प्रभावस्तेन सूचितं रूपं यस्य स तथोक्तः=प्रदीप॰ महिमज्ञापिताकारः, वसुधातले—वसुधायाः तले=पृथिवीतले इति भावः, परिवर्तमानः=चेष्टमानः, अयम् = एषः, काकोदरः=सर्पः, "कुण्डली गूढपा॰ च्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी"—इत्यमरः, अस्तीति शेषः ।

राजा—(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, अवलोक्य = वीक्ष्य, सस्मितं—स्मितेन सहितं) अहो ! आश्चर्येऽव्ययपदम् । सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य-सर्पस्य व्यक्तिः=ज्ञानं सर्पव्यक्तिः=सर्पज्ञानमिति भावः, विधातुं योग्यं विधेयं, विधानमित्यर्थः, विधेयस्य अयं वैधेयः, सर्पव्यक्तौ वैधेयो=मूर्खस्तस्य सर्पज्ञानमूर्खस्येति यावत्, 'अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः"—इत्यमरः । आश्चर्यम् मूर्खोऽयं विदूषकः, यो हि दृश्यमानममुं वस्तुविशेषं सर्परूपेण गृह्णातीति तात्पर्यम् ।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो ।

विदूषक—जी ! अच्छी बात है । (प्रवेश कर) ओह ! ठहरिये, आप ठहरिए ।

राजा—क्यों ?

विदूषक—दीपक के प्रकाश से रूप देखा गया, जमीन पर रेंगता हुआ यह साँप है ।

राजा—(प्रवेश कर और देखकर मुस्कराहट पूर्वक) अहो ! मूर्ख को साँप की प्रतीति हो गयी है ।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ।। ३ ।।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यमस्ति । पद्येनानेन वत्सराजोदयनो विदूषकस्य सर्पभ्रममपसारयति ।

अन्वयः—हे मूर्ख ! त्वम् ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालां सर्पम् अवगच्छसि । या निशि मन्दानिलेन किञ्चित्परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि करोति ।

पदार्थ—हे मूर्ख !=रे मूर्ख !, त्वं= तुम (वसन्तक), ऋज्वायतां= सीधी और लम्बी, क्षितौ = पृथ्वी पर, भ्रष्टां=गिरी हुई, मुखतोरणलोलमालां = बहिर्द्वार पर लटकती हुई चञ्चल (हिलती डुलती) माला को, सर्पं= साँप, अवगच्छसि = समझ रहे हो ! या = जो माला, निशि=रात में, मन्दानिलेन=मन्द-मन्द हवा से, किञ्चित्=कुछ, परिवर्तमाना=कम्पित होती हुई, भुजगस्य=साँप की, विचेष्टितानि=चेष्टाओं को, करोति=कर रही है ।

लालमती व्याख्या—हे मूर्ख ! = रे बालिश !, "अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः"—इत्यमरः, त्वं=विदूषकः, ऋज्वायतां ऋजुः = सरला चासौ आयता=विस्तृता, तां, सरलविस्तृतामिति भावः, क्षितौ=भुवि "क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः"—इत्यमरः, भ्रष्टां = च्युतां, मुखतोरणलोलमालां—मुखं च तत्तोरणं, तस्मिन् लोला चासौ माला तां प्रधानबहिर्द्वारचलस्रजमिति भावः, सर्पम्=अहिम्, "सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः"—इत्यमरः, अवगच्छसि=जानासि । या=मुखतोरणचपलस्रक्, मन्थरवायुनेति यावत्, किञ्चित्=स्तोकम्, परिवर्तमाना=विचेष्टमाना, सतीति शेषः, भुजगस्य=सर्पस्य, विचेष्टितानि=विवर्तनकर्माणि, करोति=विदधाति ।

अरे मूर्ख ! तुम सीधी और लम्बी जमीन पर गिरी हुई मुख्य द्वार की हिलती हुई बन्दनवार (तोरण माला) को सर्प समझ रहे हो, जो रात में हल्के वायु से (प्रेरित हो) हिलती हुई साँप को कुछ क्रियायें (चेष्टाएँ) कर रही है ।।३।।

विदूषकः--(निरूप्य) सुट्ठ भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे । [सुट्ठु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

राजा--वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

विदूषकः--कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा--किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । अलङ्कारश्चात्र निश्चयः । तद्यथा साहित्यदर्पणे—"अन्यन्निषिध्य प्रकृतस्थापनं निश्चयः पुनः" ।

विदूषकः—(निरूप्य=निर्वर्ण्य, अवलोक्येति यावत्) सुष्ठु=शोभनमुचितमिति भावः, भवान्=उदयनः, भणति=कथयति । न=नहि, खलु=निश्चयेन, अयम्=एषः, काकोदरः–काकस्येव उदरं यस्य स तथोक्तः काकोदरः =सर्पः "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी"—इत्यमरः । (प्रविश्य= प्रवेशं कृत्वा, अवलोक्य=वीक्ष्य) तत्रभवती=माननीया, पद्मावती=एतदभिधेया नवोढा महाराज्ञी, इह = अस्मिन् समुद्रगृहके, आगत्य = आगमनं कृत्वा, निर्गता = निष्क्रान्ता, भवेत् = स्यात् ।

राजा—वयस्य ! = मित्र !, अनागतया—न आगताऽनाग ततया अनायातयेति भावः, भवितव्यं = भाव्यम् ।

विदूषकः—कथं=केन प्रकारेण, भवान्=उदयनः, जानाति=अवधारयति ।

राजा—अत्र = अस्मिन् विषये, पद्मावत्या अनागमने इति भावः, किमिति प्रश्ने, ज्ञेयं = ज्ञातव्यम् । पश्य = विलोकय ।

विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते हैं । यह साँप नहीं है । (प्रवेश कर और देखकर) आदरणीय पद्मावती यहाँ आकर निकल गयी होंगी ।

राजा—मित्र ! वे (पद्मावती) नहीं आई हुई होंगी ।

विदूषक—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें क्या जानना है ? देखो—

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ--कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधानस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यमस्ति। पद्येनानेन राजा पद्मावत्याः समुद्रगृहके अनागमकारणमुपस्थापयति ।

अन्वयः—हि शय्या अवनता न, तथा आस्तृतसमा व्याकुलप्रच्छदा न। अमलं शिरोपधान शीर्षाभिघातौषधैः क्लिष्टं न। रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता। प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति ।

पदार्थः—हि=क्योंकि, शय्या=शय्या, न=नहीं, अवनता=झुकी नहीं है, तथा=और, आस्तृतसमा=(बिस्तर) जैसा बिछा था वैसा ही है, व्याकुलप्रच्छदा=चादर सिकुड़ी हुई, न=नही है, अमलं=स्वच्छ, शिरोपधानं=तकिया, शीर्षाभिघातौषधैः=सिर-दर्द की औषधियों से, क्लिष्टं=मैला, न=नहीं है, रोगे=रोग की अवस्था मे, दृष्टिविलोभनं जनयितुं=आँखों को लुब्ध करने (आँखों को बहलाने) के लिए, काचित्=कोई, शोभा=सजावट (चित्रलेखन आदि), न=नही, कृता=की गई है। प्राणी=जीव (व्यक्ति), रुजा=रोग से, शयनं=शय्या को, प्राप्य=प्राप्त कर, पुनः=फिर, शीघ्रं=शीघ्र ही, स्वयं=खुद, न=(उसे) नहीं, मुञ्चति=छोड़ता है ॥४॥

लालमती व्याख्या—हि=यतः, शय्या=शयनीयं, न=नहि, अवनता=शरीरभारेण निम्नीभूता, तथा=तेनैव प्रकारेण, आस्तृतसमा—आस्तृता चासौ समा आस्तरणवस्त्राच्छादिता पूर्वरूपा, व्याकुलप्रच्छदा—व्याकुलः=सङ्कुचितः, विवर्तनैरिति शेषः, प्रच्छदः=प्रच्छादकाम्बरं, यस्याः सा तथोक्ता, शरीरविवर्तनैः सङ्कुचितनिचोला इति भावः, न=नहि, शय्याऽस्ति इति शेषः, अमलं=स्वच्छं, शिरोपधान—शिरसः=मस्तकस्य "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा न

शय्या झुकी हुई नहीं है, चादर पहले के समान है, शरीर के लोट-पोट करने से सिकुड़ी भी नहीं है। स्वच्छ तकिया सिर के दर्द की दवाओं से गन्दा नहीं हुआ है। रोग में आँखों को लुभाने के लिए दीवालों पर कोई सजा-

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सि सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदि पडिवालेदु भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।]

मस्तकोऽस्त्रियाम्"—इत्यमरः, उपधानं = उपबर्हः "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः, उत्तमाङ्गोपबर्ह इति यावत्, शीर्षाऽभिघातौषधैः—शीर्षस्य = मस्तकस्य, उपघातः= वेदना, तस्य औषधानि तैः, मस्तकव्यथौषधैरिति यावत्, क्लिष्टं = सकल्मसं न = नहि, रोगे = रुजि, दृष्टिविलोभनं—दृष्ट्योः = नयनयोः "लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी दृग्दृष्टी"—इत्यमरः, नयनाकर्षणमिति यावत्, जनयितुम् = उत्पादयितुं, काचित् = कापि, शोभा = भित्तिषु चित्रादिरचना, न = नहि, कृता = सम्पादिता, प्राणी = जीवो जनो वा, रुजा = रोगेण हेतुना, शयनं = शय्यां, प्राप्य = आसाद्य, पुनः = मुहुः, शीघ्रं = सपदि "शीघ्रं सपदि तत्क्षणे"— इत्यमरः, स्वयम् = आत्मना, न = नहि, मुञ्चति = जहाति। व्यथावैकल्येन रोगी अन्यत्र स्थानमासादितुं तत्क्षणमेव शयनं त्यक्त्वा न गन्तुमभिलषतीति भावः।

छन्दोलङ्कारश्च—श्लोकेऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तद्यथा—"सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"। अलङ्कारश्चात्रानुमानम्। तद्यथा साहित्यदर्पणे—"अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्"।

विदूषकः—तेन = कारणेन, हि वाक्यालङ्कारे, अस्यां = पुरोवर्तमानायां, शय्यायां = शयनीये, मुहूर्तकं = स्वल्पकालम्, उपविश्य, तत्रभवतीं = माननीयां पद्मावतीमिति भावः, भवान् = उदयनः, प्रतिपालयतु = प्रतीक्षां कुरु।

वट (चित्राङ्कन आदि) नहीं की गई है। रोग के कारण विस्तर पर जाकर मनुष्य अपने आप ही शीघ्र विस्तर नहीं छोड़ता है ॥४॥

विदूषक—तो इस विस्तर पर कुछ देर बैठ कर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा--बाढम् । (उपविश्य) वयस्य ! निद्रा मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

विदूषकः—अहं कहइस्सं । हों त्ति करेदु अत्तभवं । [अहं कथयिष्यामि । हों इति करोत्वत्रभवान् ।]

राजा--बाढम् ।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम । तहिं अहिअरमणीआणि उदअ-ह्वाणाणि वत्तान्ति किल । [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम । तत्राधिकरमणीयान्युदक-स्नानानि वर्तन्ते किल ।]

राजा —बाढं = शोभनम् । (उपविश्य) वयस्य ! = मित्र !, माम् = उदयनं, निद्रा = शयनं "निद्रा तु शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"—इत्यमरः, बाधते = सीदति । काचित् = कापि, कथा = प्रबन्धकल्पना, "प्रबन्धकल्पना कथा"-इत्यमरः, कथ्यतां = भण्यताम्, निशाम्यतामिति भावः, त्वयेति शेषः ।

विदूषकः—अहं = विदूषकः, कथयिष्यामि । हों इति —हूँ हूँ इत्याकारको ध्वनिरिति भावः, अत्रभवान् = माननोयो राजोदयन इति भावः, करोतु = विदधातु ।

राजा—बाढम् = युक्तम् ।

विदूषकः—उज्जयिनी नाम = विशालेतिनामिका, "विशालोज्जयिनी समे" इत्यमरः, नगरी = पुरी, अस्ति = वर्तते । तत्र = तस्यामुज्जयिन्याम्, अधिकरमणीयानि = अतिशयमनोज्ञानि, उदकस्नानानि—उदकेन स्नान्ति एषु तानि, जलाशयस्थानानीति भावः, वर्तन्ते = विद्यन्ते, किल = निश्चयेन ।

राजा--अच्छा बात है । (बैठकर) मित्र ! मुझे नींद सता रही है । कोई कथा कहो ।

विदूषक--मैं कहता हूँ । आप "हूँ हूँ" करिए ।

राजा--ठीक है ।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की नगरी है । वहाँ बहुत ही मनोहर स्नान के योग्य तालाब हैं ।

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं। [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।]

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।

राजा—कथं = किम्, उज्जयिनी नाम = उज्जयिनीत्यभिधेया ?

विदूषकः—यदि = चेत्, अनभिप्रेता–न अभिप्रेता = अभीष्टा, अनीप्सितेति भावः, एषा = श्राव्यमाणा, कथा = प्रबन्धकल्पना, अन्याम् = उज्जयिनीसम्बन्धरहितामितरां कथामिति भावः, कथयिष्यामि = श्रावयिष्यामि।

राजा—न = नहि, खलु = निश्चयेन, न = नहि, अभिप्रेता = अभीप्सिता, एषा = श्रूयमाणा, कथा = प्रबन्धकल्पना। किन्तु = परन्तु।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। पद्येनानेन वत्सराजोदयनः वासवदत्ताहरणकालिकं स्वजनं परित्यजन्त्याः वासवदत्तायाश्चित्रम्प्रस्तौति।

अन्वयः—प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः स्नेहात् प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं वाष्पं मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्या अधिपतेः सुतायाः स्मरामि।

पदार्थः—प्रस्थानकाले = प्रस्थान के समय में, स्वजनं = अपने आत्मीय जनों (माता पिता आदि) को, स्मरन्त्याः = स्मरण करती हुई, स्नेहात् = प्रेम के कारण, प्रवृत्तं = निकले हुए, नयनान्तलग्नं = आँखों की कोर में लगे हुए, वाष्पम् आसूओं को, मम=मेरे, एव=ही, उरसि = छाती पर, पातयन्त्याः = गिराती हुई, अवन्त्याः = अवन्ति के, अधिपतेः = राजा की, सुतायाः = पुत्री का (वासवदत्ता का), स्मरामि = याद कर रहा हूँ।

राजा—क्या उज्जयिनी नाम की नगरी ?

विदूषक—यदि ! यह कथा पसन्द न हो तो दूसरी कहूँगा।

राजा—मित्र ! यह कथा पसन्द नहीं है ऐसी बात नहीं। परन्तु—(मेरे साथ उज्जयिनी से) प्रस्थान के समय अपने आत्मीय लोगों (माता-पिता

बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्या। ॥ ५ ॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यथा मामीक्षमाणया ।

लालमती व्याख्या---प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये, उज्जयिनीतो वत्स-देशम्प्रतीति शेषः, स्वजनम् = आत्मीयजनं, माता-पित्रादिकमिति यावत्, स्मरन्त्याः = विचिन्तयन्त्याः, अत एव स्नेहात् = प्रणयात् हेतोः, प्रवृत्तं = जनितं, नयनान्तलग्नं–नयनयोः अन्तौ = प्रान्तभागौ, तयोः लग्नं = सम्पृक्तं, नेत्रकोणसम्बद्धमिति यावत्, वाष्पम् = अश्रु, मम = उदयनस्य, एव, उरसि = वक्षःस्थले, पातयन्त्याः = मुञ्चन्त्याः, अवन्त्याधिपतेः–अवन्त्या = अवन्तिदेशेन उपलक्षितस्य अधिपतेः = अधिपस्य, अवन्त्या अधिपतिरिति अवन्त्यधिपतिस्तस्य अवन्त्यधिपतेरितिरूपं, परन्त्वत्र अवन्त्या इत्युपलक्षणे तृतीया, महासेनचण्डप्रद्योतस्येति भावः, सुतायाः = पुत्र्याः वासवदत्ताया इति भावः, स्मरामि = विचिन्तयामि । अत्र अधीगर्थदयेशां कर्मणीति सूत्रेण कर्मणि षष्ठीप्रयोगः ॥५॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् उपजातिवृत्तमुपेन्द्रेन्द्रवज्रयोः सम्मिश्रणात् । तल्लक्षणं यथा—"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ, स्यादिन्द्रवजा यदि तौ जगौ गः" ।

अपि च = तथा च ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधानस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमस्ति इदम्पद्यम् । पद्येनानेन राजोदयनः वासवदत्ताकृतमाकाशवादनं स्मरति ।

आदि) को स्मरण करने वाली, आँखों की छोर में प्रेम से निकलने वाली आँसू को मेरी ही छाती पर गिराने वाली अवन्ति के राजा की पुत्री (वासवदत्ता) को स्मरण कर रहा हूँ ॥५॥

(और भी)

उपदेश (वीणा बजाने के शिक्षण) के समय मुझे बार-बार देखने वाली जिस (वासवदत्ता) ने कोण (मेजराव) के गिर जाने पर

हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं । अत्थि णअरं बह्मदत्तं णाम । तहिं किल राजा कंपिल्लो णाम । [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि । **अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम । तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम ।**]

अन्वयः—उपदेशेषु अपि बहुशः माम् ईक्षमाणया ययास्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम् ॥६॥

पदार्थः—उपदेशेषु (वीणा वादन के) उपदेश काल में, अपि=भी, बहुशः=अनेक बार, माम् = मुझे, ईक्षमाणया = अपलक देखती हुई, यया= जिसके द्वारा, स्त्रस्तकोणेन=कोण से रहित (तार का बना छल्ला गिर चुका है जिससे ऐसे), हस्तेन=हाथ से, आकाशावादितं = आकाश (शून्य स्थान) में ही बीणा बजाने की क्रिया, कृतं = की गई थी ।

लालमती व्याख्या—उपदेशेषु = मत्कर्तृकवेणुवादनशिक्षणेषु, अपि, बहुषु = अनेकबारं, माम्=शिक्षकमुदयनमिति यावत्, ईक्षमाणया=विलोकयन्त्या, यया= वासवदत्तया, स्रस्तकोणेन—स्रस्तः कोणो यस्मात्तेन, 'कोणो वीणादिवादनम्''— इत्यमरः, च्युतवीणावादनसाधनेनेति भावः, हस्तेन=करेण, आकाशवादितं = व्योमवादितं, शून्यस्थलवादनमिति भावः, कृत=विहितम् । इत्थम्भूतायाः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः वासवदत्तायाः स्मरामीति पूर्वश्लोकेन सह सम्बन्धः ।

छन्दः——पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—''श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः'' ॥६॥

विदूषकः—भवतु = अस्तु । अन्याम् = इतरां, कथां = प्रबन्धकल्पनां, कथयिष्यामि = श्रावयिष्यामि । ब्रह्मदत्तं नाम=एतदभिधेयं, नगरं=पुरम्, अस्ति = वर्तते । तत्र = तस्मिन् ब्रम्हदत्ते नगरे इति भावः, किलेति एतिह्ये, काम्पिल्यो नाम=एतदभिधेयो, राजा=अधिपः, आसीदिति शेषः ।

खाली हाथ से ही आकाशवादित (शून्य स्थान में वादन अर्थात् शून्य स्थान में हाथ चलाने की क्रिया) किया था (ऐसी अवन्तिनरेश की पुत्री का स्मरण कर रहा हूँ) ॥६॥

विदूषक—अच्छा दूसरी कथा कहता हूँ । ब्रह्मदत्त नाम का नगर है । वहाँ काम्पिल्य नाम का राजा है ।

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(**पुनस्तदेव पठति ।**)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [**किं राजा ब्रह्मदत्तः नगरं काम्पिल्यम् ?**]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राजा बह्मदत्तो, णअरं कपिल्लं । (**इति बहुशस्तदेव पठित्वा**) इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गह्णिअ

राजा—किमिति किमिति = किमुक्तं, किमुक्तमिति भावः ।

विदूषकः—(पुनः = भूहुः, तदैव = पूर्वोक्तकथनमेव, पठति = भणति ।)

राजा—मूर्ख ! = मूढ !, राजा = अधिपः, ब्रह्मदत्तः = एतदभिधानः, नगरं = पुरं, काम्पिल्यम् एतदभिधानम् इति = इत्थम्, अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

विदूषकः—किमिति प्रश्ने, राजा = अधिपः, ब्रह्मदत्तः, नगरं = पुरं काम्पिल्यम् ।

राजा—एवम् = इत्थम्, एतत् = इदम् ।

विदूषकः—तेन = हेतुना, हि वाक्यालङ्कारे, मुहूर्तकं=स्वल्पं कालं, भवान्= उदयनः, प्रतिपालयतु = प्रतीक्षां करोतु इति भावः, यावदिति वाक्यालङ्कारे, ओष्ठगतं = कण्ठस्थमिति भावः, करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्य-

---

राजा—क्या कहा ? क्या कहा ?

विदूषक—(पुनः उसी तरह पढ़ता है ।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ऐसा कहो ।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—यह ऐसा ही है ।

विदूषक—तो आप कुछ समय तक रुकें (प्रतीक्षा करें), जब तक मैं ओष्ठगत (कण्ठस्थ) करता हूँ । राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य । (इस

आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु, भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

मिति अभ्यसति विदूषकः । इदानीं = सम्प्रति, शृणोतु = निशमतु, भवान् = माननीयोदयनः । अयि ! = अरे ! अत्रभवान् = माननीयोदयनः, सुप्तः = अवसुप्तः, किमिति शेषः ? अतिशीतला = अतिशयशिशिरा, वेला = समयः । आत्मनः = स्वस्य, प्रावारकम् = उत्तरासङ्गं "द्वौ प्रवारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा"—इत्यमरः, गृहीत्वा = आदाय, आगमिष्यामि = आव्रजिष्यामि ।

(निष्क्रान्तः = बहिर्गतः) (ततः = तदनन्तरं, वासवदत्ता=उदयनस्य प्रथमा महादेवी, आवन्तिकावेषेण=आवन्तिकानेपथ्येन, प्रविशति = प्रवेशं करोति, चेटी = दासी, च = तथा, प्रविशति) ।

चेटी—एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, आर्या = पूज्याऽऽवन्तिका, दृढं = प्रसभं, खलु = निश्चयेन, भर्तृदारिका = राजकुमारी, पद्मावतीति भावः, शीर्षवेदनया = शिरोव्यथया, दुःखिता = विग्ना, अस्तीति शेषः ।

वासवदत्ता—हा धिक् हन्त धिगस्ति । कुत्र=कस्मिन् स्थाने, पद्मावत्याः = दर्शकभगिन्याः, शयनीयं = शय्या, रचितं = सज्जितमस्तीति शेषः ।

प्रकार बहुत बार पढ़कर) अब आप सुनिए । अरे ! आप सो गये ? यह समय बहुत ठण्डा है । अपना ओढना लेकर आता हूँ । (निकल जाता है)

(तब आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता तथा दासी प्रवेश करती हैं)

दासी—आर्या, आइए आइए । राजकुमारी सिर-दर्द से बहुत व्याकुल हैं ।

वासवदत्ता—हा धिक् ! पद्मावती का बिस्तर कहाँ लगाया गया है ?

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(**पुनस्तदेव पठति ।**)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [**किं राजा ब्रह्मदत्तः नगरं काम्पिल्यम् ?**]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं । (**इति बहुशस्तदेव पठित्वा**) इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गह्णिअ

राजा—किमिति किमिति = किमुक्तं, किमुक्तमिति भावः ।

विदूषकः—(पुनः = भूहुः, तदैव = पूर्वोक्तकथनमेव, पठति = भणति ।)

राजा—मूर्ख ! = मूढ !, राजा = अधिपः, ब्रह्मदत्तः = एतदभिधानः, नगरं = पुरं, काम्पिल्यम् एतदभिधानम् इति = इत्थम्, अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

विदूषकः—किमिति प्रश्ने, राजा = अधिपः, ब्रह्मदत्तः, नगरं = पुरं काम्पिल्यम् ।

राजा—एवम् = इत्थम्, एतत् = इदम् ।

विदूषकः—तेन = हेतुना, हि वाक्यालङ्कारे, मुहूर्तकं = स्वल्पं कालं, भवान् = उदयनः, प्रतिपालयतु = प्रतीक्षां करोतु इति भावः, यावदिति वाक्यालङ्कारे, ओष्ठगतं = कण्ठस्थमिति भावः, करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्य-

---

राजा—क्या कहा ? क्या कहा ?

विदूषक—(पुनः उसी तरह पढ़ता है ।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ऐसा कहो ।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

राजा—यह ऐसा ही है ।

विदूषक—तो आप कुछ समय तक रुकें (प्रतीक्षा करें), जब तक मैं ओष्ठगत (कण्ठस्थ) करता हूँ । राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य । (इस

आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं श्रृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु, भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

मिति अभ्यसति विदूषकः । इदानीं = सम्प्रति, श्रृणोतु = निशमतु, भवान् = माननीयोदयनः । अयि ! = अरे ! अत्रभवान् = माननीयोदयनः, सुप्तः = अव-सुप्तः, किमिति शेषः ? अतिशीतला = अतिशयशिशिरा, वेला = समयः । आत्मनः = स्वस्य, प्रावारकम् = उत्तरासङ्गं "द्वौ प्रवारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा"—इत्यमरः, गृहीत्वा = आदाय, आगमिष्यामि = आव्रजिष्यामि ।

(निष्क्रान्तः = बहिर्गतः) (ततः = तदनन्तरं, वासवदत्ता=उदयनस्य प्रथमा महादेवी, आवन्तिकावेषेण = आवन्तिकानेपथ्येन, प्रविशति = प्रवेशं करोति, चेटी = दासी, च = तथा, प्रविशति) ।

चेटी—एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, आर्या = पूज्याऽऽवन्तिका, दृढं = प्रसभं, खलु = निश्चयेन, भर्तृदारिका = राजकुमारी, पद्मावतीति भावः, शीर्षवेदनया = शिरोव्यथया, दुःखिता = विग्ना, अस्तीति शेषः ।

वासवदत्ता—हा धिक् हन्त धिगस्ति । कुत्र=कस्मिन् स्थाने, पद्मावत्याः = दर्शकभगिन्याः, शयनीयं = शय्या, रचितं = सज्जितमस्तीति शेषः ।

प्रकार बहुत बार पढ़कर) अब आप सुनिए । अरे ! आप सो गये ? यह समय बहुत ठण्डा है । अपना ओढना लेकर आता हूँ । (निकल जाता है)

(तब आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता तथा दासी प्रवेश करती हैं)

दासी—आर्या, आइए आइए । राजकुमारी सिर-दर्द से बहुत व्याकुल हैं ।

वासवदत्ता—हा धिक् ! पद्मावती का विस्तर कहाँ लगाया गया है ?

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [**समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।**]

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि। [**तेन ह्यग्रतो याहि।**]

(**उभे परिक्रामतः।**)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु अय्या। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। (**निष्क्रान्ता।**) [**इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।**]

वासवदत्ता—अहो! अकरुणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्य

चेटी—समुद्रगृहके = एतदभिधेये भवने, किल = निश्चयेन, शय्या = शयनीयम्, आस्तीर्णा = सज्जिता।

वासवदत्ता—तेन = हेतुना, हि इति वाक्यसौन्दर्ये, अग्रतः = पुरतः, याहि = चल।

(उभे = वासवदत्ताचेट्यौ, परिक्रामतः = परिभ्रमतः)

चेटी—इदम् = पुरोदृश्यमानमेतत्; समुद्रगृहकम् = एतदभिधेयं भवनम्। आर्या=पूज्याऽऽवन्तिका, प्रविशतु = प्रवेशं करोतु। यावदिति वाक्यालङ्कारे, अहं= चेटी अपि, शीर्षानुलेपनं = शिरोलेपनौषधमिति भावः, आनेतुमिति शेषः, त्वरयामि = त्वरां विदधामि।

वासवदत्ता—अहो! अकरुणाः..............यावच्छयिष्ये।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-

---

दासी—समुद्र गृह (नामक भवन) में शय्या लगाई गयी है।

वासवदत्ता—तो आगे बढ़ो।

(दोनों घूमती हैं।)

दासी—यह समुद्रगृह है। मान्या (आवन्तिका) प्रवेश करें। तब तक मैं भी सिर में लगाने के लिए लेप (औषध) को लाने में शीघ्रता करती हूँ। (चली जाती है)।

वासवदत्ता—ओह! मेरे प्रति देवतालोग कठोर हैं। (मेरे) विरह से

विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा। जाव पविसामि (प्रविश्यालोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो। अस्सत्थं पदुमावदिं केवल दीव-सहाअं करिअ परित्ताजदि। इअं पदुमावदी ओसुत्ता। जाव उवविसामि! अहव अण्णासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि। ता इमस्सिं सय्याए उव-विसामि। (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं

वासवदत्तामित्यभिधानस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशः। अनेन गद्यांशेन वासवदत्ता पद्मावत्याः शिरोवेदनां विचिन्तयन्ती स्वधवस्योदयनस्य दुर्भाग्यमुपस्थापयति। अनन्तरं सुप्तमुदयनं पद्मावतीति मन्यमाना तस्मिन् शयनीये शेते सा।

लालमती व्याख्या—अहो ! = हन्त ! इति विषादेऽव्ययम्। अकरुणाः—अविद्यमाना करुणा येषान्ते निर्दया इति भावः, खलु=निश्चयेन, ईश्वराः = देवाः, मे = मत्कृत इति भावः। विरहपर्युत्सुकस्य—विरहेण=मद्वियोगेन, पर्युत्सुकस्य=उत्कण्ठितस्य, आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्योदयनस्येति भावः, विश्रम-स्थानभूता—विश्रमस्य = विनोदस्य, स्थानं, विश्रमस्थानं, विश्रमस्थानं भूता विनोदपात्रभूतेति भावः, इयम् = एषा, अपि, नामेति वाक्यसौन्दर्ये, पद्मावती =एतदभिधेयोदयनभार्या, अस्वस्था=रोगिणी, जाता = सञ्जाता, यावदिति वाक्यालङ्कारे, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि। (प्रविश्यावलोक्य च) अहो != आश्चर्येऽव्ययपदम्। परिजनस्य = भृत्यजनस्येति भावः, प्रमादः = अनवधानता "प्रमादोऽनवधानता"—इत्यमरः। अस्वस्थां=स्वास्थ्यरहितां, पद्मावतीं= राजकुमारीं, केवलदीपसहायां—केवलो दीपः सहायो यस्याः सा तां=मात्रप्रदीप-सहचरामिति यावत्, कृत्वा=विधाय, परित्यजति=विमुञ्चति। इयम्=एषा,

---

उत्कण्ठित पतिदेव के विश्राम के स्थान रूप (आश्रयभूत) यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई। पहले प्रवेश करती हूँ। (प्रवेश कर और देखकर) अरे ! नौकरों का प्रमाद ! जिन्होंने बीमार पद्मावती को केवल दीपक के सहारे छोड़ दिया है। यह पद्मावती सो रही है। तब तक बैठती हूँ। अथवा दूसरे आसन पर बैठने से स्नेह थोड़ा कम-सा प्रतीत होता है। इस कारण से इसी बिस्तर पर

विअ मे हिअअं। दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा। णिव्वुत्तरोआए होदव्वं! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मे अलिङ्गेहि त्ति। जाव सइस्सं (शयनं नाटयति)। [अहो! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। अहो! परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यजति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। दिष्ट्याऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासा।

पद्मावती = राजकुमारी, अवसुप्ता = सुप्ता। यावदिति वाक्यालङ्कारे, उपविशामि। अथवा = उताहो, अन्यासनपरिग्रहेण—अन्यच्च आसनं, तस्य परिग्रहस्तेन = आसनान्तरस्वीकारेणेति भावः, अल्प इव = मन्दो यथा, स्नेहः = प्रेम, प्रतिभाति = प्रतीतो भवति। तत् = तस्मात् कारणात्, अस्याम् = एतस्यां, शय्यायां = विस्तरे, उपविशामि = अवतिष्ठामीति भावः। (उपविश्य = उपवेशनं कृत्वा)। किमिति = प्रश्ने, नु इति वितर्के, खलु इति निश्चयेऽव्ययम्, एतया = पद्मावत्या, सह = साकं, उपविशन्त्याः = उपवेशनं कुर्वत्याः, मे = मम वासवदत्ताया इति भावः, हृदयं = चित्तं, "चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मन"—इत्यमरः, अद्य = अधुना, प्रह्लादितम् = अतिमोदयुक्तम्, इव = यथा, अस्ति इति शेषः। दिष्ट्या = भाग्येन, दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"—इत्यमरः, अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा—अविच्छिन्नः, सुखो निश्वासो यस्याः सा तथोक्ता, निरन्तरसुखश्वासप्रश्वासा इति भावः, वर्तत इति शेषः। निवृत्तारोगया—निवृत्तो रोगो यस्याः सा, तया = आमयरहितयेति भावः, भवितव्यम् = भाव्यम्। एकदेशसंविभागतया—एकश्चासौ देशः, तस्मिन् संविभागः, तस्य भावस्तया, एकभागविभागत्वेनेति भावः,

---

बैठती हूँ। (बैठकर) क्या कारण है कि इसके साथ बैठने से मेरा मन आज आह्लादित (पुलकित) सा हो रहा है। भाग्य से इसका निःश्वास अविच्छिन्न सुख से युक्त हो रहा है। इस कारण इसको रोग से रहित होना चाहिए। या

निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैक देशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।]

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्तु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

शयनीयस्य = शय्यायाः, मां = पद्मावतीम्, आलिङ्ग=आश्लिष, इति= इत्थं, सूचयति=विज्ञापयति, आदिशति वेति । यावदिति वाक्यालङ्कारे, शयिष्ये=शयनं करिष्यामि । (शयनं, नाटयति=अभिनयति) ।

राजा—(स्वप्नायते=स्वप्नं पश्यति) हा वासवदत्ते ! स्वप्ने राजा कथयति–हा वासवदत्ते ! इति भावः ।

वासवदत्ता—(सहसा = अतर्कितरूपेण, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा) हमिति आश्चर्येऽव्ययम्, आर्यपुत्रः पतिदेवः, न = नहि, खलु = निश्चयेन, पद्मावती = राजकुमारी ! किन्तु इति वितर्के, खलु निश्चयेन, दृष्टा = वीक्षिता, अस्मि = वर्ते ? खलु = निश्चयेन, आर्ययौगन्धरायणस्य=मान्ययौगन्धरायणस्य, महामात्यस्येति यावत्, महान्=विशालः, प्रतिज्ञाभारः–प्रतिज्ञायाः=शपथस्य, भारः = भरः, मम=वासवदत्तायाः, दर्शनेन=विलोकनेन, निष्फलः–निर्गतं फलं यस्मात्स तथोक्तः, फलरहित इति भावः, सवृत्तः=सञ्जातः ।

विस्तर के एक किनारे पर बैठने से मुझे आलिङ्गन करो ऐसी सूचना दे रही है अर्थात् ऐसा कह रही है । तो सोती हूँ । (सोने का अभिनय करती है ।)

राजा—(स्वप्न देखते हैं) हाय वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) हैं ! आर्यपुत्र ! पद्मावती नहीं ? क्या मैं देख ली गई हूँ ? आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञाभार मेरे दर्शन से बेकार हो गया ।

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण कोच्चि जणो । जाव मुहूत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि । [दिष्टच स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टि हृदयं च तोषयामि ।]

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

वासवदत्ता—आलवामि भद्र ! आलवामि । [आलपामि भर्तः ! आलपामि ।]

राजा—किं कुपितासि ?

राजा—हा ! = हन्त !, अवन्तिराजपुत्रि !=अवन्त्यधिपप्रद्योतात्मजे वासवदत्ते ! इति भावः ।

वासवदत्ता—दिष्ट्या=भाग्येन, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, स्वप्नायते= स्वप्नं पश्यति । न=नहि, अत्र=अस्मिन् स्थाने, कश्चित्=कोऽपि, जनः= मानवः, अस्तीतिशेषः । यावादिति वाक्यालङ्कारे, मुहूर्तकं = स्वल्पकालं स्थित्वा=निरूप्य, दृष्टिं=नयनं, "लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी दृग्दृष्टी"— इत्यमरः, हृदयं = मनः, "चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः"— च = तथा, तोषयामि = प्रसादयामि ।

राजा—हा ! = हन्त !, प्रिये ! = वल्लभे !, हा = अयि ! प्रियशिष्ये !— प्रिया चासौ शिष्या, तत्सम्बुद्धौ प्रियच्छात्रे ! इति भावः, मे = मत्कृते, प्रतिवचनं = प्रत्युत्तरं, देहि = विधेहि, आलपेति भावः ।

वासवदत्ता—भर्तः !=स्वामिन् !, आलपामि=वच्मि, आलपामि=वच्मि ।

राजा—किमिति प्रश्ने, कुपिता = रुष्टा, असि = वर्तसे ?

राजा—हाय ! अवन्ति-राजकुमारि !

वासवदत्ता—भाग्य से पतिदेव स्वप्न देख रहे हैं । यहाँ कोई आदमी नहीं है । तब तक कुछ समय बैठकर (ठहरकर) अपनी आँखें और मन को सन्तुष्ट करती हूँ ।

राजा—हाय प्रिये ! हाय प्रिय शिष्ये ! मुझे उत्तर दो ।

वासवदत्ता—स्वामिन् ! बोलती हूँ, बोलती हूँ ।

राजा—क्या तुम क्रुद्ध हो ?

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुक्खिदह्मि। [नहि नहि, दुःखितास्मि।]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किं ? [इतः परं किम् ?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरचिआ ? [आ अपेहि इहापि विरचिका ?]

वासवदत्ता—नहि नहि = मा मा, दुःखिता = व्याकुलाऽस्मि = वर्ते त्वद्विरहेण व्यथिताऽस्मि इति भावः।

राजा—यदि = चेत्, अकुपिता = क्रोधरहिता, असि इति शेषः, तर्हि इति शेषः, किमर्थं = कथं, न = नहि, अलङ्कृता = विभूषिता, असि = वर्तसे ?

वासवदत्ता—इतः = अस्मात्, विप्रयोगकष्टादिति भावः, परम् = अन्यत्, किं = कस्मात्प्रयोनादलङ्कारधारणमिति भावः।

राजा—किमिति प्रश्ने, विरचिकाम् = एतन्नामिकां दासीमिति भावः, स्मरसि = विचिन्तयसि ?

टिप्पणी—विरचिका—बृहत्कथामञ्जरी के अनुसार विरचिका नाम की एक दासी थी जिस पर उदयन कभी आसक्त थे। इस बात को महारानी वासवदत्ता जान गयी थीं। अतः उदयन की वासवदत्ता के प्रति उक्ति है कि क्या तू उसे ही याद कर मुझसे रुष्ट हो नहीं बोल रही हो ?

वासवदत्ता—(सरोषं = क्रोधपूर्वकम्) आ ! कोपद्योतकमव्ययम्, अपेहि = दूरमपसर। इह = अस्मिन् स्थलेऽपि, विरचिका = एतन्नामिका, कदाचिद्राज्ञो भोगिनीस्थानीयेति भावः।

वासवदत्ता—नहीं नहीं, दुःखित हूँ।

राजा—क्रुद्ध नहीं हो तो अलङ्कार क्यों नहीं पहनी हो ?

वासवदत्ता—इस (दुःख) से दूसरा क्या कारण है ?

राजा—क्या विरचिका (दासी) को याद करती हो ?

वासवदत्ता—(क्रोधपूर्वक) ओह ! हटिए (छोड़िए) यहाँ भी विरचिका ?

राजा--तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि । (**हस्तौ प्रसारयति** ।)

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि । को वि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यापलम्बिअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं (**तथा कृत्वा निष्क्रान्ता**) । [**चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि** ।]

राजा--(**सहसोत्थाय**) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ । हा ! धिक् ।

राजा—तेन = कारणेन, हि इति निश्चये, विरचिकार्थं—विरचिकार्थं इदं यथा स्यात्तथा, विरचिकाख्यदास्यार्थमिति यावत्, भवतीं = कोपवतीं वासवदत्तामिति भावः, प्रसादयामि = प्रमुदितां करोमीति भावः । (हस्तौ = करौ, प्रसारयति = विस्तारयति, अञ्जलिं बध्नातीति भावः) ।

वासवदत्ता—चिरं = बहुसमयपर्यन्तं, स्थिता = अवतिष्ठा, अस्मि = वर्ते । कोऽपि = कश्चन अपि, जन इति शेषः, मां = वासवदत्तां, पश्येत् = विलोकयेत् । तद् = तस्मात् हेतोः, गमिष्यामि = व्रजिष्यामि । अथवा = यद्वा, आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्योदयनस्येति भावः, शय्याप्रलम्बितं-शय्यायां प्रलम्बितस्तं, शयनीयविलम्बमानमिति भावः, हस्तं = करं, शयनीये = शय्यायाम्, आरोप्य = संस्थाप्य, गमिष्यामि = व्रजिष्यामि ।

राजा—(सहसा = अकस्मात्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा), वासवदत्ते ! = अवन्तिराजपुत्रि ! तिष्ठ तिष्ठ = विरम, विरम । हा = हन्त ! इति विषादेऽव्ययम् । धिक् = न्यक्कारोऽस्ति ।

राजा --इसलिए विरचिका के लिए तुम्हें खुश करता हूँ (क्षमा माँगता हूँ ।) (दोनों हाथ फैलाता है अर्थात् अञ्जलि बाँधता है) ।

वासवदत्ता—मैं बहुत समय तक ठहरी हूँ । कोई मुझे देख लेगा । इसलिए जाती हूँ । या शय्या से लटके हुए पतिदेव के हाथ को शय्या पर रखकर जाऊँगी । (वैसा ही करके निकलती है ।)

राजा--(सहसा उठकर) वासवदत्ते ! ठहरो, ठहरो । हाय धिक्कार है ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।

ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ।। ७ ।।

(प्रविश्य)

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । वत्सराजोदयनः स्वप्नदृष्टां वासवदत्तां वशीकर्तुं धावति, द्वारपक्षेण पीडितः सन् तिष्ठति इत्येतस्यैव चित्रणं महाकविनोदयनमुखेनैवोपस्थापितमस्मिन् पद्ये ।

अन्वयः—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः (अस्मि) ततः अयं मनोरथो भूतार्थः (वा) इति व्यक्तं न जानामि ।

पदार्थः—सम्भ्रमेण = शीघ्रता पूर्वक (घबराहट से) निष्क्रामन् = निकलता हुआ, अहं = मैं, द्वारपक्षेण = दरवाजे के ऊपर वाले या बगल वाले भाग से (चौकट से); ताडितः = टकरा गया । ततः = इससे (इस कारण से) अयं = यह, भूतार्थः = वास्तविक घटना (है, या), मनोरथः = मन का सङ्कल्प, (भ्रम है); व्यक्तं = स्पष्टतया, न = नहीं, जानामि = जानता हूँ ।

लालमती व्याख्या—सम्भ्रमेण = रंहसा, वेगेनेति यावत्, निष्क्रामन् = निर्गच्छन्, समुद्रगृहकप्रकोष्ठादिति शेषः, अहम् = उदयनः, द्वारपक्षेण = प्रतीहारपार्श्वभागेन, ताडितः = आहतः अस्मीति शेषः, ततः = तस्मात् हेतोः, अयं = वासवदत्तास्पर्शं इति यावत्, भूतार्थः = सत्यात्मकः इति भावः, यद्वेति शेषः, मनोरथः = अभिलाषः, मनःसङ्कल्पम् इति भावः, इति = इत्थं, व्यक्तं = स्पष्टं, न = नहि, जानामि = अवधारयामि ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

(प्रविश्य = प्रवेशं विधाय)

मैं घबड़ाहट से (वेगपूर्वक) निकलता हुआ द्वार के पार्श्वभाग से ठोकर खा गया हूँ । इस कारण से यह वासवदत्ता का स्पर्श सचमुच है या कोरी कल्पना (मनोरथ) है, यह स्पष्टतया नहीं जानता हूँ ।।७।।

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।

विदूषकः—अयि=आश्चर्येऽव्ययपदम् । अत्रभवान्=माननीयोदयनः, प्रतिबुद्धः = जागरितः ।

राजा—वयस्य ! = मित्र !, प्रियम्=अभीष्टं तथा स्यात्तथा, आवेदये = निवेदयामि, श्रावयामि इति भावः, खलु=निश्चयेन, वासवदत्ता= ममोदयनस्य प्रिया भार्या, धरते = अवतिष्ठते ।

विदूषकः—अविहा ! विषादबोधकमव्ययपदं, वासवदत्ता ? चिरात् = बहुकालात्, खलु = निश्चयेन, वासवदत्ता = एतदभिधेया राजमहिषी, उपरता = दिवङ्गता ।

राजा—वयस्य !=मित्र ! मा मैवम्=इत्थं मा कथय, मा कथयेति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधानस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदमवद्यम् । पद्येनानेन राजोदयनः स्वप्नागतवासवदत्तावृत्तान्तं विदूषकं श्रावयति ।

विदूषक—(प्रवेश कर) अरे ! आप जग गये ।

राजा—मित्र ! मैं आपको प्रिय सुनाता हूँ, वासवदत्ता विद्यमान है (जी रही है) ।

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ? वासवदत्ता कहाँ हैं ? बहुत दिनों से (बहुत दिन हुए) वासवदत्ता जल मरीं ।

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं, ऐसा नहीं (ऐसा मत कहो) ।

हे मित्र ! शय्या पर सोये हुए मुझको जगाकर (वासवदत्ता) चली गई ।

दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदअह्लाणसङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे । [अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न ।

अन्वयः—हे सखे । शय्यायाम अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता (वासवदत्ता) "दग्धा" इति ब्रुवता रुमण्वता पूर्वम् (अहं) वञ्चितः अस्मि ।

पदार्थः—हे सखे ! = हे मित्र !, शय्यायां = बिछावन पर, अवसुप्तं = सोये हुए, मां = मुझको, बोधयित्वा = जगाकर, गता = (वासवदत्ता) चली गई । दग्धा = (वासवदत्ता) जल गई, इति = इस प्रकार, ब्रुवता = बोलते हुए, रुमण्वता = रुमण्वान् (नामक मन्त्री) से पूर्वं = पहले (अहं = मैं) वञ्चितः = ठगा गया, अस्मि = हूँ ।

लालमती व्याख्या—हे सखे ! = हे मित्र ! शय्यायां = तल्पे, अवसुप्तं = शयितं, निद्राणमिति भावः, माम् = उदयनं, बोधयित्वा—जागरित्वा, गता = प्रयाता, वासवदत्तेति शेषः, दग्धा = भस्मीकृता, वासवदत्तेति शेषः, इति = इत्थं, ब्रुवता = वदता, रुमण्वता = एतदाख्यसचिवेन, पूर्वं—प्राक्, वञ्चितः = प्रतारितः, अस्मि = वर्ते, आसम् इति भावः ॥ ८ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

विदूषकः—अविहा ! विषादबोधकमव्ययम्, एतत् = इदं, स्वप्ने वासवदत्तादर्शनमिति यावत्, असम्भावनीयं·सम्भावयितुं योग्यं सम्भावनीयं, न सम्भावनीयमसम्भावनीयम्, असम्भाव्यमिति यावत्, न = नहि, अस्तीति शेषः । आ ! इति विमर्शेऽव्ययं, उदकस्नानसङ्कीर्तनेन—उदकेन = जलेन, स्नान्ति येषु उदकस्नानानि सरांसीति यावत्, तेषां संकीर्तनं, तेन, जलाभिषेकचर्चाकरणेनेति यावत्, तत्रभवतीं = परमादरणीयां, वासवदत्तामिति भावः, चिन्तयता=विचार-

---

(वह) जल गई ऐसा कहते हुए रुमण्वान् (नामक मन्त्री) के द्वारा मैं पहले ही ठगा जा चुका हूँ ॥८॥

विदूषक—हाय ! यह असम्भाव्य है (अनहोनी बात है)। जलस्नान की

आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।

यता, ध्यायतेति यावत्, भवतोदयनेनेति शेषः, सा=वासवदत्ता, स्वप्ने=निद्रायां, 'निद्रा तु शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"—इत्यमरः, दृष्टा=अवलोकिता, भवेत्=स्यात् ।

राजा—एवम्=इत्थं, मया=उदयनेन, स्वप्नः= मानसिकज्ञानविशेष इति भावः, दृष्टः=वीक्षितः ? स्वप्नस्य लक्षणं यथा—"सुप्तस्य मानसिकज्ञानविशेषः स्वप्नः" इति ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन स्वप्ने भ्रमे वाऽपि वासवदत्तासंयोगमभिलषति राजोदयनः ।

अन्वयः—यदि तावद् अयं स्वप्नः (तर्हि) अप्रतिबोधनं धन्यः । अथवा अयं विभ्रमः स्यात्, चिरं मे विभ्रमः अस्तु हि ।।९।।

पदार्थः—यदि=अगर, तावत् अयं=यह, स्वप्नः=स्वप्न (या तो) अप्रतिबोधनं=न जागना ही, धन्यं=अच्छा (था अथवा यदि यह) विभ्रमः= भ्रम था तो) मे=मुझे, (यह भ्रम) चिरं=चिरकालतक (बहुत दिनों तक) अस्तु=हो (बना रहे), हि=निश्चित रूप से ।।९।।

लालमती व्याख्या—यदि=चेत्, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अयं=स्वप्ने-वासवदत्तादर्शनमिति भावः, स्वप्नः=स्वापः, मानसिकज्ञानविशेषः इति भावः, स्याद् तर्हीति शेषः, अप्रतिबोधनं=जागरणाभावो, धन्यं=पुण्यवत्,

---

चर्चा करने से और वासवदत्ता की याद करते हुए आपने उन्हें स्वप्न में देखा होगा ।

राजा—ऐसा ! मैंने स्वप्न देखा है ?

यदि यह स्वप्न है तो, न जागना ही धन्य है । अथवा यदि यह बुद्धि का भ्रम

अथायं विभ्रमो वा स्याद्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! वअस्स ! एदस्सि णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [**भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।**]

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।

अथ वा = यद्वा, अयं = वासवदत्तादर्शनमिति भावः, विभ्रमः = बुद्धेर्भ्रमः, स्यात् = भवेत्, तर्हीति शेषः, चिरं = बहुकालपर्यन्तं, मे = मत्कृते, विभ्रमः = भ्रान्तिः, वासवदत्तासंयोगरूप इति भावः, अस्तु = भवतु, हि = निश्चयेन । स्वप्ने विभ्रमे वा यदि मदुदयनकृते, वासवदत्तासंयोगो भवेत् चेदहं पुण्यभाग्भवेयमिति भावः ॥९॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

विदूषकः—भो ! वयस्य ! = हे ! मित्र !, एतस्मिन् = अस्मिन्, नगरे = पुरे, राजगृहाभिधेये नगरे इति भावः, अवन्तिसुन्दरी नाम = एतदभिधेया, यक्षी = गुह्यका यक्षपत्नीति भावः, प्रतिवसति = निवसति । सा = यक्षी, त्वया = भवतोदयनेनेति भावः, दृष्टा = वीक्षिता, भवेत् = स्यात् ।

राजा—न न = नहि, नहि । मया यक्षी न दृष्टेति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतोऽयं श्लोकः । श्लोकेनानेन राजोदयनः प्रोषितभर्तृकाव्यवहारमाचरन्त्याः स्वप्नदृष्टवासवदत्तायाश्चित्रमुपस्थापयति विदूषकम्प्रति ।

अन्वयः—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि, रक्षन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम् ॥१०॥

है तो बहुत समय तक मुझे यह भ्रम ही बना रहे ॥९ ॥

विदूषक—मित्र । इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम की एक यक्षी निवास करती है, उसे आपने देखा होगा ।

राजा—नहीं नहीं ।

स्वप्न के अन्त में जगा हुआ मैंने (जीवन के साथ) चरित्र की भी रक्षा

चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥ १० ॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।

पदार्थः—स्वप्नस्य = स्वप्न के, अन्ते = अन्त में, विबुद्धेन = अच्छी तरह से जगे हुए (मया = मेरे द्वारा) चारित्रम् = चरित्र की, अपि=भी, रक्षन्त्याः= रक्षा करती हुई (वासवदत्तायाः = वासवदत्ता का) नेत्रविप्रोषिताञ्जनं = बिना काजल की आँखों वाला, दीर्घालकं = लम्बे लम्बे बालों वाला, मुखं = मुँह, दृष्टम् = देखा गया ॥१०॥

लालमती व्याख्या—स्वप्नस्य = शयनस्य, "निद्रा तु शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"–इत्यमरः, अन्ते = अवसाने, विबुद्धेन = जागरितेन, मयेति शेषः, चारित्रं = स्वचरितम्, अपि इत्यनेन पदेन जीवनेन सहित=चारित्रमिति भावोऽवगम्यते, रक्षन्त्याः = परिपालयन्त्याः, वासवदत्तायाः इति शेषः, नेत्रविप्रोषिताञ्जनं-विप्रोषितमञ्जनं यस्मिन् तत्, विप्रोषिताञ्जनं, नेत्रयोः विप्रोषिताञ्जनं नयनोज्झितकज्जलमिति यावत्, दीर्घालकं—दीर्घा अलकाश्चूर्णकुन्तलाः "अलकाश्चूर्णकुन्तला" इत्यमरः, यस्मिंस्तत् विस्तृतचूर्णकुन्तलमिति यावत्, प्रोषितभर्तृकाऽऽचारपरिपालनेनेति यावत्, मुखं = वक्त्रं, "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"–इत्यमरः, दृष्टम् = अवलोकितम् ॥१०॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् । अपि च=अन्यच्च, वयस्य ! = मित्र !, पश्य = विलोकयतु, पश्य ! = विलोकयतु !,

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतोऽयं श्लोकः । पद्येनानेन राजोदयनं वासवदत्तास्पर्शपुलकितं स्वकीयं शरीरं विदूषकं दर्शयित्वा वासवदत्तासंयोगं पुष्णाति ।

करती हुई वासवदत्ता के कज्जल से रहित आँखों वाले तथा लम्बी अलकों वाले मुँह को देखा ॥१०॥

और भी मित्र ! देखो देखो ।

अत्यधिक भयभीत देवी (वासवदत्ता) ने मेरा जो यह हाथ पकड़ा, स्वप्न

स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

विदूषकः—मा दाणि भवं अणत्थं चिन्तिअ। एदु एदु भवं। चउस्सालं पविसामो। [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्। चतुःशालं प्रविशामः।]

अन्वयः सन्त्रस्तया तया देव्या यः अयं बाहुः निपीडितः, स्वप्ने उत्पन्नसंस्पर्शः (सन्) अपि रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

पदार्थः—सन्त्रस्तया = डरी हुई, तया = उस, देव्या = देवी (वासवदत्ता) के द्वारा, यः = जो, अयं = यह, बाहुः = भुजा, निपीडितः = पकड़ी गयी, स्वप्ने = स्वप्न में, अपि = भी, उत्पन्नसंस्पर्शः = उद्भूत स्पर्शवाली (होकर) रोमहर्षं = रोमाञ्च को (जागने पर भी) न = नहीं, मुञ्चति = छोड़ रही है।

लालमती व्याख्या—सन्त्रस्तया = अतिभीतया, तया = पूर्वोक्तया, देव्या = महाराज्ञ्या वासवदत्तयेति भावः, यः, अयम् = एषः, बाहुः = भुजः, "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः"–इत्यमरः, मदीय इति शेषः, निपीडितः वासवदत्ताकरेण गृहीतः, शयनीये स्थापितः इति भावः, तेन = कारणेन, स्वप्ने = स्वापे, "निद्रा तु शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"–इत्यमरः, उत्पन्नसंस्पर्शः–उत्पन्नः = उद्भूतः संस्पर्शः = अमर्शनः, यस्य सः, सन् इति शेषः, रोमहर्षं = रोमाञ्चं, सात्त्विकं भावमिति भावः, न = नहि, मुञ्चति = जहाति। महादेवीवासवदत्ताकरस्पर्शेणाधुनापि अहं वेपथुमान् अस्मीति भावः ॥११॥

छन्दः– पद्येऽस्मिन् अनुष्टुवृत्तम्। तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम्।

विदूषकः–नहि, मा = नहि, भवान् = उदयनः, अनर्थम् = असम्भाव्यमिति यावत्, चिन्तयित्वा = विचिन्त्य। भवान् इदानीं दग्धवासवदत्ताविषये विचिन्त्य स्वं दुःखितं मा कुरु मा कुरु इति भावः। एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, भवान् = उदयनः। चतुःशालं = सञ्जवन, वयमिति शेषः, प्रविशामः = प्रवेशं कुर्मः।

में स्पर्श होने पर भी अभी तक (जागने की इस अवस्था में भी) रोमाञ्चित (पुलकित) हो रहा है ॥११॥

विदूषक—इस समय आप अनर्थ (असम्भाव्य विषय) की चिन्ता मत करें। आप आइए, आइए। चतुःशाल में हमलोग प्रवेश करते हैं।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् । अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।

(प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं ··· ··········तदुत्तिष्ठतु भवान् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमिति नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतोऽयं गद्यांशः । गद्यांशेनानेन मगधराजकाञ्चुकीयो दर्शकरुमण्वद्भ्यां सुसज्जितेन विपुलचतुरङ्गबलेन स्वशत्रौ आरुणौ आक्रमितुं दर्शकस्य प्रार्थनां निवेदयति उदयनाय ।

लालमती व्याख्या—जयतु = विजयतामतिशयेन वर्ततामिति यावत्, आर्यपुत्रः = महाराजोदयनः । अस्माकं = मगधवास्तव्यानां, महाराजो, दर्शकः = एतदभिधेयः, भवन्तं=माननीयमुदयनमिति भावः, आह = कथयतीति भावः, एषः=अयं, खलु = निश्चयेन, भवतः = श्रीमतः उदयनस्येति भावः, अमात्यः = सचिवः 'मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः''—इत्यमरः, रुमण्वान्=एतन्नामकः, महता = विपुलेन, बलसमुदायेन-बलानां = सेनानां, समुदायेन=समूहेन, उपयातः= उपागतः, खलु = निश्चयेन, आरुणिम् = तदभिधेयम्, अभिघातयितुं=विनाश-

---

(प्रवेश कर)

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र (महाराज) की जय हो । हमलोगों के महाराज दर्शक ने आपको कहा है आपके ये मन्त्री रुमण्वान् बड़ी सेना के समूह के साथ आरुणि को मारने के लिए आये हैं । उसी प्रकार मेरी विजय के अङ्गभूत हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चतुरङ्गिणी सेना भी लड़ने के लिए तैयार है । इस कारण से आप उठें । और भी--

आपके शत्रुओं में भेद पैदा कर दिया गया है । आपके गुणों में अनुरक्त प्रजा को समाश्वासन दे दिया गया है । आपके आक्रमण के समय में जो सेना

यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं

यितुम्। तथा = च, हस्त्यश्वरथपदातीनि–हस्तिनश्च = गजाश्च, अश्वाश्च = घोटकाश्च, रथाश्च = स्यन्दनाश्च, हस्त्यश्वरथं, हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयो येषु तानि, गजतुरङ्गमस्यन्दनपादपत्तीनि, मामकानि = मदीयानि, विजयाङ्गानि— विजयस्य = जयस्य अङ्गानि = साधनभूतानीति यावत्, जयोपकरणानीति भावः सन्नद्धानि = उद्यतानि, सन्तीति शेषः, तत् = तस्मात् हेतोः, उत्तिष्ठन्तु = उत्थापनं करोतु, भवान् = महाराजोदयनः इति भावः। अपि च = अन्यच्च।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतोऽयं श्लोकः। पद्येनानेन मगधराजकाञ्चुकीयः विजयोपकरणानि अन्यकारणानि राजोदयनं श्रावयति।

अन्वयः – (हे महाराज !) ते रिपवः भिन्नाः भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः। या पार्ष्णी, तस्या अपि विधानं कृतम्। अरिप्रमाथजननं यद् यत् साध्यं, तत् तत् मया अनुष्ठितम्। बलैः त्रिपथगा नदी अपि तीर्णा च। वत्साः च तव हस्ते (सन्ति)॥ १२॥

पदार्थः—ते = आपके, रिपवः = शत्रु, भिन्नाः = भिन्न कर दिये गये हैं (आपके शत्रुओंमें भेद उत्पन्न कर दिया गया है।) भवद्गुणरताः = आप के गुणों पर अनुरक्त, पौराः = पुरवासी (नागरिक) समाश्वासिताः = आश्वस्त कर दिये गये हैं। या = जो, पार्ष्णी = सेना का पृष्ट भाग (पीछे चलने वाली रक्षक सेना) तस्याः = उसका, अपि = भी, भवत्प्रयाणसमये = आप की रणयात्रा के समय में, विधानं = विधान, कृतं = किया गया है। अरिप्रमाथजननं = शत्रुओं का मथन करने वाला, यद् यत् = जो जो, साध्यं = उपाय होना चाहिए, तत् तत् = वह सब, मया = मेरे द्वारा (दर्शक के द्वारा) अनुष्ठितं = प्रबन्ध

का पृष्ठ भाग है उसका भी विधान कर दिया गया है। शत्रुओं को नाश करने वाला जो जो साधनीय विषय है वह सब मैंने (दर्शक ने) तैयार कर दिया है।

तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा, वत्साश्च हस्ते तव ॥ १२ ॥

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

कर लिया गया है । बलैः=सेनायें, त्रिपथगा – गङ्गा, नदी अपि = नदी को भी, तीर्णा=पार कर ली हैं । वत्सदेश, तव=आपके, हस्ते=हाथ में ही (है)

लालमती व्याख्या—(हे महाराजोदयन !) ते = तव, रिपवः = अरयः "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः"—इत्यमरः, भिन्नाः = भेदप्राप्ताः, विविधोपायैरिति शेषः, भवद्गुणरताः—भवतो गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, तेषु रताः,, त्वद्दयादाक्षिण्यादिगुणानुरक्ता इति भावः, पौराः=पौरजनाः, नागरिका इति यावत् समाश्वासिताः = आश्वासनं प्रापिताः, स्वल्पकालादेवोदयनस्य दयालुनरेशस्य शासनं भवितेत्यनेन वचनेनेति शेषः, या पार्ष्णी=सैन्यपृष्ठं, तस्याः = पार्ष्ण्याः, अपि, भवत्प्रयाणसमये भवतः = उदयनस्य, प्रयाणस्य = विजयप्रस्थानस्य, काले = समये, विधानं = रचना, कृतं = विहितम् । अरिप्रमाथजननम्—अरीणां, = शत्रूणां, प्रमाथस्य = नाशस्य, जननम् = उत्पादकं, यत् यत्=यत्किमपि, साध्यं = साधनीयं, तत्=सर्वं खलु, तत्, मया=मगधराजदर्शकेन, अनुष्ठितं = सम्पादितमस्तीति शेषः । बलैः = सैन्यैः, त्रिपथगा = त्रिमार्गगा, भागीरथीति यावत् "भागीरथी त्रिपथगा, त्रिस्रोता भीष्मसूरपि"—इत्यमरः, नदी = सरित्, अपि = च, तीर्णा = उत्तीर्णा, अनेन प्रकारेणेति शेषः, वत्साश्च = वत्सप्रदेशाश्च, तव = भवतः, उदयनस्येति भावः, हस्ते = करे सन्तीति शेषः ॥१२॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तद्यथा—"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ।

राजा—(उत्थाय) बाढम्=उचितम् । अयम् = एषः, अहमिति भावः, इदानीं = सम्प्रति ।

सेनाओं ने गङ्गा नदी को पार कर लिया है । अब वत्सदेश आपके हाथ में ही है ॥१२॥

राजा—(उठकर) अच्छी बात है । यह इस समय (मैं)—

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमिति नाटकस्य पञ्चमाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । राजोदयनो दारुणकर्मदक्षमारुणिं स्वशत्रुं नाशयितुं प्रवृत्तो भवति इत्येतस्य चित्रणमस्मिन् पद्ये महाकविना राजोदयनमुखात् प्रस्तुतम् ।

अन्वयः नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महाऽर्णवाभे युधि उपेत्य दारुणकर्मदक्षं तम् आरुणिं नाशयामि ।

पदार्थ -नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे=हाथी और घोड़ों से पार किये गये, विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे=बिखरे हुए बाण रूपी भयंकर तरङ्गों वाले, महाऽर्णवाभे= समुद्र के समान, युधि = युद्ध में, उपेत्य = जाकर, दारुणकर्मदक्षं = भयङ्कर कर्म करने में निपुण, तम् = उस, आरुणि =आरुणि को, नाशयामि = नाश करता हूँ ।

लालमती व्याख्या —नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे—नागानाम्=मतङ्गजानाम्, इन्द्राः = श्रेष्ठाः, "मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी"—इत्यमरः, नागेन्द्राश्च = गजश्रेष्ठाश्च, तुरङ्गाश्च=अश्वाश्च, नागेन्द्रतुरङ्गं, तेन तीर्णस्तस्मिन्= गजेन्द्राश्वतरणाऽऽधारे इति भावः, विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे—विकीर्णाश्च = इतस्ततो व्याप्ता इति यावत्, ते बाणाः=शराः, उग्राश्च ते तरङ्गाः उग्रतरङ्गाः= भयङ्करोर्मयः, विकीर्णबाणा एव उग्रतरङ्गास्तैः भङ्गः=भयं यस्मिन्; तस्मिन् विप्रकीर्णशरभयङ्करोर्मिकौटिल्यभरिते इति भावः, महार्णवाभे—महाश्चासौ अर्णवः, तस्य इव आभा = कान्तिः यस्य, तस्मिन् महासागरनिभे इति भावः, "उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः"—इत्यमरः, युधि =युद्धे "युद्ध-

---

हाथी और घोड़ों से पार किये गए और बिखरे हुए बाण रूप भयङ्कर तरङ्गों से भययुक्त बहुत बड़े समुद्र के समान युद्ध में भयङ्कर कर्म में निपुण उस आरुणि नामक शत्रु को मारता हूँ ॥१३॥

विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

मायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्"–इत्यमरः, उपेत्य=सम्प्राप्य, दारुणकर्म-दक्षं–दारुणं=नृशंसं, च तत् कर्म तस्मिन् दक्षः तम्=नृशंसकर्मनिपुणमिति यावत्, तं=पूर्वोक्तम्, आरुणिम्=एतदभिधेयं, स्वशत्रुमिति भावः, नाशयामि=हन्मि ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । तद्यथा–"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ" । अलङ्कारश्चोपमारूपके । तयोर्लक्षणे यथा—"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः" । "रूपकं रूपिताऽऽरोपाद्विषये निरपह्नवे" ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे पात्रा इति शेषः)

(सब निकल जाते हैं)

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी--अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः-भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय

(ततः=तदनन्तरं, प्रविशति=प्रवेशं करोति, काञ्चुकीयः=काञ्चुकी, वत्सराजस्येति शेषः)

काञ्चुकीयः—भोः=अरे !, इह=अस्मिन् द्वारभूमौ, कः=को जनः, काञ्चनतोरणद्वारं-तोरणं च तद्द्वारं तोरणद्वारं "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्"—इत्यमरः, काञ्चनं च तत्तोरणद्वारं स्वर्णमयबहिर्द्वारमिति यावत्, अशून्यं-न शून्यं=रिक्तम् इति अशून्यं, सनाथमिति भावः, कुरुते=करोति ? प्रतीहारभूमौ कोऽस्ति द्वारपाल इति यावत् ।

(प्रविश्य=प्रवेशं विधाय)

प्रतीहारी—आर्य !=मान्य ! अहं, विजया=तन्नामिकाऽस्मि, द्वारपालपदे इति शेषः । किमिति प्रश्ने, क्रियतां=विधीयताम् ?

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां‥‥‥प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताविनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमिति नाटकस्य षष्ठाङ्कात्समुद्धृतमस्तीदं पद्यम् । पद्येनानेन वत्सराज-

---

(तब काञ्चुकीय प्रवेश करता है)

काञ्चुकीय--अजी ! यहाँ कौन सुनहरे बाहरी द्वारको अपनी उपस्थिति से अशून्य (सम्पन्न) बन रहा है ?

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी--(द्वारपालिका) आर्य ! मैं विजया (हूँ) । क्या करूँ ?

—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स । [आर्य । अदेशकालः प्रतीहारस्य ।]

काञ्चुकीयः उज्जयिनीतः आगतयोः वासवदत्ताधात्रीवसुन्धरा—काञ्चुकीययोः प्रतीहारभूमौ उपस्थितिं वत्सराजोदयनाय निवेदयितुं प्रतीहारिणमादिशति ।

लालमती व्याख्या—भवति !=माननीये ! विजये ! इति यावत्, निवेद्यतां=विज्ञाप्यतां, निवेद्यतां=विज्ञाप्यतां, वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय—वत्सानां राज्यं, तस्य लाभः, तेन प्रवृद्ध उदयो यस्य स, तस्मै वत्सदेशावाप्तिसमृद्धोत्कर्षायेति भावः, उदयनाय=एतन्नामकाय वत्सराजाय,—एषः=अयं, खलु=निश्चयेन, महासेनस्य=एतन्नामकस्य उज्जयिनीनरेशस्य, सकाशाद्=पार्श्वात्, रैभ्यसगोत्रः—समानं गोत्रं=वंशः यस्य स सगोत्रः, रैभ्यस्य सगोत्रो रैभ्यगोत्रोद्भूत इति भावः, "सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ"—इत्यमरः; काञ्चुकीयः=काञ्चुकी, प्राप्तः=आगतः, तत्रभवत्या=माननीयया, अङ्गारवत्या=एतन्नामिकया, महासेनभार्यया, च=तथा, प्रेषिता=प्रहिता, वासवदत्ताधात्री-वासवदत्तायाः=एतन्नामिकायाः, उदयनभार्यायाः, धात्री=उपमाता "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु"-इत्यमरः, वसुन्धरा नाम=एतदभिधेया, च=तथा, प्रतीहारं=द्वारदेशं, "स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः"-इत्यमरः, उपस्थितौ=विद्यमानौ, स्त इति शेषः, इति=इत्थम् ।

प्रतीहारी—आर्य !=मान्य ! अदेशकालः—देशश्च कालश्च देशकालौ, अविद्यमानौ देशकालौ यस्य स तथोक्तः, देशकालरहित इति भावः, अवसर इति शेषः, प्रतीहारस्य=द्वारपालस्य "प्रतीहारो द्वारपालद्वास्थद्वास्थितदर्शकाः"—इत्यमरः, अस्ति । देशकालरहितोऽयमनुपयुक्तोऽस्त्यवसरो मम प्रतीहारस्य राजोदयनपार्श्वे गमनायेति यावत् ।

काञ्चुकीय—माननीये ! वत्सदेश की पुनः प्राप्ति से बढ़े हुए उदय (यश=अभ्युत्थान) वाले उदयन को निवेदन करो, निवेदन करो—महासेन के पास से ये रैभ्यगोत्र वाले काञ्चुकीय और आदरणीया महारानी अङ्गारवती के द्वारा प्रेषित आर्या वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाय द्वार पर उपस्थित हैं ।

प्रतीहारी—आर्य ! इस समय द्वारपाल के जाने के लिए उचित देश (स्थान) और काल नहीं हैं ।

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज । भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति । [शृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।]

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

काञ्चुकीयः—कथं=कस्मात् कारणात्, अदेशकालः देशकालरहितः अवसर इति शेषः, नामेति वाक्यसौन्दर्ये ?

प्रतीहारी—अद्य=अस्मिन् दिवसे, भर्तुः=स्वामिनः, उदयनस्येति भावः, सूर्यामुखप्रासादगतेन—सूर्यामुखं चासौ प्रासादः सूर्यामुखप्रासादः=एतन्नामको राजोदयनमुख्यप्रासाद इति भावः, तं गतः तेन=पद्मावतीमुख्यहर्म्यप्राप्तेन, केनापि=अज्ञातेन जनेनेति शेषः, वीणा=विपञ्ची, घोषवती इत्यभिधेया, "वीणा तु वल्लकी विपञ्ची स्यात्"—इत्यमरः, वादिता=ताडिता । तां=वीणां, वल्लकी-ध्वनिमिति भावः, श्रुत्वा=आकर्ण्य, भर्त्रा=स्वामिनोदयनेन, भणितं=कथितम्—घोषवत्याः=एतन्नामिकायाः वासवदत्तासम्बद्धवीणायाः, शब्दः=ध्वनिः, इव=यथा, श्रूयते=आकर्ण्यते, इति=इत्थम् ।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः=तदनन्तरं किञ्जातमिति त्वरागर्भः प्रश्नः काञ्चुकीयस्येति यावत् ।

काञ्चुकीय—कैसे (राजा के पास जाने के लिए) अनुकूल देश और काल नहीं हैं ?

प्रतीहारी—आर्य ! सुनिए । आज महाराज के सूर्यामुख (प्रमुख उच्च अट्टालिका जिसमें महारानी रहती हैं) महल में जाने पर किसी के द्वारा वीणा बजायी गई । उसे सुनकर महाराज (स्वामी) ने कहा—घोषवती नामक वीणा के शब्द के समान सुनाई पड़ रहा है ।

काञ्चुकीय—तब क्या हुआ ? तब क्या हुआ ?

प्रतीहारी--तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो--कुदो इमाए वीणाए आगमो त्ति। तेण भणिअं--अम्होहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणो त्ति। तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपज्जाउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं--दिट्ठासि घोसवदि! सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य! ईदिसो अणवसरो। कहं णिवेदेमि? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः-कुतोऽस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्-अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति। तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन वाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्--

---

प्रतीहारी--ततः=तदनन्तरं, तत्र=तस्मिन् स्थाने, यत्राज्ञातेन जनेन वीणा वादिता तत्रेति भावः, गत्वा, पृष्टः=जिज्ञासितः-कुतः=कस्मात् स्थानात्, अस्याः=एतस्याः, वीणायाः=वल्लक्याः, "वीणा तु वल्लकी विपञ्ची स्यात्"--इत्यमरः, आगमः=प्राप्तिः, इति=इत्यम्। तेन=अज्ञातेन जनेन, भणितं=कथितम्--अस्माभिः=मयेति भावः, नर्मदातीरे-नर्मदायाः=रेवायाः "रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलन्यका"--इत्यमरः, तीरे=तटे, कूर्चगुल्मलग्ना-कूर्चानां=दर्भाणां, गुल्मः तस्मिन् लग्ना दर्भस्तवकव्यापृतेति यावत् वीणेति शेषः, दृष्टा=वीक्षिता। यदि=चेत्, अनया=वीणया, प्रयोजनं=कार्यं, तर्हि इति शेषः, भर्त्रे=स्वामिने उदयनायेति भावः, उपनीयतां=समर्प्यताम्, इति=इत्थम्। च=तथा, तां=पूर्वोक्ताम्, उपनीतां=समर्पिताम्, अङ्के=क्रोडे "उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः"--इत्यमरः, कृत्वा=विधाय, संस्थाप्येति भावः, भर्ता=स्वामी, मोहं=मूर्च्छां, गतः=आसादितः। ततः=तदनन्तरं, मोहप्रत्यागतेन-मोहात्=मूर्च्छातः, प्रत्यागतस्तेन, मूर्च्छानिवृत्तेनेति भावः, लब्धसंज्ञेनेति यावत्, वाष्प-

---

प्रतीहारी--तदनन्तर वहाँ जाकर महाराज ने पूछा--तुम्हारे पास यह वीणा कहाँ से आई? उसने कहा--मैं नर्मदा (नदी) के किनारे कुशों की झाड़ी में पड़ी हुई इस वीणा को देखा। महाराज को इससे प्रयोजन हो तो, सौंपी जाय। (उसके द्वारा) समर्पित उस वीणा को गोद में रखकर महाराज मूर्छित हो गये। फिर होश में आने पर आँसू से व्याप्त मुख वाले महाराज ने कहा--

दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयामि ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी-अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [**आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यमुखप्रसादा॰ दवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]**

काञ्चुकीयः—भवति । तथा ।

पर्याकुलेन–वाष्पेण = अश्रुणा, पर्याकुलं = परिव्याप्तं तेन, अश्रुपरिव्याप्तेनेति, भावः, मुखेन = वदनेन, भर्त्रा = स्वामिनोदयनेनेति भावः, भणितं = कथितं—घोषवति ! = एतन्नामिके वीणे !, त्वमिति शेषः, दृष्टासि = वीक्षितासि । परन्त्विति शेषः, सा = वासवदत्ता, खलु = निश्चयेन, न = नहि, दृश्यत = अवलोक्यते, इति = इत्थम् । आर्य ! = मान्य ! काञ्चुकीय !! कथं = केन प्रकारेण, निवेदयामि = विज्ञापयामि ।

काञ्चुकीयः—भवति ! = मान्ये !, निवेद्यतां = विज्ञाप्यताम् त्वयेति शेषः, इदमपि = एतदपि, तदाश्रयं = वासवदत्तासम्बद्धमिति भावः, एवेति निश्चये ।

प्रतीहारी—आर्य ! = मान्य !, इयं = एषाऽहमिति शेषः, निवेदयामि = विज्ञापयामि । एषः = अयं, भर्ता = स्वामी, उदयन इति भावः, सूर्यमुखप्रासादात् = पद्मावतीमुख्यहर्म्यात्, अवतरति = अवरोहति । तत् = तस्मात् कारणात्, इहैव = अस्मिन्नेव स्थले, निवेदयिष्यामि = विज्ञापयिष्यामि ।

काञ्चुकीयः—भवति ! = मान्ये ! तथा = तादृशं करोतु इति भावः ।

अयि घोषवति ! तुम देखी गयी, पर वे (वासवदत्ता) नहीं देखी जा रही हैं । आर्य ! इस प्रकार जाने के लिए (उचित) समय नहीं है । कैसे निवेदन करूँ ?

काञ्चुकीय—भद्रे ! निवेदन करो ! यह निवेदन भी वासवदत्ता से ही सम्बन्ध रखता है ।

प्रतीहारी—आर्य ! यह मैं निवेदन करती हूँ । ये महाराज सूर्यमुख महल से उतर रहे हैं । तो यहीं पर निवेदन करूँगी ।

काञ्चुकीय—कल्याणि ! ऐसा ही करो ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

मिश्रविष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।

उभौ निष्क्रान्तौ । मिश्रविष्कम्भकः = समाप्तोऽयं मिश्रविष्कम्भकः इति ।

टिप्पणी—विष्कम्भकः—विष्कम्भ या विष्कम्भक भूत और भावी घटनाओं की सूचना के लिए होता है । इसका प्रयोग नाटक में संक्षेप के उद्देश्य से किया जाता है । यह प्रथम अंक के आदि में भी रखा जाता है । जिस विष्कम्भक में एक या दो मध्यम कोटिक पात्र आते हैं उसे "शुद्ध विष्कम्भक" कहा जाता है, तथा जिसमें नीच और मध्यम कोटिक पात्र आते हैं उसे "मिश्रविष्कम्भक" कहा जाता है । साहित्यदर्पण में इसका लक्षण कविराज विश्वनाथ ने किया है—

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।।"

(ततः = तदनन्तरं, राजा = वत्सराजादयनः, प्रविशति = प्रवेशं करोति, विदूषकश्च = वसन्तकश्च प्रविशति)

राजा—श्रुतिसुखनिनदे⋯⋯अरण्यवासम् ।।१।।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमिति नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमस्तीदं पद्यम् । पद्येनानेन महाकविर्भासः वीणादर्शनात् वासवदत्ताविरहोदीप्तशोकस्योदयनस्य चित्रमुपस्थापयति ।

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता (सती सम्प्रति) कथं नु विहगगणरजोविकीर्णदण्डा (सती) प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता असि ।।१।।

(दोनों निकल जाते हैं)

(मिश्र विष्कम्भक समाप्त हुआ)

(तब राजा प्रवेश करते हैं और विदूषक भी)

विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

पदार्थः--हे श्रुतिसुखनिनदे ! = हे कानों को सुखद निनाद प्रदान करने वाली (वीणे), देव्याः = देवी (वासवदत्ता) के, स्तनयुगले = दोनों स्तनों पर अर्थात् दोनों स्तनों के मध्य में, च = और, जघनस्थले = जघनस्थल में, सुप्ता = सोनेवाली (होती हुई तुमने इस समय) कथं नु = किस प्रकार से, विहगगण-रजोविकीर्णदण्डा-पक्षियों के समूह द्वारा उड़ाई गई धूलों से व्याप्त (आच्छादित) दण्डवाली होकर, प्रतिभयं=भयङ्कर, अरण्यवासं = वनवास को, अध्युषितासि= ग्रहण कर लिया है ।

लालमती व्याख्या— हे श्रुतिसुखनिनदे !-- श्रुत्योः=कर्णयोः सुखः, श्रुति-सुखो निनदो = ध्वनिः यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ, कर्णसुखदरवे ! इति भावः, "शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः" - इत्यमरः, वीणे ! इति शेषः, देव्याः=महा-देव्याः, वासवदत्ताया इति भावः, स्तनयुगले-स्तनयोः युगलं तस्मिन् कुचयुग्मे इति भावः जघनस्थले-जघनस्य =कटिपुरोभागस्य, स्थलं=स्थानं तस्मिन्, च = तथा, सुप्ता =अवसुप्ता, सती पूर्वमिति शेषः, सम्प्रति इति शेषः, कथं = केन प्रका-रेण, नु इति वितर्के, विहगगणरजोविकीर्णदण्डा-विहगानां = पक्षिणां, गणः = समूहः, तस्य रजोभिः = धूलिभिः, विकीर्णो = व्याप्तो, दण्डः = प्रवालो यस्य सा तथोक्ता, खगनिकरधूलिव्याप्तप्रवालेति यावत्, "वीणादण्डः प्रवालः स्यात्"— इत्यमरः, सतीति शेषः, प्रतिभयं = भयङ्करं, "दारुणं भीषणं भीष्मं भीमं घोरं भयानकं भयङ्करं प्रतिभयं रौद्रम्" इत्यमरः, अरण्यवासं-अरण्यं = वनमेव वासः= निवासस्तं, वनवासमिति यावत्, अध्युषिता = प्राप्ता, असि = वर्तसे ।

राजा —कानों को सुख देने वाले शब्दों से संयुक्त अयि वीणे ! (पहले तुम) महारानी वासवदत्ता के स्तनों और जंघों के बीच में सोती थी, अभी पक्षियों से उड़ाई गई धूलों से आच्छादित दण्डवाली होकर कैसे भयङ्कर वनवास को प्राप्त हो गई हो ? ॥१॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितनानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥१॥

छन्दोऽलङ्कारौ—पद्येऽस्मिन् पुष्पिताग्रावृत्तम् । तद्यथा—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।" "वनवास"मित्यत्र रूपकम् । तद्यथा—"रूपकं रूपिताऽऽरोपाद्विषये निरपह्नवे ॥"

अपि च = अन्यच्च, हे घोषवति ! = एतदभिधेये वीणे !, त्वमिति शेषः, अस्निग्धाऽसि = प्रेमरहिता वर्तसे । या = वीणा, तपस्विन्या = वासवदत्ताया इति भावः, न = नहि, स्मरसि = विचिन्तयसि त्वमिति शेषः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यमस्ति । पद्येनानेन वत्स-राजोदयनो घोषवतीं दृष्ट्वा वासवदत्तोद्दीप्तविरहस्तद्वीणामुपालभते ।

अन्वयः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि) ॥२॥

पदार्थः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि = श्रोणी (कटिभाग) में धारण करना और बगल में दबाना, खेदस्तनान्तरसुखानि = थक जाने से स्तनों के बीच में सुखपूर्वक, उपगूहितानि = आलिङ्गन देना, विरहे = विरह में, मां = मुझ (उदयन) को, उद्दिश्य = लक्ष्य कर, परिदेवितानि = विलाप करना, च = और, वाद्यान्तरेषु = वीणा-वादन के मध्य-मध्य में, सस्मितानि = मुस्कुराहट से युक्त, कथितानि = कहे गये वचनों को (न स्मरसि = तुम नहीं याद करती हो) ॥२॥

और भी अयि घोषवति ! तू प्रेम से रहित है. जो कि उस तपस्विनी (वास-वदत्ता) को नहीं स्मरण कर रही हो; कटि प्रदेश में धारण करना और बगल में रखना, परिश्रम होने पर स्तनों के बीच में सुखपूर्वक आलिङ्गन करना, वियोग में मुझे उद्देश्य कर विलाप करना और वीणा बजाने के बीच-बीच में मुस्कुराहट के साथ बात-चीत करना (इन सभी घटनाओं को तू याद नहीं करती ।) ॥२॥

विदूषकः—अलं दाणि भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्।

लालमती व्याख्या—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि–श्रोण्या = कट्या, समुद्वहनानि = धारणानि, पार्श्वेन = कक्षाऽधोभागेन, निपीडितानि = सम्पीडितानि, श्रोणीसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च, तानि, "कटिः श्रोणिः"–इत्यमरः, खेदस्तनान्तरसुखानि–स्तनयोः = पयोदयोः, अन्तरम् = अन्तरालं तस्मिन् सुखानि = शातानि, "शर्मशातसुखानि च"–इत्यमरः, खेदे = परिश्रमे आयासे इति भावः, स्तनान्तरसुखानि, आयासे सति कुचमध्यानन्दकराणीति यावत्, उपगूहितानि = आलिङ्गनानि, विरहे = विप्रयोगे सतीति शेषः, माम् = उदयनम्, उद्दिश्य = अभिलक्ष्य, परिदेवितानि = विलपितानि "विलापः परिदेवनम्"–इत्यमरः, च = तथा, वाद्यान्तरेषु–वाद्यस्य = वीणायाः इति भावः, अन्तराणि = अवकाशाः "अन्तरमवकाशाऽवधिपरिधानाऽन्तर्धिभेदतादर्थ्ये"–इत्यमरः, तेषु, वीणावादनावकाशेष्विति यावत्, सस्मितानि–स्मितेन = ईषद्धास्येन, सहितानि = संयुक्तानि, कथितानि = भणितानि वचनानीति भावः, न = नहि, स्मरसि = विचिन्तयसि, अत एव अयि घोषवति ! त्वमस्निग्धाऽसीति भावः।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम्। तद्यथा–"उक्त वसन्ततिलका तभजा जगौ गः"।

विदूषकः—अतिमात्रम् = अत्यधिकम्, इदानीं = सम्प्रति, सन्तप्य = खेदं कृत्वा, अलं = पर्याप्तं, भवान् = उदयनः, विग्नो मा भूदिति शेषः।

राजा वयस्य != मित्र !, मा = नहि, एवम् = इत्थम्।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात्समुद्धृतमिदम्पद्यमस्ति। अनेन पद्येन वासवदत्तावीणादर्शनान्तरं राजोदयनो विदूषकम्प्रति तद्विरहजनितं शोकं श्रावयति।

विदूषक—इस समय आप ज्यादा सन्ताप करके (खिन्न न हों)।

राजा—मित्र। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय ।

अन्वयः—चिर प्रसुप्तो मे कामः वीणया प्रतिबोधितः, तां देवीं तु न पश्यामि, यस्याः घोषवती प्रिया (आसीत्) ।

पदार्थ—चिरप्रसुप्तः = बहुत समय से सोया हुआ, मे = मेरा, कामः= अभिलाषा (प्रेम), वीणया = वीणा के द्वारा, प्रतिबोधितः = जगा दिया गया है । तां = उस, देवीं = देवी को (वासवदत्ता को), न = नहीं, पश्यामि = देखता हूँ, यस्याः = जिसकी, घोषवती = घोषवती नाम की वीणा, प्रिया = प्रिय (आसीत् = थी) ।

लालमती व्याख्या—चिरप्रसुप्तः-चिरं = बहुकालं, प्रसुप्तः = शयितः, मे = ममोदयनस्य, कामः = तर्षः, "कामोऽभिलाषस्तर्षश्च"-इत्यमरः, वासवदत्ता-विषयकमन्मथ इति भावः, वीणया = वल्लक्या, "वीणा तु वल्लकी विपञ्ची स्यात्"-इत्यमरः, घोषवत्येति यावत्, प्रतिबोधितः = प्रजागरितः, उद्बोधितः इति भावः, तां पूर्वोक्तां वासवदत्तामिति यावत्, देवीं = महाराज्ञीं, न = नहि, तु, पश्यामि = अवलोकयामि, यस्याः = वासवदत्तायाः, घोषवती = इयं पुरोवर्तमाना घोषवतीत्यभिधेया वीणेति भावः, प्रिया = स्निग्धा, अभीष्टेति यावत्, आसीदिति शेषः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ।

वसन्तक ! = हे विदूषक ! शिल्पिजनसकाशात्—शिल्पं = क्रियाकौशलं यस्य स शिल्पी स चाऽसौ जनः = लोकः "लोकस्तु भुवने जने"—इत्यमरः, तस्य सकाशात् = पार्श्वात्, नवयोगां—नवः = नूतनः, योगः = तन्त्र्यादिसंयोगः, यस्याः सा तां, घोषवतीम् = तदभिधेयां वीणां, कृत्वा = विधाय, शीघ्रं = सपदि, "शीघ्रं सपदि तत्क्षणे"—इत्यमरः, आनय ।

बहुत समय से सोये हुए मेरे (वासवदत्ता के प्रति) अभिलाष (काम) को वीणा ने जगा दी है । जिसे घोषवती प्रिय थी, उस महारानी वासवदत्ता को मैं नहीं देख पा रहा हूँ ॥३॥

वसन्तक ! कारीगरों के पास से घोषवती को मरम्मत करा कर जल्दी लाओ ।

विदूषकः-जं भवं आणवेदि। (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः।) [यद् भवानाज्ञापयति।]

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भसगोत्तो कंचुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताधत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [जयतु भर्ता। एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतिहारमुपस्थितौ।]

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम्।

विदूषकः—(वीणां=वल्लकीं, गृहीत्वा=आदाय, निष्क्रान्तः=निर्गतः) यद्=यादृशं, भवान्=उदयनः, आज्ञापयति=आदिशति।

(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा)

प्रतीहारी—जयतु=विजयतां, भर्ता=स्वामी, उदयन इति भावः। एषः=अयं, खलु=निश्चयेन, महासेनस्य=उज्जयिनीनरेशस्य, सकाशात्=पार्श्वात्, रैभ्यसगोत्रः=रैभ्यगोत्रोत्पन्नः, काञ्चुकीयः=कञ्चुकी, देव्या=महाराज्ञ्या, अङ्गारवत्या=एतन्नामिकया, प्रेषिता=सम्प्रेषिता, आर्या=मान्या, वसुन्धरानाम=तन्नामिका, वासवदत्ताधात्री-वासवदत्तायाः=प्रद्योतपुत्र्याः, धात्री=उपमाता "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु"—इत्यमरः, च=तथा, प्रतीहारं=द्वारदेशम्, उपस्थितौ=समायातौ स्तः।

राजा—तेन=कारणेन, हि=निश्चयेन, पद्मावती=एतदभिधेया महाराज्ञी, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, आहूयताम्=आकार्यताम्।

विदूषक—आप जैसा आदेश करें। (वीणा लेकर जाता है)।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो। महाराज महासेन के यहाँ से रैभ्यगोत्रीय काञ्चुकीय और महारानी अङ्गारवती के द्वारा प्रेषित आर्या वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाय द्वारभूमि पर उपस्थित हैं।

राजा—तब पद्मावती को बुलाओ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतिहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः

प्रतीहारी—भर्ता=स्वामी, यद्=यादृशम्, आज्ञापयति=आदिशति ।

(निष्क्रान्ता = निर्गता)

राजा—किन्नु इति वितर्के, खलु = निश्चयेन, शीघ्रं=सत्वरम्, इदानीं= सम्प्रति, अयं=एषः, मत्परिणयो राज्यप्रापणञ्चेति भावः, वृत्तान्तः=उदन्तः, "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः"—इत्यमरः, महासेनेन=उज्जयिनीनरेशप्रद्योतेन, विदितः=ज्ञातः ?

(ततः=तदनन्तरं, पद्मावती = उदयनभार्या, प्रविशति = प्रवेशं करोति, प्रतीहारी = द्वारपालिका, च = तथा, प्रविशति)

प्रतीहारी—एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, भर्तृदारिका=महाराज्ञी ।

पद्मावती—आर्यपुत्रः = पतिदेवः, जयतु = विजयताम् ।

राजा—पद्मावति ! किमिति प्रश्ने, श्रुतं = निशमितम् ? महासेनस्य = वासवदत्तापितुः, सकाशात् = पार्श्वात्, रैभ्यसगोत्रः=रैभ्यगोत्रीयः, काञ्चुकीयः= कञ्चुकी, प्राप्तः = आगतः, तत्रभवत्या = माननीयया, अङ्गारवत्या = तन्ना-

---

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा । (चली जाती है) ।

राजा—महासेन ने क्या यह वृत्तान्त (मेरा पद्मावती के साथ विवाह और राज्य प्राप्ति) शीघ्र जान लिया है ?

(तब पद्मावती और प्रतीहारी प्रवेश करती हैं) ।

प्रतीहारी—राजकुमारी, आइए आइए ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—पद्मावति ! क्या तुमने सुना ? महासेन के पास से रैभ्यगोत्रीय

प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

पद्मावती-अय्यउत्त ! पिअं मे आदिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं । [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

राजा--अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं-वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

मिकया, वासवदत्ताजनन्या, च = तथा, प्रेषिता = सम्प्रेषिता, आर्या = मान्या, वसुन्धरा नाम = एतदभिधेया, वासवदत्ताधात्री-वासवदत्तायाः = मे उदयनस्य प्रथमभार्यायाः, धात्री = उपमाता, च = तथा, प्रतीहारं=द्वारदेशम्, उपस्थितौ = समुपस्थितौ, इति = इत्थम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, मे = मम पद्मावत्याः, प्रियम् = अभीष्टमस्तीति शेषः, ज्ञातिकुलस्य ज्ञातेः = बन्धोः "सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धु-स्वस्वजनाः समाः"-इत्यमरः, कुलं = वंशस्तस्य, कुशलवृत्तान्तं = क्षेमसमाचारः ।

राजा—भवत्या = माननीयया पद्मावत्येति भावः, एतद् = इदम् अनु-रूपं = समुचितं, स्वकुलसदृशमिति भावः, अभिहितम् = कथितम्-वासवदत्ता-स्वजनः-वासवदत्तायाः = प्रथममहाराज्ञ्याः, स्वजनः = बान्धवः, मे = मम पद्मावत्याः स्वजन = बान्धव, इति = इत्थम् । पद्मावति ! = महादेवि ! आस्यताम् = उपविश्यताम् । किमिति प्रश्ने, इदानीं = सम्प्रति, न = नहि, आस्यते = उपविश्यते ?

काञ्चुकीय और आदरणीया अङ्गारवती के द्वारा प्रेषित आर्या वसुन्धरा वासव-दत्ता की धाय द्वार पर उपस्थित हैं ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! ज्ञाति (बन्धु) कुल का कुशलसमाचार सुनना मुझे प्रिय है ।

राजा—तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ता के बन्धुजन तुम्हें प्रिय हैं । पद्मावति ! बैठो । इस समय तुम बैठ क्यों नहीं रही हो ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यति ?]

राजा—कोऽत्र दोषः ?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गाहो त्ति उदासीणं विअ होदि । [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति ।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति । तस्मादास्यताम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, किमिति प्रश्ने, मया = पद्मावत्या, सह = साकम्, उपविष्टः = आसीनः, एतं = समुपस्थितं, जनम् = उज्जयिनीजनं, द्रक्ष्यति = अवलोकियष्यति भवानुदयन इति शेषः ?

राजा—कोऽत्र = कोऽस्त्यत्र दर्शनविषये, दोषः = अवगुणः ? काक्वा व्यज्यते त्वया सहोपविष्ट एवाहं वासवदत्तासम्बन्धिजनं द्रक्ष्यामि, त्वया पद्मावत्याऽप्यत्र केनापि प्रकारेण शङ्का मा करणीयेति भावः ।

पद्मावती—आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्य, अपरः = अन्यः, परिग्रहः = पत्नी, "पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः"—इत्यमरः, इति = इत्थं, जन इति शेषः, उदासीनमिव = तादृशं यथा स्यात् तथैव, भवति = वर्तते ।

राजा—कलत्रदर्शनार्हं—कलत्रस्य = भार्यायाः "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः"—इत्यमरः, दर्शनम् = अवलोकनं, तदर्हतीति तम् = भार्यावलोकनयोग्यमिति भावः, जनं = पुरुषं गृहस्थमिति भावः, मामिति शेषः, कलत्रदर्शनात् = भार्याविलोकनात्, परिहरति = वर्जयति, इति = इत्थं, बहुदोषं = प्रचुरदूषणम्, उत्पादयति = जनयति । तस्मात् = कारणात्, आस्यताम् = उपविश्यताम् ।

पद्मावती—पतिदेव ! क्या मेरे साथ बैठकर आप उन लोगों को देखेंगे ?

राजा—इसमें दोष ही क्या है ?

पद्मावती—"आर्यपुत्र की दूसरी पत्नी है" यह सोचकर उन्हें उदासीनता होगी ।

राजा—पत्नी-दर्शन के योग्य (गृहस्थ) जन (व्यक्ति) को पत्नी को को देखने से रोकता है यह बात बहुत दोष पैदा करती है । इसलिए बैठो ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविश्य) अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ! आर्यपुत्र ! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता ।]

राजा—पद्मावति ! एवमेतत् ।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।

पद्मावती—यत् = यादृशम्, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, आज्ञापयति = आदिशति । आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, तातः = जनको, महासेनचण्डप्रद्योतः, अम्बा = जननी॰ अङ्गारवती, वा = अथवा, किन्नु इति वितर्के, खलु = निश्चयेन, भणिष्यति = कथयिष्यति, सूचयिष्यतीति यावत्, इति = इत्थं, विग्ना = उद्विग्ना, समुत्सुकेति भावः, इव = यथा, संवृता = सञ्जाताऽस्मीति शेषः ।

राजा—पद्मावति ! = प्रिये महाराज्ञि ! एवम् = इत्थम्, एतद् = इदम् । त्वच्छङ्कनमुचितमस्ति, ममापि चित्तमित्यमेव सन्देहं प्रकटयति ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यमस्तीति । अनेन पद्येन वासवदत्तादहनकारणात् प्रद्योतात् भयग्रस्तः सन् उदयनः स्वकीयं हृदयस्थमुद्वेगमुपस्थापयति पद्मावतीम्प्रति ।

अन्वयः—किं वक्ष्यति इति मे हृदय परिशङ्कितम् । मया कन्या अपहृता अपि सा च न रक्षिता । चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि ॥४॥

पद्मावती—पतिदेव जैसी आज्ञा करते हैं (वैसा करती हूँ) । (बैठकर) पतिदेव ! पिता (महासेन) या माता (अङ्गारवती) क्या कहेंगी ? ऐसा विचार कर मैं डरी हुई सी हो गई हूँ ।

राजा—पद्मावति ! यह ऐसा ही है ।

पिता (महासेन) या माता (अङ्गारवती) क्या कहेंगी ऐसा सोचकर मेरा हृदय सशङ्कित है । मैं (पहले) उनकी कन्या को उड़ा ले आया

भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः

पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥ ४ ॥

पदार्थः—किं = क्या, वक्ष्यति = कहेंगे, इति = इस कारण से, मे = मेरा हृदयं = चित्त, परिशङ्कितम् = शङ्का से युक्त है। मया = मेरे द्वारा, कन्या= उनकी पुत्री (प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता) अपहृता = चुराई गयी, अपि= भी, सा = वह (वासवदत्ता) न = नहीं, रक्षिता = रक्षित हुई। चलैः=चञ्चल, भाग्यैः = भाग्य से, महदवाप्तगुणोपघातः = बड़ों के गुणों को नष्ट करने वाला, पितुर्जनितरोषः = पिता में उत्पन्न कर दिया है क्रोध जिसने, ऐसे, पुत्रः = पुत्र के, इव = समान, भीतः = डरा हुआ, अस्मि = हूँ।

लालमती व्याख्या—किमिति वितर्के, वक्ष्यति = कथयिष्यति, वासवदत्ताजनको महासेनः अम्बा वा अङ्गारवती इति शेषः, इति = इत्थं, वासवदत्तादहनविषये, पद्मावतीपरिणयविषये वेति शेषः, मे = ममोदयनस्य, हृदयं = मनः "चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः"—इत्यमरः, परिशङ्कितं = शङ्काकुलं वर्तत इति शेषः। मया = उदयनेन, कन्या = कुमारी, अङ्गारवती—महासेनयोरात्मजा वासवदत्तेति भावः अपहृता = मुषिता, उज्जयिनीतः परिणयेन विनैव कौशाम्बीमानीतेति भावः, अपि, सा च = अपहृता तादृशी वासवदत्ता तथेति भावः, न = नहि, रक्षिता = त्राता, अग्निदाहादिति शेषः, इत्थम्मयाऽपराधद्वयं कृतमिति भावः, चलैः = चपलैः, भाग्यैः = दैवैः प्रारब्धकर्मभिरिति यावत् "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"—इत्यमरः, महदवाप्तगुणोपघातः—गुणानामुपघातः, गुणोपघातः, अवाप्तो गुणोपघातो येन सः, महतामवाप्तगुणोपघातः महदवाप्तगुणोपघातः श्रेष्ठजनप्राप्तगुणविनाश इति यावत् एतादृशोऽहमुदयन इति शेषः, पितुः = जनकस्य, जनितरोषः—जनितो रोषो येन तथोक्तः उत्पादितामर्षः "कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ"—इत्यमरः, पुत्रः = तनयः, इव = यथा, भीतः = भयग्रस्तः, अस्मि = वर्ते।

(छीन लिया) फिर उसकी रक्षा नहीं की। चञ्चल भाग्यों से बड़ों के गुणों को नष्ट करने वाला मैं पिता को क्रुद्ध करने वाले पुत्र के समान डरा हुआ हूँ ॥ ४ ॥

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम्। तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।"। अलङ्कारश्चात्रोपमा। तद्यथा साहित्य-दर्पणे—"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः"।

पद्मावती—प्राप्तकाले–प्राप्तश्चासौ कालः आसादितसमये इति भावः, किं=वस्तु, रक्षितुं=त्रातुं, न = नहि, शक्यं = शक्तिविषयभूतम्, भवतीति शेषः। अत एवोचितावसराऽभावात् वासवदत्ता न रक्षितेति भावः।

प्रतीहारी—एषः = अयं, काञ्चुकीयः=महासेनकञ्चुकी, धात्री=वासव-दत्तोपमाता, च=तथा, प्रतीहारं=द्वारदेशम्, उपस्थितौ=विद्यमानौ स्त इति शेषः।

राजा—शीघ्रं=द्राक्, प्रवेश्यतां = प्रवेशं विधीयताम्।

काञ्चुकीयः—भर्ता=स्वामी, यद् = यादृशम्, आज्ञापयति = आदि-शति। (निष्क्रान्ता=निर्गता)

(ततः = तदनन्तरं काञ्चुकीयः = उज्जयिन्नीकञ्चुकी, प्रविशति=प्रवेशं करोति, धात्री = वासवदत्तोपमाता वसुन्धरा प्रविशति, प्रतीहारी = द्वार-पालिका विजया च प्रविशति)

पद्मावती—उचित समय पर क्या नहीं बचाया जा सकता है ?

प्रतीहारी—ये काञ्चुकीय और धाय द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—उन्हें शीघ्र प्रवेश कराओ।

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा। (चली जाती है।

(तब काञ्चुकीय, धाय और प्रतीहारी प्रवेश करती हैं।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः ।

काञ्चुकीयः—सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य..............कुशलं च देव्याः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताक्नितांहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमस्ति । पद्येनानेन महासेनकाञ्चुकीयः जामातृदेशप्रापणात् स्वकीयं हर्षं वासवदत्तामरणाच्च शोकमुपस्थापयति ।

अन्वयः—इदं सम्बन्धिराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः पुनः नृपसुतानिधनं स्मृत्वा महान् विषादः (अस्ति) हे दैव ! परैः अपहृतं राज्यं देव्याः कुशलं च स्यात् तर्हि भवता किं नाम न कृतम् ?

पदार्थः—इदं = इस, सम्बन्धिराज्यं = सम्बन्धी (कौटुम्बिक) राज्य को, एत्य = आकर अर्थात् कुटुम्ब उदयन के राज्य में आकर, महान्=बहुत, प्रहर्षः = हर्ष (हो रहा है) पुनः = फिर, नृपसुतानिधनं = राजकुमारी वासवदत्ता की मृत्यु, स्मृत्वा = जानकर, विषाद = दुःख (हो रहा है), हे दैव ! = अरे भाग्य !, परैः=दूसरों (शत्रुओं) के द्वारा, अपहृतं=छीने गये, राज्यं=राज्य (की प्राप्ति के साथ), यदि=अगर, देव्याः=देवी (वासवदत्ता) का, कुशलं=कुशल होता तो, भवता = आपके द्वारा, किं नाम न कृतं = (हमारा) क्या (उपकार) नहीं किया गया होता ?

लालमती व्याख्या—इदत्=एतत्, सम्बन्धिराज्यं=सम्बन्धिनः = भर्तृजामातुरुदयस्येति भावः, राज्यं=राष्ट्रम्, एत्य = आगत्य, ममेति शेषः, महान्=अधिकः, हषः=प्रीतिः, "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः"—इत्यमरः, अस्तीति शेषः,पुनः=मुहुः, नृपसुतानिधनं—नृपस्य=अधिपस्य, प्रद्योतस्येति भावः, सुतायाः=पुत्र्याः, वासवदत्ताया इति भावः, निधनं=मृत्युं, स्मृत्वा=विचिन्त्य, महान् = अधिको,

---

काञ्चुकीय—इस सम्बन्धी (दामाद उदयन) के राज्य में आकर महान् हर्ष हा रहा है पर राजकुमारी (वासवदत्ता) के मरण को सुनकर

किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥ ६ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा; उवसप्पदु अय्यो । [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

धात्री—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

विषादः=सन्तापः, ममास्तीति शेषः, हे दैव !=विधे !, "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः"—इत्यमरः, परैः = अन्यैः, शत्रुभिरिति यावत्, अपहृतम् = स्वायत्तीकृतं, राज्यं=राष्ट्रं, देव्याः=राजमहिष्याः वासवदत्ताया इति भावः कुशलं= कल्याणं च=तथा, स्यात् = भवेत्, यदि = चेत् तर्हीति नाम शेषः, भवता= त्वया, दैवेनेति भावः, किं नाम = क्षेममिति भावः, न = नहि, कृतं = विहितं स्यादिति शेषः । अस्मद्भर्तृजामात्रोदयनेन शत्रुभिरधीनीकृतं राज्यं च पुनः प्राप्तं तथैव वासवदत्ताया अपि क्षेमं स्याच्चेत् अस्माकं सर्वं खल्वभीष्टं सम्पन्नं स्यादिति तात्पर्यम् ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

प्रतीहारी—एषः=अयं,भर्ता=स्वामी, उदयन इति भावः उपसर्पतु= उपव्रजतु, आर्यः = मान्यः काञ्चुकीय इति यावत् ।

काञ्चुकीयः—(उपेत्य = उदयनसमीपं गत्वा) आर्यपुत्रः = महाराजः, जयतु=सर्वोत्कर्षेण वर्ततामिति भावः ।

धात्री—भर्ता = स्वामी, महाराजोदयन इति यावत्, जयतु= विजयताम् ।

महान् दुःख हो रहा है । अरे दुर्दैव ! यदि शत्रुओं से छीने गए राज्य की प्राप्ति के साथ ही देवी वासवदत्ता का भी कुशल होता तो तूने क्या नहीं किया होता ?

प्रतीहारी—ये महाराज हैं । आर्य ! इनके पास जायें ।

काञ्चुकीय—(निकट जाकर) आर्यपुत्र (महाराज, दामाद) की जय हो ।

धाय—स्वामी (दामाद) की जय हो ।

राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयाऽस्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ? ॥ ६ ॥

राजा—(सबहुमाननं = बहुमानं यथा स्यात्तथा, तेन सहितं = संयुक्तं) आर्य ! = मान्य !

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमस्तीदं पद्यम् । अनेन पद्येन वत्सराजोदयनः काञ्चुकीयम्प्रतिमहासेनस्य कुशलं पृच्छति ।

अन्वयः—पृथिव्यां राजवंश्यानाम् उदयाऽस्तमयप्रभुः (एवं च) मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा कुशली अपि (अस्ति) ।

पदार्थः—पृथिव्यां = पृथ्वी पर, राजवंश्यानां = समस्त राजाओं के वंशों के, उदयास्तमयप्रभुः = उदय तथा अस्त करने में समर्थ, मया काङ्क्षितबान्धवः = मेरे वे सम्बन्धी जिन्हें मैं बहुत चाहता हूँ (मेरे द्वारा वाञ्छित रिश्तेदार), सः = वे, राजा = राजा (महासेन चण्डप्रद्योत), कुशली = सकुशल, अपि = तो हैं ।

लालमती व्याख्या—पृथिव्यां = वसुन्धरायां, राजवंश्यानां—राज्ञाम् = अधिपानां, वंश्यानां = वंशोत्पन्नानां, राजकुलोत्पन्नानां समस्तक्षत्रियाणामिति यावत्, उदयाऽस्तमयप्रभुः—उदयनमुदयः, अस्तमयनमस्तमयः, उदयश्चास्तमयश्च उदयस्तमयौ तयोः, प्रभुः = सक्षमः, उन्नत्यवनतिसक्षम इति भावः, (तथा च) मया = उदयनेन, काङ्क्षितबान्धवः—काङ्क्षितम् = अभिलषितं, बान्धवं येन सः, अभिलषितबन्धुत्वः इति यावत्, सः = जगद्विदितः, राजा = सम्राट्, महासेनचण्डप्रद्योत इति भावः, कुशली—कुशलेन सहित इति भावः, अपि इति प्रश्ने, अस्तीति शेषः ? ॥ ६ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आर्य !

पृथ्वी पर समस्त राजकुल में उत्पन्न क्षत्रियों के उत्कर्ष और अपकर्ष करने में समर्थ और मुझसे बन्धुत्व (सम्बन्ध) की इच्छा रखने वाले वे राजा (महासेन) सकुशल तो हैं ॥ ६ ॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः। इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः। (उपविशति)

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? = अन्यत् किम् ? कुशली = कुशलसंयुक्तः अनामय इति भावः, महासेनः = चण्डप्रद्योतः। इहापि = कौशाम्बीराज्येऽपि, सम्बन्धिराज्ये इति भावः, सर्वंगतं—सर्वं गतं तत् = समस्तजनविषयकमिति भावः, कुशलम् = अनामयं, पृच्छति = अभिलषतीति यावत्।

राजा—(आसनात् = भद्रपीठात्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा) किमिति प्रश्ने, आज्ञापयति = आदिशति, महासेनः = उज्जयिनीनरेशः ?

काञ्चुकीयः—एतद् = आसनपरित्यजनमिति भावः, वैदेहीपुत्रस्य—वैदेह्याः पुत्रस्तस्य = विदेहराजकन्यात्मजस्येति यावत्, सदृशमनुरूपमेवास्तीति शेषः। ननु इति निश्चये, आसनस्थेनैव—आसने तिष्ठतीति तेन, भद्रपीठावस्थितेनेति भावः, भवता = मान्येन, जामात्रोदयनेनेति भावः, महासेनस्य = प्रद्योतस्य, सन्देशः = वचनं, श्रोतव्यः = श्रवणीयः।

राजा—यत् = यादृशम्, महासेनः = प्रद्योतो नृपः, आज्ञापयति = आदिशति। (उपविशति = आसते)

काञ्चुकीय—और क्या ? महासेन सकुशल हैं। यहाँ भी सबलोगों का कुशल पुछते हैं ?

राजा—(आसन से उठकर) महासेन क्या आज्ञा करते हैं ?

काञ्चुकीय—वैदेही (मिथिला की राजकुमारी) के पुत्र (आप) का यह विनयप्रदर्शन उचित ही है। आसन पर बैठकर ही आपको महासेन का सन्देश सुनना चाहिए।

राजा—महासेन जो आज्ञा करते हैं। (बैठता है।)

काञ्चुकीयः—दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ ७ ॥

काञ्चुकीयः—दिष्ट्या = भाग्येन "दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधि"–इत्यमरः, परैः = वैरिभिः, अपहृतम् = अधीनीकृतं, राज्यं= राष्ट्रं, पुनः = मुहुः, प्रत्यानीतं = अधिगतम्, इति = इत्थम् । कुतः = यतो हि–

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदं पद्यम् । अनेन पद्येन उत्साहिनां जनानामेव राज्यश्रीलाभ इत्युपस्थापयति काञ्चुकीयः उदयनम्प्रति ।

अन्वयः—ये कातरा अपि वा अशक्ताः तेषु उत्साहो न जायते । हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव युज्यते ।

पदार्थः—ये = जो, कातराः = कायर, अपि वा = या, अशक्ता = (जो) असमर्थ (हैं), तेषु = उनमें, उत्साहः = उत्साह, न = नहीं, जायते = उत्पन्न होता है । प्रायेण = प्रायः, नरेन्द्रश्रीः = राज्य लक्ष्मी (का), सोत्साहैः = उत्साह सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा ही, युज्यते (भुज्यते) = आना सम्भव है (भोग किया जाता है) ॥ ७ ॥

लालमती व्याख्या—ये = जनाः, कातराः = दीनाः, भीरव इति भावः, सन्तीति शेषः, अपि वा = अथवा, ये जना इति शेषः, अशक्ताः = अक्षमाः सन्तीति शेषः, तेषु = तथाभूतेषु जनेषु, कायरेषु अशक्तेष्विति वा, उत्साहः = अध्यवसायः, न = नहि, जायते = उत्पद्यते । हि = यतः, प्रायेण = प्रायशः, नरेन्द्रश्रीः = नरेन्द्रां = नृपाणां, श्रीः = लक्ष्मीः, "सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च"–इत्यमरः, राज्यलक्ष्मीरिति यावत्, सोत्साहैः–उत्साहेन = अध्यवसायेन "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्"–इत्यमरः, सहितस्तैः, उत्साहसम्पन्नैरिति यावत्, जनैरिति शेषः भुज्यते = उपभुज्यते । पाठान्तरे युज्यते = अधीनीक्रियत इति भावः ।

काञ्चुकीय—भाग्य से (आपने) शत्रुओं से छिने गए राज्य को पुनः लौटा लिया । क्यों कि—

जो कायर (डरपोक) और असमर्थ हैं, उनमें उत्साह (अध्यवसाय) नहीं

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनप्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो

दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । अलङ्कारश्चात्रार्थान्तरन्यासः । तद्यथा—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि । कार्यञ्च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते । साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः" ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! = मान्य !, सर्वं = सकलम्, एतत् = इदं, अपहृतराज्यप्रापणमिति भावः, महासेनप्रभावः-महासेनस्य = एतन्नामकस्योज्जयिनीनरेशस्य, प्रभावः = महिमा, अस्तीति शेषः । कुतः = यतो हि ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कसमुद्धृमिदम्पद्यमस्ति । पद्येनानेन वत्सराजोदयनो महासेनकाञ्चुकीयम्प्रति महासेनस्यात्मनि स्वताम्प्रस्तौति ।

अन्वयः—पूर्वं तावद् अहम् अवजितः, सुतैः सह लालितः, मया कन्या दृढम् अपहृता, भूयः न रक्षिता च, तस्याः निधनम् अपि श्रुत्वा मयि तथा एव स्वता । ननु उचितान् वत्सान् प्राप्तुं अत्र नृपः कारणं हि ।

पदार्थः—पूर्वं तावत् = पहले, अहम् = मैं, अवजितः=(महासेन के द्वारा) जीता गया, सुतैः=(उनके द्वारा) पुत्रों के, सह=साथ, लालितः=लालित-पालित हुआ, मया=मेरे द्वारा, कन्या = (उनकी) कुमारी (वासवदत्ता), दृढम् अपहृता=बलपूर्वक चुराई गई, भूयः च=और फिर, न=नहीं, रक्षिता = (वह वासवदत्ता मेरे द्वारा) रक्षित नहीं हुई । तस्याः= उस (वासवदत्ता) की, निधनं=मृत्यु को, अपि भी, श्रुत्वा=सुनकर, मयि =

होता है । क्योंकि प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करते हैं (राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ।) ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! यह सब महासेन की महिमा है । क्योंकि—(महासेन के द्वारा) पहले मैं जीता गया (फिर) अपने पुत्रों के साथ पाला गया । मैंने उनकी कन्या (वासवदत्ता) को दृढ़ता पूर्वक (बलपूर्वक) हरण किया, पर उसे (वासवदत्ता की) रक्षा न कर सका । उस वासवदत्ता की मृत्यु की खबर सुनकर

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥८॥

मुझपर, तथा एव = पहले की भाँति ही, स्वता = (उनकी) आत्मीयता है। ननु = निश्चय ही, उचितान् = उचित (औचित्यपूर्ण), वत्सान् = वत्सदेश के प्रदेशों को, प्राप्तुं = पाने में, यद् = जो, अत्र = यहाँ, नृपः = राजा (महासेन), कारणं = कारण, हि = निश्चय ही हैं।

लालमती व्याख्या—पूर्वं=पुरा, गजाखेटप्रसङ्ग इति भावः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, अहम्=उदयनः, अवजितः=पराजितः, महासेनेनेति शेषः, (तथाऽपि) सुतैः = पुत्रैः, सह = साकं, लालितः=स्नेहविषयीकृतः। अनन्तरमिति शेषः, मया = उदयनेन, कन्या = नवयौवना पुत्री, वासवदत्तेति यावत्, कन्यालक्षणं यथा साहित्यदर्पणे–"कन्या त्वजातोपमया सलज्जा नव यौवना" दृढं = दृढतापूर्वकं, बलात्कारेणेति भावः, अपहृता = मुषिता, उज्जयिनीतः कौशाम्बीमानीतेति यावत्, (परन्तु) भूयश्च = पुनरपि, न = नहि, रक्षिता = त्राता, लावाणकाग्निदाहादिति शेषः, तस्याः – पूर्वोक्तायाः, वासवदत्ताया इति भावः, निधनं = मरणम् अपि = तथा, श्रुत्वा = निशम्य, मयि = उदयने, तथा एव = तादृश्येव, पौर्वकालिकी एवेति यावत्, स्वता =आत्मीयता, महासेनस्येति शेषः। ननु इति आमन्त्रणे, हे आर्य ! उचितान्=पूर्वोपभोगादौचित्ययुक्तान् इति भावः, वत्सान् = वत्सप्रदेशान्, प्राप्तुं =भूयोऽधिगन्तुमधिकर्तुमिति यावत्, नृपः = महाराजः, महासेन इति भावः, कारणं=हेतुः, हि= निश्चयेन ॥ ८ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् हरिणीवृत्तम्। तद्यथा–"रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौगौ यदा हरिणी तदा"।

भी मुझमें उनकी (महासेन की) पहले की तरह ही आत्मीयता है। मेरे पहले के उपभुक्त वत्सप्रदेशों को पाने में भी राजा (महासेन) ही कारण हैं ॥ ८ ॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति।

राजा—हा! अम्ब!

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता।

काञ्चुकीयः—महासेनस्य = उज्जयिनीनरेशस्य, एषः = अयं, सन्देशः = वचनमिति भावः! देव्याः अङ्गारवत्याः, वासवदत्तामातुरितिभावः, सन्देशं = वार्तां, कथनमिति यावत्, इह = अस्मिन् स्थाने, अत्रभवती = माननीया, वसुन्धरेति भावः, कथयिष्यति = श्रावयिष्यति इति भावः।

राजा—हा! अम्ब! = हा! मातः!—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यमस्ति। पद्येनानेन वासवदत्तामातुरनामयं पृच्छति वत्सराजोदयनो वासवदत्तोपमातरम्।

अन्वयः—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु?

पदार्थ—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा = अन्तःपुर की सोलह रानियों में सबसे बड़ी (प्रधान), पुण्या = कल्याणी (पवित्र), नगरदेवता = नगर (उज्जयिनी) की देवी; मम = मेरे, प्रवासदुःखार्ता = प्रवास के दुःख से दुःखी (वासवदत्ता के साथ पलायन से या राज्यच्युत होने से दुःखी), माता = माता (अङ्गारवती) कुशलिनी = सकुशल, ननु = तो हैं।

लालमती व्याख्या—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा-षोडशसु अन्तःपुरेषु ज्येष्ठा, षोडशशुद्धान्तस्थमहिषीश्रेष्ठेति यावत्, "अन्तःपुरं स्यादवरोधनं, शुद्धान्तश्चावरोधश्च"—इत्यमरः, पुण्या = कल्याणी, पवित्रचरित्रेति भावः, नगरदेवता—नग-

---

काञ्चुकीय—यह महासेन का सन्देश है। महारानी (अङ्गारवती) का सन्देश यहाँ आदरणीया (वसुन्धरा) कहेंगी।

राजा—हा मातः!

अन्तःपुर की सोलह महारानियों में सबसे बड़ी, पवित्र चरित वाली, नगर

मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ? ॥ ९ ॥

धात्री--अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुशलं पुच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

राजा--सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री--मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

रस्य = उज्जयिनीपुरस्य, देवता = देवी पुरदेवीस्वरूपेति भावः, मम = जामातुः, प्रवासदुःखार्ता–प्रवासस्य दुःखेन आर्ता देशान्तरवासकष्टविग्नेति भावः, माता = भार्यावासवदत्ताजननी, श्वश्रूरङ्गारवतीति भावः, कुशलिनी = अनामया, ननु = किम् अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

धात्री – अरोगा = नीरोगा, भट्टिनी = महादेवी "भट्टिनी द्विजभार्यायां नाट्योक्त्या राजयोषिति"–इति विश्वः, भर्तारं = स्वामिनं, जामातरं, सर्वगतं = सकलाधिष्ठितं, कुशलम् = अनामयं पृच्छति । वासवदत्ताराज्यधनधान्यादीनां कुशलं पृच्छतीति भावः ।

राजा—सर्वगतं = सर्वाधिष्ठितं, कुशलम् = अनामयम्, इति = इत्थं पृच्छतीति शेषः ? अम्ब ! = मातः ! ईदृशं, कुशलम् = अनामयम् । वासवदत्ता अग्निना दग्धेति ईदृशमेव कुशलमस्तीति ।

धात्री—इदानीं = सम्प्रति, भर्ता = स्वामी, जामातेति भावः, अतिमात्रम् = अत्यधिकं, सन्तप्तुं = सन्तापं कर्तुं, वासवदत्ताविषये इति शेषः, मा = नहि । वासवदत्ताविषये त्वया सन्तापो मा कारणीय इति भावः ।

की देवी के समान और मेरे परदेश के वास के दुःख से दुःखी माता (अङ्गारवती) सकुशल तो हैं ? ॥ ९ ॥

धात्री (धाय)--महारानी स्वस्थ (नीरोग) हैं और सबके साथ आप का कुशल पूछती हैं ।

राजा—सबका कुशल पूछती हैं ? मातः ! ऐसा ही कुशल है ।

धात्री—स्वामी (दामाद) ज्यादा सन्ताप करने के योग्य नहीं हैं ।

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः। उपरताऽप्यनुपरता ! महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?

काञ्चुकीयः—आर्यपुत्रः=स्वामी, जामातेति भावः, धारयतु=अवलम्बतां, त्वमिति शेषः। उपरता=दिवङ्गताऽपि, अनुपरता=अदिवङ्गता। महासेनपुत्री=प्रद्योतदुहिता, वासवदत्तेति भावः, एवं=इत्थम्प्रकारेण, आर्यपुत्रेण=भर्त्रा, उदयनेनेति भावः, अनुकम्पमाना=अनुगृह्यमाणा। अथवा=यद्वा—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। अनेन पद्येन विधिविधानेन वासवदत्ता मृतेति महासेनकाञ्चुकीयः उदयनं।

अन्वयः—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं लोको वनानां तुल्यधर्मः, काले काले छिद्यते रुह्यते च।

पदार्थ—मृत्युकाले=मृत्यु के समय में, कः=कौन, कं=किसकी, रक्षितुं=रक्षा करने मे, शक्तः=समर्थ है (अर्थात् मृत्यु के समय कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता)। रज्जुच्छेदे=रस्सी के टूट जाने पर, के=कौन लोग, घटं=घड़े को, धारयन्ति=पकड़ते हैं (अर्थात् रस्सी के टूटने पर कोई घड़े को गिरने से रोक नहीं सकता) एवं=इसी प्रकार, लोकः=संसार, वनानां=वृक्षों (बनों) के, तुल्यधर्मः=समान धर्म वाला है (जो), काले काले=समय समय पर, छिद्यते=कटता है, रुह्यते च=और उगता है।

लालमती व्याख्या—मृत्युकाले-मृत्योः=निधनस्य, काले=समये, कः=जनः, कं=जनं, रक्षितुं=त्रातुं, शक्तः=सक्षमः, रज्जुच्छेदे-रज्जोः=रश्मेः, छेदे=भङ्गे, सतीति शेषः, के=जनाः, घटं=कलशं, धारयन्ति=त्रायन्त इति भावः, कूपपतनादिति शेषः, एवम्=इत्थं, लोकः=जनः, 'लोकस्तु भुवने जने"-इत्यमरः, वनानां=वृक्षाणां, अरण्यस्थानमिति शेषः, तुल्य-

---

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र अपने को सम्भालें। इस प्रकार आर्यपुत्र से कृपा की जानेवाली महासेन की पुत्री (वासवदत्ता) मरकर भी जीवित हैं। अथवा—

मरने के समय कौन किसे क्या कह सकता है ? रस्सी के टूटने पर कौन

मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ? ॥ ९ ॥

धात्री--अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुशलं पुच्छदि। [अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति।]

राजा--सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम्।

धात्री--मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं। [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम्।]

रस्य = उज्जयिनीपुरस्य, देवता = देवी पुरदेवीस्वरूपेति भावः, मम = जामातुः, प्रवासदुःखार्ता–प्रवासस्य दुःखेन आर्ता देशान्तरवासकष्टविग्नेति भावः, माता = भार्यावासवदत्ताजननी, श्वश्रूरङ्गारवतीति भावः, कुशलिनी = अनामया, ननु = किम् अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम्। तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम्।

धात्री–अरोगा = नीरोगा, भट्टिनी = महादेवी "भट्टिनी द्विजभार्यायां नाट्योक्त्या राजयोषिति"–इति विश्वः, भर्तारं = स्वामिनं, जामातरं, सर्वगतं = सकलाधिष्ठितं, कुशलम् = अनामयं पृच्छति। वासवदत्ताराज्यधनधान्यादीनां कुशलं पृच्छतीति भावः।

राजा—सर्वगतं = सर्वाधिष्ठितं, कुशलम् = अनामयम्, इति = इत्थं पृच्छतीति शेषः ? अम्ब ! = मातः ! ईदृशं, कुशलम् = अनामयम्। वासवदत्ता अग्निना दग्धेति ईदृशमेव कुशलमस्तीति।

धात्री—इदानीं = सम्प्रति, भर्ता = स्वामी, जामातेति भावः, अतिमात्रम् = अत्यधिकं, सन्तप्तुं = सन्तापं कर्तुं, वासवदत्ताविषये इति शेषः, मा = नहि। वासवदत्ताविषये त्वया सन्तापो मा कारणीय इति भावः।

की देवी के समान और मेरे परदेश के वास के दुःख से दुःखी माता (अङ्गारवती) सकुशल तो हैं ? ॥ ९ ॥

धात्री (धाय)--महारानी स्वस्थ (नीरोग) हैं और सबके साथ आप का कुशल पूछती हैं।

राजा—सबका कुशल पूछती हैं ? मातः ! ऐसा ही कुशल है।

धात्री—स्वामी (दामाद) ज्यादा सन्ताप करने के योग्य नहीं हैं।

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः। उपरताऽप्यनुपरता! महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण। अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?

काञ्चुकीयः—आर्यपुत्रः=स्वामी, जामातेति भावः, धारयतु=अवलम्बतां, त्वमिति शेषः। उपरता=दिवङ्गताऽपि, अनुपरता=अदिवङ्गता। महासेनपुत्री=प्रद्योतदुहिता, वासवदत्तेति भावः, एवं=इत्थम्प्रकारेण, आर्यपुत्रेण=भर्त्रा, उदयनेनेति भावः, अनुकम्पमाना=अनुगृह्यमाणा। अथवा=यद्वा—

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यभिधेयस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। अनेन पद्येन विधिविधानेन वासवदत्ता मृतेति महासेनकाञ्चुकीयः उदयनं।

अन्वयः—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं लोको वनानां तुल्यधर्मः, काले काले छिद्यते रुह्यते च।

पदार्थ—मृत्युकाले=मृत्यु के समय में, कः=कौन, कं=किसकी, रक्षितुं=रक्षा करने मे, शक्तः=समर्थ है (अर्थात् मृत्यु के समय कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता)। रज्जुच्छेदे=रस्सी के टूट जाने पर, के=कौन लोग, घटं=घड़े को, धारयन्ति=पकड़ते हैं (अर्थात् रस्सी के टूटने पर कोई घड़े को गिरने से रोक नहीं सकता) एवं=इसी प्रकार, लोकः=संसार, वनानां=वृक्षों (बनों) के, तुल्यधर्मः=समान धर्म वाला है (जो), काले काले=समय समय पर, छिद्यते=कटता है, रुह्यते च=और उगता है।

लालमती व्याख्या—मृत्युकाले-मृत्योः=निधनस्य, काले=समये, कः=जनः, कं=जनं, रक्षितुं=त्रातुं, शक्तः=सक्षमः, रज्जुच्छेदे-रज्जोः=रश्मेः, छेदे=भङ्गे, सतीति शेषः, के=जनाः, घटं=कलशं, धारयन्ति=त्रायन्त इति भावः, कूपपतनादिति शेषः, एवम्=इत्थं, लोकः=जनः, 'लोकस्तु भुवने जने"-इत्यमरः, वनानां=वृक्षाणां, अरण्यस्थानमिति शेषः, तुल्य-

---

काञ्चुकीय—आर्यपुत्र अपने को सम्भालें। इस प्रकार आर्यपुत्र से कृपा की जानेवाली महासेन की पुत्री (वासवदत्ता) मरकर भी जीवित हैं। अथवा—

मरने के समय कौन किसे क्या कह सकता है ? रस्सी के टूटने पर कौन

एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

राजा—आर्यं मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया।

धर्मः—तुल्यः = समानः, धर्मो = व्यवहारः यस्य स तथोक्तः समस्वभाव इति यावत् य इति शेषः, काले काले = समये समये, छिद्यते = कृत्यते, रुह्यते=उत्पद्यते च = तथा। यथा वृक्षाः स्वयमेवोत्पद्यन्ते पुनः कृत्यन्ते च, तथैव लोकस्यापि स्थितिः। अतः वासवदत्ताविषये त्वया मन्युर्न कर्तव्य इति भावः ॥ १० ॥

छन्दः - पद्येऽस्मिन् शालिनीवृत्तम्। तद्यथा—"शालिन्युक्ता म्तौ गतौ गोऽब्धिलोकैः"। अलङ्कारश्चात्र दृष्टान्तः। तद्यथा—"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्"।

राजा—आर्य ! = मान्य ! मा = नहि, मा = नहि, इत्थम् = एवम्। इत्थं मा कथयेति यावत्।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदं पद्यमस्ति। पद्येनानेन राजोदयनः देहान्तरेष्वपि वासवदत्तास्मरणम्प्रस्तौति महासेनकाञ्चुकीयम्प्रति।

अन्वयः—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या, प्रिया देवी च (आसीत्) सा मया देहान्तरेष्वपि कथं स्मर्तुं शक्या न ?

पदार्थः—महासेनस्य = महासेन की, दुहिता = पुत्री, मे = मेरी (उदयन की) शिष्या = छात्रा, प्रिया=वल्लभा, देवी च = और रानी (आसीत् = थी) सा=

लोग घड़े को धारण करते हैं (गिरने से बचा सकते हैं) ? इसी प्रकार संसार वृक्षों के समान धर्मवाला है, जो समय-समय पर काटा जाता है और उत्पन्न भी होता है ॥ १० ॥

राजा—आर्य ! ऐसा न कहें, ऐसा न कहें।

महासेन-पुत्री और मेरी प्रिय छात्रा तथा पत्नी उस (वासवदत्ता) को मैं अपने शरीरान्तर (जन्मान्तरों) में भी कैसे भूल सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥ ११ ॥

धात्री--आह भट्टिणी--उदरदा वासवदत्ता। मम वा महासेणस्स वा जादिशा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति। एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो। अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा। अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो। अहअ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [**आह भट्टिनी उपरता वासव**·

वह, देहान्तरेष्वपि = दूसरे जन्मों में भी, मया = मेरे द्वारा, कथं = किस प्रकार, स्मर्तुं न शक्या = स्मरण नहीं की जाय ?

लालमती व्याख्या—महासेनस्य = चण्डप्रद्योतस्य, दुहिता = आत्मजा,, तथा च मे ममोदयनस्य, प्रिया = वल्लभा, अभीष्टेति यावत्, शिष्या = छात्रा वीणवादन इति शेषः, देवी = महाराज्ञी, च = तथा, सा = वासवदत्ता, मया = धवेनोदयनेनेति भावः, देहान्तरेष्वपि–अन्ये देहा देहान्तराणि तेषु = शरीरान्तरेष्वपि, जननान्तरेष्वपीति भावः, कथं = केनप्रकारेण, स्मर्तुं = ध्यातुं, न शक्या = न कार्या, अविस्मरणीयेति भावः। अर्थात् मे प्रिया शिष्या भार्या च वासवदत्ता देहान्तरेष्वपि मया स्मरणीयाऽस्ति इति भावः।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुवृत्तम्। तल्लक्षणं पूर्वंक्तम्।

धात्री–आह भट्टिनी–उपरता·········निवृत्तो भावः।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतोऽस्त्ययं गद्यांशः। अनेन गद्यांशेन वासवदत्ताधात्री अङ्गारवत्या वासवदत्तामातुः सन्देशमुदयनाय निवेदयति।

लालमती व्याख्या--भट्टिनी = महाराज्ञी, अङ्गारवतीति भावः, आह = कथयति—वासवदत्ता = मे पुत्री, उपरता = दिवङ्गता। मम वा = अङ्गारवत्या वा, महासेनस्य वा = मे धवस्य वा, यादृशौ = यथाभूतौ, पुत्रभूतौ = प्रियौ

धात्री—महारानी कहती हैं—वासवदत्ता तो मर गई। मेरे और महासेन के जैसे गोपालक और पालक हैं वैसे ही पहले से ही अभीष्ट आप प्रिय दामाद हैं। इसीलिए आप उज्जयिनी में लाये गये। आप को अग्नि के साक्ष्य के बिना

दत्ता। मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयाऽनिवृ‍र्त्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निवृ‍र्त्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

इति भावः, गोपलकपालकौ = गोपालकश्च पालकश्च तौ गोपालकपालकौ = एतदभिधेयौ, पुत्रौ इति भावः, तादृश एव = तथैव, त्वं = भवान्, उदयन इति भावः, प्रथममेव = पूर्वमेव, अभिप्रेतः = अभीष्टः, जामाता = दुहितृपतिः, आसीदिति शेषः, इति = इत्थम्। एतन्निमित्तम्—एतस्य = जामतृत्वसम्पादनस्य, निमित्तं कारणं यथा स्यात्तथा, जामातृत्वसम्पादानार्थमिति भावः, उज्जयिनीं = विशालां, "विशालोज्जयिनी समे"—इत्यमरः, आनीतः = प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम्—अग्निसाक्ष्यरहितं यथा स्यात्तथा, वीणाव्यपदेशेन—वीणायाः = वल्लकीशिक्षणस्य, व्यपदेशेन=व्याजेनेति भावः, तुभ्यं वासवदत्तेति शेषः, दत्ता=समर्पिता। आत्मनः = स्वस्य, चपलतया = चञ्चलत्वेन, अधीरत्वेनेति भावः, अनिवृ‍र्त्तविवाहमङ्गलः—न निवृ‍र्त्तं विवाहस्य मङ्गलं यस्य स तथोक्तः, अनिष्पन्नोद्वाहोत्सव, एव, गतः = निष्क्रान्तः वासवदत्तया सहैवेति शेषः। अथ = अनन्तरं, च = तथा, आवाभ्याम् = अङ्गारवतीमहासेनाभ्यामिति भावः, तव च = भवतश्च, वासवदत्तायाश्च, प्रतिकृतिं = मूर्तिं, चित्रफलकायां—चित्रस्य फलका तस्याम् आलेख्यपीठिकायामिति भावः, आलिख्य = आलेखनं कारयित्वा, विवाहः = परिणयः, निवृ‍र्त्तः = सम्पन्नः। एषा = इयं, चित्रफलका = आलेख्यपीठिका, तव भवतः, उदयनस्येति भावः, सकाशं = समीपं, प्रेषिता = उपायनीकृतेति भावः। एतां = चित्रपट्टिकां, दृष्ट्वा = वीक्ष्य, निवृ‍र्त्तः = सुखी, वियोगदुःखरहित इति भावः, भव = स्याः।

ही वीणा सिखाने के बहाने से कुँआरी (वासवदत्ता) दी गई। अपनी अधीरता से आप विवाह संस्कार के बिना चले गये। तब हम दोनों के द्वारा आप का और वासवदत्ता का विवाह चित्रफलक में मूर्ति को लिखाकर सम्पन्न किया गया। यह चित्रफलक आप के पास भेजा गया है। इसे देखकर आप अपना मनोविनोद करें।

राजा--अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ।। १२ ।।

राजा--अहो ! हर्षेऽव्ययम्, अतिस्निग्धम् = अत्यधिकस्नेहसम्पन्नमिति भावः, अनुरूपम् = उचितं यथा स्यात्तथा, च = तथा, तत्रभवत्या = मान्ययाऽङ्गारवत्या; अभिहितं = कथितं, वाक्यमिति शेषः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्याख्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन वासवदत्ताधात्रीवाक्यं श्रुत्वोदयनः श्वश्रोरङ्गारवत्याः आत्मनि स्नेहं समर्थयति ।

अन्वयः—एतत् वाक्यं राज्यलाभशतात् अपि प्रियतरम् । यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहः न विस्मृतः ।

पदार्थः—एतत् = यह (अङ्गारवती का सन्देश), वाक्यं = वचन, राज्यलाभशतात् = सौ राज्य प्राप्त करने से, अपि = भी, प्रियतरं = सुखकर (आनन्ददायक है) । यत् = क्योंकि, अपराद्धेषु = अपराध किये हुए, अपि = भी, अस्मासु = हमलोगों (उदयन) के प्रति, स्नेहः = प्यार (वात्सल्य), न = नहीं, विस्मृतः = भूला गया (अर्थात् बहुत अपराध करने पर भी मेरे प्रति वात्सल्य ही उन्होंने प्रकट किया है ।)

लालमती व्याख्या—एतत् = इदं, वासवदत्ताधात्रीमुखेन पूर्वाऽभिहितमिति यावत्, वाक्यं = पदसमूहः, सन्देशवागिति भावः, राज्यलाभशतात्—राज्यस्य लाभः, तस्य शतं तस्मात् बहुराज्यावाप्तेरिति यावत्, अपि, प्रियतरम् = अतीप्सिततरमस्तीति शेषः । यत् = यस्मात् कारणात्, अपराद्धेषु = कृतापराधेषु, अपि, सम्पादितकन्यावासवदत्तापहरणादिपापेस्वपीति भावः, अस्मासु = मयि विषये, उदयने इति भावः, स्नेहः = वात्सल्यं, न = नहि, विस्मृतः = परित्यक्तः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । अलङ्कारश्च काव्यलिङ्गम् । तद् यथा"— "हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गन्निगद्यते" ।

राजा—आदरणीया महारानी ने अत्यन्त वात्सल्ययुक्त और उचित वचन कहा है ।

यह वाक्य सौ राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय है । क्योंकि अपराध करने वाले मेरे ऊपर भी (महारानी ने) वात्सल्य नहीं भुलाया है ।। १२ ।।

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकां दर्शयति ।) [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं ! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए । (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः । आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! = पतिदेव ! चित्रगतगुरुजनं–चित्रं गतः चित्रगतः, गुरुश्चासौ जनः गुरुजनश्चित्रगतश्चासौ गुरुजनस्तम् आलेख्यस्थश्रेष्ठजनमिति भावः, दृष्ट्वा = परीक्ष्य, अभिवादयितुं = नमस्कर्तुम्, इच्छामि = वाञ्छामि ।

धात्री—पश्यतु = अवलोकयतु, पश्यतु = अवलोकयतु, भर्तृदारिका = राजकुमारी । (चित्रफलकां = आलेख्यपट्टिकां, दर्शयति ।)

पद्मावती—(दृष्ट्वा = अवलोक्य, आत्मगतं = स्वगतम्) हमिति आश्चर्येऽव्ययम्, अतिसदृशी = अत्यधिकसमाना, खलु = निश्चयेन, इयं = चित्राङ्किता वासवदत्ता, आर्यायाः = पूज्यायाः, आवन्तिकायाः = मन्न्यासभूताया एतन्नामिकाया इति भावः । (प्रकाशं = सर्वश्राव्यं) आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, खलु = निश्चयेन, इयं = चित्रगता, वासवदत्तेति भावः, आर्यायाः = वन्द्याया वासवदत्तायाः, सदृशी = समाना, अस्ति किमिति शेषः ।

राजा—सदृशी = समाना, न = नहि, कथयेति शेषः, सा = वासवदत्ता, एवास्ति चित्रफलकास्था, इति = इत्थं, मन्ये = अवधारयामि । भोः ! = अरे !, कष्टं = दुःखम् ।

पद्मावती—पतिदेव ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) के दर्शन कर प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धात्री—राजकुमारी देखें, देखें । (चित्रफलक दिखाती है ।)

पद्मावती—(देखकर मन में) ओह ! ये आर्या आवन्तिका की समान आकृतिवाली हैं । (प्रकट) यह (चित्रलिखिता) आर्या वासवदत्ता के समान हैं क्या ?

राजा—समान नहीं । वही (वासवदत्ता ही) हैं । ऐसा मैं मानता हूँ । हाय ! कष्ट है ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति ।]

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदं पद्यम् । राजोदयनः चित्रफलके वासवदत्तां दृष्ट्वा सन्तापं करोति इत्येतस्य वर्णनं कृतमस्मिन् पद्ये ।

अन्वयः—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् ? इदं मुखमाधुर्यम् अग्निना कथं दूषितम् ?

पदार्थः—अस्य = इस, स्निग्ध = सुन्दर (कोमल) वर्णस्य = रंग (रूप) को, दारुणा = भयङ्कर, विपत्तिः, कथं—कैसे आयी ? इदं च = और यह, मुखमाधुर्यं = मुँह की मधुरिमा (सुन्दरता) अग्निना = अग्नि के द्वारा, कथं = कैसे, दूषितं = खराब (दूषित) कर दी गयी ?

लालमती व्याख्या—अस्य = चित्रस्थस्य, स्निग्धस्य = प्रियस्य, मनोज्ञस्येति यावत्, वर्णस्य = स्वरूपस्य, दारुणा = भयङ्करी, "दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकं, विपत्तिः = आपत्तिः, विनाश इति भावः, कथं = केन प्रकारेण, जातेति शेषः । इदं = चित्रस्थं, मुखमाधुर्यं—मुखस्य = वदनस्य "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"—इत्यमरः, माधुर्यं = मनोज्ञत्वं, लावण्यमिति भावः, अग्निना = पावकेन, कथं = केन प्रकारेण, दूषितं = विकारं प्राप्तं दग्धमिति भावः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्योदयनस्येति यावत्, प्रतिकृतिं = चित्रमूर्तिं, दृष्ट्वा = परीक्ष्य, जानामि = वेद्मि, इयं = चित्रस्था, वासवदत्तेति भावः, आर्यायाः = मान्यायाः वासवदत्तायाः, सदृशी = समाना, वा = अथवा-सदृशीति शेषः, इति = इत्थम् ।

ऐसे सुन्दर वर्ण (रूप) को भयङ्कर विपत्ति (विनाश) कैसे प्राप्त हुई ? ऐसी मुख की मनोज्ञता (लावण्य) को अग्नि ने कैसे दूषित कर दिया (जला दिया) ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर ये (वासवदत्ता) आर्या वासवदत्ता की समान आकृतिवाली हैं या नहीं यह जानूँगी ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकां दर्शयति ।) [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं ! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए । (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः । आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! = पतिदेव ! चित्रगतगुरुजनं—चित्रं गतः चित्रगतः, गुरुश्चासौ जनः गुरुजनश्चित्रगतश्चासौ गुरुजनस्तम् आलेख्यस्थश्रेष्ठजनमिति भावः, दृष्ट्वा = परीक्ष्य, अभिवादयितुं = नमस्कर्तुम्, इच्छामि = वाञ्छामि ।

धात्री—पश्यतु = अवलोकयतु, पश्यतु = अवलोकयतु, भर्तृदारिका = राजकुमारी । (चित्रफलकां = आलेख्यपट्टिकां, दर्शयति ।)

पद्मावती—(दृष्ट्वा = अवलोक्य, आत्मगतं = स्वगतम्) हमिति आश्चर्येऽव्ययम्, अतिसदृशी = अत्यधिकसमाना, खलु = निश्चयेन, इयं = चित्राङ्किता वासवदत्ता, आर्यायाः = पूज्यायाः, आवन्तिकायाः = मन्न्यासभूताया एतन्नामिकाया इति भावः । (प्रकाशं = सर्वश्राव्यं) आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, खलु = निश्चयेन, इयं = चित्रगता, वासवदत्तेति भावः, आर्यायाः = वन्द्याया वासवदत्तायाः, सदृशी = समाना, अस्ति किमिति शेषः ।

राजा—सदृशी = समाना, न = नहि, कथयेति शेषः, सा = वासवदत्ता, एवास्ति चित्रफलकास्था, इति = इत्थं, मन्ये = अवधारयामि । भोः ! = अरे !, कष्टं = दुःखम् ।

पद्मावती—पतिदेव ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) के दर्शन कर प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धात्री—राजकुमारी देखें, देखें । (चित्रफलक दिखाती है ।)

पद्मावती—(देखकर मन में) ओह ! ये आर्या आवन्तिका की समान आकृतिवाली हैं । (प्रकट) यह (चित्रलिखिता) आर्या वासवदत्ता के समान हैं क्या ?

राजा—समान नहीं । वही (वासवदत्ता ही) हैं । ऐसा मैं मानता हूँ । हाय ! कष्ट है ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायः सदृशी न वेति ।]

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तामित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदं पद्यम् । राजोदयनः चित्रफलके वासवदत्तां दृष्ट्वा सन्तापं करोति इत्येतस्य वर्णनं कृतमस्मिन् पद्ये ।

अन्वयः—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् ? इदं मुखमाधुर्यम् अग्निना कथं दूषितम् ?

पदार्थः—अस्य = इस, स्निग्ध = सुन्दर (कोमल) वर्णस्य = रंग (रूप) को, दारुणा = भयङ्कर, विपत्तिः, कथं = कैसे आयी ? इदं च = और यह, मुखमाधुर्यं = मुँह की मधुरिमा (सुन्दरता) अग्निना = अग्नि के द्वारा, कथं = कैसे, दूषितं = खराब (दूषित) कर दी गयी ?

लालमती व्याख्या--अस्य = चित्रस्थस्य, स्निग्धस्य = प्रियस्य, मनोज्ञस्येति यावत्, वर्णस्य = स्वरूपस्य, दारुणा = भयङ्करी, "दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकं, विपत्तिः = आपत्तिः, विनाश इति भावः, कथं = केन प्रकारेण, जातेति शेषः । इदं = चित्रस्थं, मुखमाधुर्यं–मुखस्य = वदनस्य "वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्"–इत्यमरः, माधुर्यं = मनोज्ञत्वं, लावण्यमिति भावः, अग्निना = पावकेन, कथं = केन प्रकारेण, दूषितं = विकारं प्राप्तं दग्धमिति भावः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । लक्षणं पूर्वमुक्तम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्रस्य = पतिदेवस्योदयनस्येति यावत्, प्रतिकृतिं = चित्रमूर्तिं, दृष्ट्वा = परीक्ष्य, जानामि = वेद्मि, इयं = चित्रस्था, वासवदत्तेति भावः, आर्यायाः = मान्यायाः वासवदत्तायाः, सदृशी = समाना, वा = अथवा-सदृशीति शेषः, इति = इत्थम् ।

ऐसे सुन्दर वर्ण (रूप) को भयङ्कर विपत्ति (विनाश) कैसे प्राप्त हुई ? ऐसी मुख की मनोज्ञता (लावण्य) को अग्नि ने कैसे दूषित कर दिया (जला दिया) ? ॥ १३ ॥

पद्मावती–आर्यपुत्र का चित्र देखकर ये (वासवदत्ता) आर्या वासवदत्ता की समान आकृतिवाली हैं या नहीं यह जानूँगी ।

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसीत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति ।]

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि । किमिदम् ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि । [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

धात्री–पश्यतु पश्यतु = अवलोकयतु अवलोकयतु, भर्तृदारिका = राजकुमारी ।

पद्मावती—(दृष्ट्वा = वीक्ष्य) आर्यपुत्रस्य = पतिदेवोदयनस्य, प्रतिकृत्याः – चित्रशरीरस्य, सदृशतया = समानतया, जानामि = निश्चिनोमि, इयं = चित्रफलकस्थाऽऽर्या वासवदत्ता, आर्यायाः = वासवदत्तायाः, सदृशी = तुल्या, इति = इत्थम् ।

राजा—देवि != महाराज्ञि ! पद्मावति !! चित्रदर्शनात् = आलेख्यवीक्षणात्, प्रभृति = आरभ्य, त्वां = भवतीं, पद्मावतीमिति भावः, प्रहृष्टोद्विग्नाम्–प्रहृष्टा = पुलकिता चासौ उद्विग्ना = समुत्सुका ताम्, इव = यथा, पश्यामि = विलोकयामि । किमिति वितर्के, इदम् = एतत् ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! = पतिदेव !, अस्याः = पुरोदृश्यमानायाः, प्रतिकृत्याः = चित्रस्य, सदृशी = तुल्या, इह = अस्मद्भवनम्, एव, प्रतिवसति = आवसति ।

धात्री-राजकुमारी देखें, देखें ।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की सदृशता से मैं ऐसा समझती हूँ आर्या का चित्र भी उनके समान ही है ।

राजा—देवि ! चित्र देखने के बाद तुम्हें प्रसन्न और चञ्चल सी देख रहा हूँ । यह क्या ?

पद्मावती—पतिदेव ! इस (वासवदत्ता के) चित्र की समान आकृतिवाली एक स्त्री यहीं रहती है ।

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम् ।]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि ब्रह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदंसणं परिहरदि । ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [**आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः ।**]

राजा—किमिति प्रश्ने, वासवदत्तायाः = महादेव्याः ? महादेवीवासवदत्तासदृशी काऽपि अस्मद्भवने वसतीति भावः ।

पद्मावती—आम्=ओम् ।

राजा—तेन = तस्मात् कारणात्, हि=निश्चयेन, शीघ्रं=सत्वरम्, आनीयतां = प्रवेश्यताम्, सेति शेषः ।

पद्मावती—आर्यपुत्र !=पतिदेव !, मम = पद्मवत्याः, कन्याभावे= कौमार्ये, परिणयात्पूर्वकाल इति भावः, केनापि=अज्ञातेन, ब्राह्मणेन=विप्रेण, मम ब्राह्मणस्य, भगिनिका=स्वसा, इति=इत्थं, न्यासः=वासवदत्तारूपः, निक्षिप्तः = स्थापितः । प्रोषितभर्तृका—प्रोषितः = विदेशस्थः, भर्ता = पतिः यस्याः सा तथोक्ता, आवन्तिकेति शेषः, परपुरुषदर्शनं-परपुरुषस्य = धावतिरिक्तान्यपुरुषस्य, दर्शनं=विलोकनं, परिहरति = वर्जयति । तत् = तस्मात् कारणात्, आर्याम् = आवन्तिकां, मया=पद्मावत्या, सह=साकम्, आगताम्=उपस्थितां, दृष्ट्वा = वीक्ष्य, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, जानातु = विचारयतु, साऽऽर्याऽऽवन्तिका वासवदत्ताऽस्ति नवेति ।

राजा—क्या वासवदत्ता की समान (आकृतिवाली) ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो शीघ्र लाओ ।

पद्मावती—पतिदेव ! मेरे विवाह से पहले किसी ब्राह्मण ने "मेरी बहन" कहकर किसी स्त्री को न्यास (धरोहर) के रूप में रखा था । उनके पति परदेश में हैं इस लिए वे परपुरुष को नहीं देखती हैं । इस कारण से मेरे साथ आई हुई उन आर्या को देखकर आर्यपुत्र पहचानें ।

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता॥ १४॥

राजा—यदि विप्रस्य भगिनी........—रूपतुल्यता।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमितिनाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम्। पद्यानानेन राजोदयनो लोकेऽस्मिन् एकस्यैव स्वरूपस्य बहवो जना भवन्तीति पद्मावतीं कथयति।

अन्वयः—यदि विप्रस्य भगिनी (तर्हि) व्यक्तम् अन्या भविष्यति। लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते।

पदार्थः—यदि = अगर, विप्रस्य = ब्राह्मण की, भगिनी = बहन, (है तो) व्यक्तं = निश्चित रूप से, अन्या = दूसरी, भविष्यति = होगी। (क्यों कि), लोके = संसार में, परस्परगता = परस्पर में व्याप्त, रूपतुल्यता = स्वरूप की समानता, दृश्यते = देखी जाती है।

लालमती व्याख्या—यदि = चेत्, विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, भगिनी = स्वसा, स्यादिति शेषः, तर्हि इति शेषः, व्यक्तं = स्पष्टं यथा स्यात्तथा, अन्या = इतरा, भविष्यति = सम्भविष्यति। यतो हीति शेषः, लोके = भुवने, परस्परगता—परस्परम् = अन्योन्यं, गता = उपेता, रूपतुल्यता—रूपस्य = स्वरूपस्य, आकृत्या इति भावः, तुल्यता = सादृश्यं, दृश्यते = विलोक्यते।

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम्। तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः"। अलङ्कारश्चात्रार्थान्तरन्यासः। तद्यथा—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि। कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते। साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः"।

राजा—यदि ब्राह्मण की बहन है तो निश्चय ही वह दूसरी होगी, क्योंकि संसार में परस्पर रूप की समानता देखी जाती है॥ १४॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ बह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः ।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती—होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

(प्रविश्य=प्रवेशं विधाय)

प्रतीहारी—जयतु = विजयताम्, भर्ता = स्वामी, महाराजोदयन इति भावः । एषः = अयम्, उज्जयिनीयो–उज्जयिन्यां = विशालायां, विशालोज्जयिनी समे–इत्यमरः, भवः = उद्भूतः, उज्जयिनीवास्तव्य इति भावः, ब्राह्मणः= विप्रः, भट्टिन्याः=महादेव्याः, पद्मावत्या इति भावः, हस्ते=करे, संरक्षणे इति यावत्, मम=विप्रस्य, भगिनिका=स्वसा, न्यासः=न्यासरूपेणेति भावः, निक्षिप्तः=स्थापितः, तं = न्यासभूतं, प्रतिग्रहीतुं = पुनरादातुं, प्रतीहारं=द्वारं, "द्वार्द्वारं प्रतीहारम्"–इत्यमरः, उपस्थितः=आगतः, वर्तत इति शेषः ।

राजा—पद्मावति ! = देवि !, किमिति प्रश्ने, नु = निश्चयेन, सः = पूर्वोक्तः, ब्राह्मणः = विप्रः ?

पद्मावती—भवितव्यं = सम्भाव्यम् । स एव ब्राह्मणो भवेदिति शेषः ।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो । ये उज्जयिनी के ब्राह्मण "महारानी के हाथ में मेरी बहन धरोहर के रूप में (मैंने) रखा था" ऐसा कहकर उन्हें लेने के लिए दरवाजे के पास उपस्थित हैं ।

राजा—पद्मावति ! क्या वही ब्राह्मण है ?

पद्मावती—होना चाहिए ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायण—भोः । (आत्मगतम्)

राजा—शीघ्रं = सत्वरं, प्रवेश्यताम् = आनीयताम्, सः = पूर्वोक्तः, ब्राह्मणः = विप्रः, अभ्यन्तरसमुदाचारेण-अभ्यन्तरस्य = राजभवनस्य, समुदाचारेण = सदाचारेण, पाद्यार्घ्यादिसमर्पणरूपेणेति भावः ।

प्रतीहारी--यद् = यथा, भर्ता = महाराजः, आज्ञापयति = आदिशति ।

राजा—पद्मावति ! = महाराज्ञि !, त्वाम् = भवती, अपि = च, ताम् = आवन्तिकाम्, आनय = आहर ।

पद्मावती–यद् = यादृशम्, आर्यपुत्रः = पतिदेवः, आज्ञापयति=आदिशति । (ततः = तदनन्तरं, यौगन्धरायणः = एतदभिधेयो महामात्यः, प्रविशति = प्रवेशं करोति, च = तथा, प्रतीहारी = द्वारपालिका)

यौगन्धरायणः--भोः = अरे ! (आत्मगतं = स्वगतम्) ।

राजा—भीतर के व्यवहार (आचार) के अनुसार उस ब्राह्मण को प्रवेश कराओ ।

प्रतीहारी—स्वामी जैसी आज्ञा करते हैं । (निकल जाती है)

राजा--पद्मावती ! तुम भी उन्हें (आवन्तिका को) ले आओ ।

पद्मावती--पतिदेव जैसी आज्ञा करते हैं ।

(तब यौगन्धरायण और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं ।)

यौगन्धरायण—ओह ! (मन में)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्तमित्यस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमस्तीदं पद्यम् । पद्यानानेन यौगन्धरायणः वासवदत्तागोपनादिकार्यं राजोदयनहितबुद्ध्या एवाहं सम्पादितवान् परन्तु राजोदयनः मां किं कथयिष्यतीति स्वकीयां शङ्कामुपस्थापयति ।

अन्वयः—नृपतेः हितार्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य मया हितम् इति अवेक्ष्य इदं कामं कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितं नाम ।

पदार्थः—नृपतेः = राजा के, हितार्थं = कल्याण के लिए, राजमहिषीं = महारानी (वासवदत्ता) को, प्रच्छाद्य = छिपाकर, मया = मेरे द्वारा, हितं = कल्याण, इति = ऐसा, अवेक्ष्य = देखकर (सोचकर), इदं = यह (वासवदत्ता का छिपाना) कामं = अपनी इच्छा से, कृतं = किया गया । मम = मेरे (यौगन्धरायण के), कर्मणि = काम के सिद्धे = सिद्ध हो जाने पर, अपि = भी, असौ = यह; पार्थिवः = राजा (उदयन), किं = क्या, वक्ष्यति = कहेंगे, इति = ऐसा (सोचकर) मे = मेरा, हृदयं = मन, परिशङ्कितं = अत्यधिक शङ्का से युक्त, नाम = निश्चित रूप से (है) ।

लालमती व्याख्या—नृपतेः = अधिपस्य, उदयनस्येति भावः, हितार्थं = मङ्गलार्थं, राजमहिषीं—राज्ञः = अधिपस्य, महिषी = राज्ञी, तां, वासवदत्तामिति यावत्, प्रच्छाद्य = सङ्गोप्य, वासवदत्ता लावाणके दग्धेति प्रचार्य पद्मावतीकरे न्यासरूपेण संस्थाप्येति भावः, मया = यौगन्धरायणेन, हितं = मङ्गलप्रदं, पद्मावत्युदयनपरिणयेन आरुणिहृतराज्यप्राप्तिरूपमिति यावत्, इति = इत्थम्, अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, विचिन्त्येति भावः, इदम् = एतत्, पद्मावतीपार्श्वे वासवदत्तायाः न्यासरूपेणसङ्गोपनं, पद्मावत्युदनोद्वाहश्चेति कार्यद्वयमिति भावः, कामं =

राजा के कल्याण के लिए महारानी (वासवदत्ता) को छिपाकर मैंने राजा का कल्याण होगा ऐसा विचार कर यह कार्य अपनी इच्छा से किया है । अब

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १३ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो । [एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः । भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

यथेष्टं, स्वेच्छानुसारमिति यावत्, कृतं = सम्पादितम् । मम = यौगन्धरायणस्य, कर्मणि = कार्ये, सिद्धे = सफलीभूते, अपि, असौ = पुरोदृश्यमानः, पार्थिवः = नृपः, उदयन इति यावत् "पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः"—इत्यमरः, किमिति वितर्के, वक्ष्यति = कथयिष्यति, इति = इत्थं, विचिन्त्येति शेषः, मे = मम यौगन्धरायणस्येति भावः, हृदयं = चेतः, "चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तहृन्मानसं मनः"—इत्यमरः परिशङ्कितं—परितः = सर्वतः, शङ्कितं = शङ्काकुलं, विद्यते इति शेषः, नाम = निश्चयेन ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् वसन्ततिलकावृत्तम् । तद्यथा—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः" ।

प्रतीहारी—एषः = अयं, पुरोदृश्यमान इति भावः, भर्ता = स्वामी उदयनः । उपसर्पतु = समीपे गच्छतु, आर्यः = श्रेष्ठः, ब्राह्मण इति भावः ।

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य = उदयनपार्श्वे गत्वा) जयतु = विजयतां, भवान् = त्वम्, वत्सराजोदयन इति भावः, जयतु = विजयताम् ।

राजा—श्रुतपूर्वः—पूर्वं = पुरा, श्रुतः = आकर्णितः, इव = यथा, स्वरः = ध्वनिः । भोः = हे ! ब्राह्मण ! = विप्र ! किमिति प्रश्ने, भवतः = तव, ब्राह्मणस्येति यावत्, स्वसा = भगिनिका, पद्मावत्याः = मगधराजकुमार्याः, हस्ते = करे, न्यासः = निक्षेपरूपा, इति = इत्थं, निक्षिप्ता = स्थापिता ?

मेरे कार्य के सिद्ध (सफल) हो जाने पर भी "राजा क्या कहेंगे" ऐसा सोचकर मेरा मन सशङ्कित है ॥ १५ ॥

प्रतीहारी—ये महाराज हैं । आर्य ! पास जांय ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) आप की जय हो ! जय हो !

राजा—यह स्वर तो पहले सुना हुआ सा प्रतीत होता है । हे ब्राह्मण ! क्या आपकी बहन पद्मावती के पास न्यास के रूप में रखी गयी हैं ?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यंतामस्य भगिनिका ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च ।)

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि । [एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि ।]

आवन्तिका—किं किं ? [किं किम् ?]

यौगन्धरायणः—अथेति वितर्के, किमिति प्रश्ने । आम्, मदीया भगिनी पद्मावतीसमीपे न्यासरूपेण मया स्थापिताऽऽसीदिति भावः ।

राजा—तेन = तस्मात् कारणात्, हि = निश्चयेन, अस्य = ब्राह्मणस्य, भगिनिका = स्वसा, त्वर्यंतां = शीघ्रमानीयतां, त्वर्यंतां = शीघ्रमानीयता-मिति यावत् ।

प्रतीहारी—यत् = यादृशं, भर्ता=महाराजोदयनः, आज्ञापयति=आदिशति । (ततः = तदनन्तरं, पद्मावती = एतन्नामिका राज्ञी, प्रविशति=प्रवेशं करोति, आवन्तिका=वासवदत्ता, प्रविशति, च=तथा, प्रतीहारी=द्वारपालिका,प्रविशति)

पद्मावती—एतु = आगच्छतु, एतु = आगच्छतु, आर्या = आदरणीयाऽऽ-वन्तिका । ते = तुभ्यम्, आवन्तिकायै इति भावः, प्रियं = मनोज्ञं, श्रुति-सुखदमिति भावः, निवेदयामि = श्रावयामि ।

आवन्तिका—किं किमिति औत्सुक्ये वीप्सा ।

यौगन्धरायण—और क्या ?

राजा—तब इनकी बहन शीघ्र लायी जाँय, शीघ्र लायी जाँय ।

प्रतीहारी—स्वामी जैसी आज्ञा करते है । (निकल जाती है ।)

(तब पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी प्रवेश करती हैं ।)

पद्मावती—आर्या आवें, आवें । आपको प्रिय वचन सुनाती हूँ ।

आवन्तिका—क्या ? क्या ?

पद्मावती—भादा दे आअदो । [भ्राता ते आगतः ।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि । [दिष्ट्येदानीमपि स्मरति ।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । एसो णासो । [जयत्वार्यपुत्रः । एष न्यासः ।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः । इहात्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।]

पद्मावती—ते=तव, भवत्याः आवन्तिकाया इति भावः, भ्राता=बन्धुः, आगतः=समुपस्थितः, अस्तीति शेषः ।

आवन्तिका—दिष्ट्या=भाग्येन, इदानीं=सम्प्रति, अपि, स्मरति= स्मरणं करोति ।

पद्मावती—(उपसृत्य = उपागत्य) जयतु = विजयताम्, आर्यपुत्रः= पतिदेवः । एषः=अयं, पुरोदृश्यमान आवन्तिकारूप इति भावः, न्यासः = निक्षेपः ।

राजा—निर्यातय = परावर्तय, पद्मावति ! = महाराज्ञि ! साक्षिमत्— साक्षाद् द्रष्टृयुक्तं यथा स्यात्तथा, न्यासः=निक्षेपः, निर्यातयितव्यः = प्रत्यर्पणीयः । इह = अस्मिन् विषये, अस्मिन् स्थले वा, अत्रभवान्=आदरणीयो रैभ्यः = रैभ्यसगोत्रः एतन्नामको वा, अत्रभवती = आदरणीया, वसुन्धरेति शेषः, च = तथा, अधिकरणं = द्रष्टृत्वाऽऽधारः, भविष्यतः = वर्तिष्येते ।

पद्मावती—आर्य ! = पूज्य !, इदानीं=सम्प्रति, आर्या = वन्द्या, आवन्तिकेति भावः, नीयतां = गृह्यतां, त्वयेति शेषः ।

पद्मावती—आप के भ्राता (भाई) आये हैं ।

आवन्तिका—भाग्य से अभी भी याद कर रहे हैं ।

पद्मावती—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो । यह न्यास है ।

राजा—पद्मावती ! लौटा दो । साक्षी (गवाह) के सामने न्यास लौटाना चाहिए । यहाँ माननीय रैभ्य और आर्या वसुन्धरा प्रत्यक्ष गवाह होंगी ।

पद्मावती—आर्य ! अब आर्या (आवन्तिका) को ले जाँय ।

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्भो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्। मम भगिनी खल्वेषा।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा।

धात्री—(आवन्तिकां = एतन्नामिकां न्यासभूतां. निर्वर्ण्य = विलोक्य) अम्मो ! इति सम्भ्रमेऽव्ययं, भर्तृदारिका = राजकुमारी, "राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका"—इत्यमरः, वासवदत्ता = एतदभिधेया, प्रद्योतपुत्री अस्तीति शेषः।

राजा—कथं = किं, महासेनपुत्री—महासेनस्य = उज्जयिनीनरेशस्य पुत्री = दुहिता, वासवदत्ताऽऽस्तीति त्वरागर्भः प्रश्नः उदयनस्य। देवि ! = महाराज्ञि ! वासवदत्ते !!, त्वं = भवती, पद्मावत्या = एतदभिधेयया नवोढया राज्ञ्या, सह = साकम्, अभ्यन्तरं = अन्तःपुरमिति भावः, प्रविश = प्रवेशं कुरु।

यौगन्धरायणः—न = नहि, खलु = निश्चयेन, न = नहि, खलु = निश्चयेन, सम्भ्रमे वीप्सा, प्रवेष्टव्यं = प्रवेश्यम्। खलु = निश्चयेन, एषा = न्यासरूपेण स्थापिता, मम = ब्राह्मणस्य, भगिनी = स्वसा अस्तीति शेषः।

राजा—किमिति प्रश्ने, भवान् = रैभ्यः, प्रद्योतकाञ्चुकी इति भावः, आह = कथयति। खलु = निश्चयेन, एषा = न्यासभूता, महासेनपुत्री = प्रद्योतात्मजा वासवदत्तास्तीति भावः।

धाय—(आवन्तिका को देखकर) अरे राजकुमारी वासवदत्ता ?

राजा—क्या महासेन की पुत्री ? देवि ! तुम पद्मावती के साथ भीतर (अन्तःपुर में) प्रवेश करो।

यौगन्धरायण—नहीं, नहीं भीतर प्रवेश नहीं कराना चाहिए यह मेरी बहन है।

राजा—आप क्या कहते हैं ? ये महासेन की पुत्री हैं।

यौगन्धरायणः--भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

यौगन्धरायणः—भो राजन् ! = हे नृप !

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमित्यभिधेयस्य नाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन यौगन्धरायणः कलितब्राह्मणवेषः उदयनं धर्मनयम् उपदिशति ।

अन्वयः—भारतानां कुले जातः विनीतः ज्ञानवान् शुचिः राजधर्मस्य देशिकः (त्वमसि) तत् बलात् हर्तुं न अर्हसि ।

पदार्थ—भारतानां = भरतवंशी राजाओं के, कुले=वंश में, जातः= उत्पन्न, विनीतः=विनम्र, ज्ञानवान् = ज्ञानी, शुचिः = पवित्र, राजधर्मस्य= राज धर्म के, देशिकः = आचार्य (आदर्श हो) तत् = इस कारण से, बलात् = बल से, हर्तुं = छीनने मे, न = नहीं, अर्हसि = योग्य हो ।

लालमती व्याख्या—भारतानां = भरतकुलोद्भूतानामधिपानां, कुले= गोत्रे, जातः = समुद्भूतः, विनीतः = नम्रः, ज्ञानवान् = ज्ञानी, शुचिः = पूतः, सदाचारी इति भावः, राजधर्मस्य-राज्ञः = नृपस्य, धर्मस्य =नयस्येति भावः देशिकः = आचार्यः "गुरौ देश्ये च देशिकः"--इत्यमरः त्वमुदयनः असीति शेषः, तत् = तस्मात्कारणात्, बलात् = पराक्रमेण, हठादिति भावः, परकीयं न्यासमिति शेषः, हर्तुं=ग्रहीतुं, न =नहि, अर्हसि = योग्यो भवसि ॥ १६ ॥

छन्दोऽलङ्कारश्च—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" । अलङ्कारश्चात्र परिकरः । तद्यथा--"उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः" ॥ १६ ॥

यौगन्धरायण—हे महाराज !

आप भरतवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न, विनयी, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्म के प्रवर्त्तक हैं इसलिए मेरी बहन को जबर्दस्ती मुझसे आप का छिनना शोभा नहीं देता ॥ १६ ॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् ! संक्षिप्यतां जवनिका ।
यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।
वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः]
राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

किन्तु सत्यमिदं, स्वप्नः ? सा भूयो दृश्यते मया ।

राजा—भवतु = अस्तु, तावदिति वाक्यसौन्दर्ये, रूपसादृश्यं-रूपस्य = स्वरूपस्य, सादृश्यं = तुल्यत्वं, पश्यामः = विलोकयामीति भावः। जवनिका = तिरस्करिणी, घूंघट इति भाषयां, संक्षिप्यतां = संह्रियताम् ।

यौगन्धरायणः—जयतु = विजयतां, स्वामी = महाराजोदयनः ।

वासवदत्ता—जयतु = विजयताम्, आर्यपुत्रः = पतिदेवः ।

राजा—अये ! = अरे !, विस्मयेऽव्ययम्, असौ = अयं, यौगन्धरायणः, इयम् = एषा, महासेनपुत्री = प्रद्योतात्मजा, वासवदत्तेति भावः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कवितावनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्नवासवदत्तमितिनाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेनोदयनः वासवदत्तायौगन्धरायणौ दृष्ट्वा कथयति किमयं स्वप्नो यद्वा इदं सत्यं, यतः पूर्वमपि मया वासवदत्ता दृष्टाऽऽसीत् परन्तु विदूषकेनाहं वञ्चितः आसम् ।

अन्वयः—इदं किं सत्यं, स्वप्नो नु ? सा मया भूयो दृश्यते । अहं तदा अपि एवम् एव दृष्टया अनया वञ्चितः ।

पदार्थं—किं = क्या, नु = निश्चय ही, इदं = यह, सत्यं = सच है (वा = अथवा) स्वप्नः = भ्रम (है जो) सा = वह (वासवदत्ता) मया = मेरे द्वारा, भूयो = फिर, दृश्यते = दीख रही है । एवमेव = इसी प्रकार,

---

राजा—अच्छा, स्वरूप की समानता को तो देखूं । घूंघट हटाओ ।
यौगन्धरायण—स्वामी की जय हो ।
वासवदत्ता—पतिदेव की जय हो ।
राजा-अरे ! ये यौगन्धरायण हैं और ये महासेन की पुत्री (वासवदत्ता हैं ।)
यह सत्य (वास्तविकता) है या स्वप्न है ? उस (वासवदत्ता) को फिर

अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति ।)

अहं = मैं, तदा = उस समय (समुद्र गृह में) दृष्टया = दिखाई पड़ने पर, अपि = भी, अनया = इसके द्वारा, वञ्चितः = ठगा गया (था) ।

लालमती व्याख्या—इदम् = एतत्, वासवदत्तादर्शनमिति यावत्, किमिति वितर्के, सत्यं = वास्तविकं, यद्वेति शेषः, स्वप्नः = स्वापः "निद्रा तु शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि"—इत्यमरः, नु = वितर्केऽव्ययम् । सा = समुद्रगृहे वीक्षिता वासवदत्तेति भावः, मया = उदयनेन, भूयः = मुहुः = दृश्यते = विलोक्यते । अहम् = उदयनः, तदा = तस्मिन् समये, समुद्रगृहे इति भावः, एवम् = इत्थम्, एव = निश्चयेन, दृष्टया = विलोकितया, अनया = वासवदत्तया, वञ्चितः = प्रतारितः आसमिति शेषः ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । तद्यथा—"श्लोके षष्टं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः" ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! = महाराज ! देव्यपनयेन—देव्याः = महाराज्याः, वासवदत्ताया इति भावः, अपनयेन = गोप्यरूपेण स्थापणेन, कृतापराधः—कृतः = विहितः, अपराधः = पापाचारः, येन स तथोक्तः, अहं = यौगन्धरायणः, खलु = निश्चयेन, अस्मीति शेषः । तत् = तस्मात् कारणात्, क्षन्तुं = मर्षितुम्, अर्हति = योग्योऽस्ति, स्वामी = प्रभुरुदयन इति भावः । (इति = इत्थं कथयित्वा, पादयोः = चरणयोः, पतति = नमति) ।

देख रहा हूँ । उस समय (समुद्र गृह में) देखी गई इनके द्वारा मैं इसी तरह ठगा गया था ॥ १७ ॥

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! महारानी को दूर हटाकर (छिपा कर) मैंने अपराध किया है । अतः स्वामी को मुझे क्षमा करना चाहिए । (ऐसा कहकर पैरों में गिरता है ।)

राजा—(उत्थाप्य) योगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।

भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

राजा—(उत्थाप्य = उत्थापनं कृत्वा) ननु = निश्चयेन, भवान् = त्वं योगन्धरायणः = एतन्नामको मन्त्रमहामात्यः अस्तीति शेषः ।

सन्दर्भप्रसङ्गौ—कविताविनिताहासेन महाकविना भासेन प्रणीतस्य स्वप्न-वासवदत्ताभिधनाटकस्य षष्ठाङ्कात् समुद्धृतमिदम्पद्यम् । पद्येनानेन वत्सराजोदयनो यौगन्धरायणं प्रशंसति ।

अन्वयः—मज्जमाना वयं मिथ्योन्मादैः च युद्धैः च शास्त्रदृष्टैः च मन्त्रितैः च भवद्यत्नैः समुद्धृता खलु ।

पदार्थः—मज्जमानाः = डूबते हुए, वयं = हमलोग, मिथ्योन्मादैः = झूठे उन्माद से, युद्धैश्च = युद्धों से, शास्त्रदृष्टैश्च = शास्त्रानुकूल, मन्त्रितैः = परामर्शों से, भवद्यत्नैः = आपके प्रयासों द्वारा, समुद्धृताः = उबार लिये गये, खलु = निश्चय ही ।

लालमती व्याख्या—मज्जमानाः = निमज्जन्तः, आपत्सिन्धाविति शेषः, वयं = वत्सदेशीया उदयनादयः, मिथ्योन्मादैः–मिथ्याकल्पिता उन्मादास्तैः = मृषाकल्पितमनोविभ्रमैः, "उन्मादश्चित्तविभ्रमः"–इत्यमरः, युद्धैः = समरैः, शास्त्रदृष्टैः–शास्त्रेषु दृष्टानि तैः = शास्त्रनीत्यनुरूपैरिति यावत्, मन्त्रितैः = परामर्शैः, च = तथा, भवद्यत्नैः–भवतः = योगन्धरायणस्य, यत्नैः = प्रयासैः समुद्धृताः = उत्थापिताः, खलु = निश्चयेन । अत्र चकारस्य बहुशः प्रयोगः सर्वेषां पदानां पृथक् पृथक् वैशिष्टं प्रतिपादयति ।

छन्दः—पद्येऽस्मिन् अनुष्टुब्वृत्तम् । लक्षणन्तु पूर्वमुक्तम् ।

राजा—(उठाकर) आप योगन्धरायण हैं ।

विपत्ति के सागर में डूब रहे हमलोग मिथ्या (झूठे कल्पित) पागलपनों से, युद्धों से, शास्त्रों में देखे गये गुप्त विचारों (परामर्शों) से युक्त आप के प्रयासों सेउबार लिये गये ॥ १८ ॥

यौगन्धरायणः— स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाअरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) [उट्ठेहि उट्ठेहि अविहये ! उट्ठेहि ।

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानां–स्वामिनः = प्रभोः, उदयनस्येति भावः, भाग्यानि = दैवानि 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः''–इत्यमरः, तेषां = उदयनादृष्टानामिति यावत्, अनुगन्तारः = अनुगामिनः, वयं = यौगन्धरायणप्रभृतयः परिजनाः ।

पद्मावती—अहो ! आश्चर्येऽव्ययम्, खलु = निश्चयेन, इयम् = एषा, आर्या = वन्द्या वासवदत्ता । आर्ये ! = परमादरणीये !, अजानन्त्या = श्रेष्ठताज्ञानरहितया, मया पद्मावत्येति शेषः, सखीजनसमुदाचारेण–सखी चाऽसौ जनः, तस्य समुदाचारस्तेन मित्रलोकव्यवहारेण; समुदाचारः = सदाचार, अतिक्रान्तः = विलङ्घितः । तत् = तस्मात् कारणात्–शीर्षेण = उत्तमाङ्गेन "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्''–इत्यमरः, प्रसादयामि = अनुनयामि ।

वासवदत्ता—(पद्मावतीम् = स्वसपत्नीम्, उत्थाप्य = उत्थापनं कृत्वा) उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु, अविधवे !–न विगतो धवो यस्याः, साऽविधवा, तत्सम्बुद्धौ, सौभाग्यवति ! इति भावः, "धवः प्रियः पतिर्भर्ता''— इत्यमरः, उत्तिष्ठ = उत्थानं कुरु । अर्थिस्वम्–अर्थिनः = याचकस्य, यौगन्ध-

---

यौगन्धरायण—हमलोग महाराज के भाग्यों का अनुगमन करने वाले हैं ।

पद्मावती—अहो ! ये तो आर्या (वासवदत्ता) हैं । आर्ये ! नहीं जानती हुई मेरे द्वारा सखी के समान व्यवहार करने से जो शिष्टाचार का उल्लङ्घन किया गया है । अतः सिर से प्रणाम कर आपको खुश करती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो, उठो, सौभाग्यवति!

अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।]

पद्मावती—अणुग्गहिदह्मि । [अनुगृहीताऽस्मि ।]

राजा--वयस्य ! योगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः--कोशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

राजा--अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

रायणस्येति भावः, स्वं = धनं, न्यासभूतमिति यावत्, शरीरं = कायः, नाम = निश्चयेन, अपराध्यति = अपराधं करोति । योगन्धरायणनिक्षेपधनरूपं मच्छरीरमेव अपराधस्यहेतुरिति यावत् ।

पद्मावती—अनुगृहीता = कृताऽनुग्रहा, अस्मि = वर्ते ।

राजा--वयस्य ! = मित्र !, योगन्धरायण ! = महामात्य !, देव्यपनये-देव्याः = वासवदत्तायाः, अपनये = दूरीकरणे, ते = तव, बुद्धिः = मतिः "बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः"—इत्यमरः, का = कीदृशी, कृता= विहिता ।

यौगन्धरायणः--कौशाम्बीमात्रम्—एतदभिधेयां केवलां वत्सराजधानीभूतां पुरीमेव, परिपालयामि = परिरक्षामि । वासवदत्ताया अभावे राजाधान्या कौशाम्ब्या साकमेवान्यवत्सप्रदेशानाम्पुनरप्राप्तिर्भवेदित्यभिप्रायात् वासवदत्ता-गोपनं कृतमिति भावः ।

राजा--अथ = वासवदत्ता दग्धेति प्रचारान्तरमिति भावः, पद्मावत्याः = मगधराजकुमार्याः, हस्ते = करे, किमिति प्रश्ने, न्यासकारणं—न्यासस्य=निक्षेपस्य, कारणं = प्रयोजनम् आसीदिति शेषः ।

उठो । याचक (योगन्धरायण) का धनरूप (मेरा) यह शरीर ही अपराध का कारण है ।

पद्मावती—मैं आपसे अनुगृहीत हूँ ।

राजा—मित्र ! योगन्धरायण ! देवी (वासवदत्ता) को मुझसे अलग करने में तुम्हारी कैसी बुद्धि थी ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिः = पुष्पकभद्रप्रभृतिभिः, आदेशिकैः = अदृष्टज्ञैः, स्वामिनः = महाराजोदयनस्य, देवी=राजमहिषी, आदिष्टा=संसूचिता, पद्मावतीति शेषः, भविष्यति । अत एव पद्मावतीयं वासवदत्ताचरित्रसाक्षिणी भविताऽथच मगधराजदर्शकसाहाय्येन उदयनो राज्यम्प्राप्स्यतीति विचार्यैव मया यौगन्धरायणेन पद्मावत्याः समीपे वासवदत्ता न्यासरूपेण निक्षिप्तेति भावः ।

राजा—इदमपि = एतदपि, रुमण्वता = एतदभिधेयेन सचिवेन, ज्ञातं = विदितम् ? उदयनस्य जिज्ञासाऽस्ति यत् किमिदं कारणं रुमण्वता विदितमासीद॰ विदितं वेति भावः ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! = प्रभो ! सर्वैरेव = निःशेषैरेव धीसचिवैः "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः"—इत्यमरः, ज्ञातं = विदितमासीदिति शेषः । न केवलं रुमण्वतैवापितु सर्वैरेव विदितमासीदिति भावः ।

राजा—अहो ! = अरे !, शठः = वञ्चकः, खलु = निश्चयेन, रुमण्वान् = एतन्नामको मन्त्री ।

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा कर सकूँ । (जिसके कारण पहले के अपहृत अन्य वत्सप्रदेश भी पुनः प्राप्त हो सकें) ।

राजा—पुनः पद्मावती के हाथ में न्यास (धरोहर) रखने का क्या कारण है ?

यौगन्धरायण—पुष्पक, भद्र आदि दैवज्ञों ने "पद्मावती महाराज उदयन की रानी होगी" ऐसी भविष्यवाणी की थी । (वासवदत्ता को भाविनी महारानी के हाथ में रखने से उनके चरित्र की सुरक्षा तथा मगधराज दर्शक की सहायता से अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति हो सके, अतः मैं पद्मावती के हाथ में वासवदत्ता को रखा) ।

राजा—इसे भी रुमण्वान् ने जाना था ?

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! सब लोगों ने (मन्त्रियों ने) जाना था ।

राजा—अरे ! रुमण्वान् ठग है ।

स्वप्नवासवदत्तम् * मूल्य : १६)२५